धनपाल कृत

तिलकमञ्जरी में काव्य सौन्दर्य

डॉ. विजय गर्ग

ग्रन्थ

बहुमुखी प्रतिभा के धनी महाकवि धनपाल ने संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में काव्य रचनाएँ की हैं।

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' को चरितार्थ करते हुए धनपाल ने तिलकमञ्जरी कथा का प्रणयन कर अपनी उत्कृष्ट कवित्व शक्ति का परिचय दिया है। जिस गद्य विधा के द्वारा सुबन्धु, बाणभट्ट और दण्डी ने विद्वत् जगत् में अमर यश को प्राप्त किया, उसी शैली में धनपाल ने तिलकमञ्जरी के सौन्दर्य की छटा सर्वत्र प्रसारित कर गद्यकाव्य की श्री वृद्धि की है।

तिलकमञ्जरी में महाकवि धनपाल की अद्‌भुत भावयित्री तथा कारयित्री प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है, जिससे तिलकमञ्जरी आद्योपान्त प्रकाशित है। तिलकमञ्जरी में काव्य सौन्दर्य सर्वत्र व्यञ्जित होता है। प्रस्तुत पुस्तक में सौन्दर्य उद्‌घाटन के क्रम में पात्रगत सौन्दर्य, वर्णन सौन्दर्य, रस सौन्दर्य, औचित्य सौन्दर्य, उक्ति सौन्दर्य तथा भाषिक सौन्दर्य को प्रकट किया गया है।

धनपाल कृत

तिलकमञ्जरी में काव्य सौन्दर्य

धनपाल कृत

तिलकमञ्जरी में काव्य सौन्दर्य

लेखक
डॉ. विजय गर्ग
संस्कृत विभाग, हिन्दू महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय विद्या प्रकाशन
दिल्ली बनारस
भारत

प्रकाशक :

© भारतीय विद्या प्रकाशन

(1) 1 यू. बी. जवाहर नगर, बंग्लो रोड, दिल्ली-110007
फोन : 011-23851570, 23850944, 09810910450
E-mail : bvpbooks@gmail.com

(2) न्यू भारतीय विद्या प्रकाशन
पोस्ट बॉक्स 1108, सी.के. 32/30, नेपाली खपड़ा
वाराणसी-221001 (उत्तर प्रदेश)
फोन : 0542-2392376

अन्य प्राप्तिस्थान :
भारतीय बुक कारपोरेशन
5824, न्यू चन्द्रावल, (शिवमंदिर के पास)
जवाहर नगर, दिल्ली-110007
फोन : 011-23851570
E-mail : bbcbooks@gmail.com

मूल्य : 450.00

ISBN - 978-81-217-0288-1

प्रथम संस्करण : 2014

मुद्रक : आर.के.आफसेट प्रोसेस, दिल्ली।

शुभाशंसा

कवि अपनी प्रतिभा से हर वर्ण्य विषय में प्राण फूँक देता है, चाहे वह कैसा भी हो–

रम्यं जुगुप्सितमुदारमथापि नीचमुग्रं प्रसादि गहनं विकृतं च वस्तु।
यद्वाप्यवस्तु कविभावकभाव्यमानं तन्नास्ति यन्न रसभावमुपैति लोके॥

यह उक्ति तिलकमञ्जरी पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। तिलकमञ्जरी गद्यकाव्य की एक प्रौढ़ कृति है। पद्यकाव्य लिखने की तुलना में गद्य लेखन को समीक्षकों ने जटिल बताया है–

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति"

धनपाल की कृति तिलकमञ्जरी में उनकी भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। रस परिपाक की दृष्टि से कथावस्तु का ग्रहण करने में, उसका संशोधन करने में, विविध पात्रों के चरित्र चित्रण में और विविध अलंकारों के प्रयोग में यह कवि कुशल है।

डॉ. विजय गर्ग को मैं बहुत वर्षों से निकट से जानता हूँ। इनमें प्रतिभा के साथ-साथ अध्यवसाय का मणि-काञ्चन संयोग है। मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है कि मेरे प्रिय शिष्य डॉ. विजय गर्ग का यह शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थ से काव्य-शास्त्र के विद्यार्थियों के साथ-साथ सामान्य साहित्य-प्रेमी भी लाभान्वित होंगे।

मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

प्रो. देवेन्द्र मिश्र
एम.ए. (संस्कृत), पीएच.डी., ज्योतिर्विद्
पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

भूमिका

भारतीय काव्य शास्त्रीय परम्परा सौन्दर्य को काव्य (साहित्य) का अभिन्न अंग मानती है। उत्तम काव्य के लक्षणों की चर्चा में कवि एवं भावक दोनों की दृष्टि से काव्य पर विचार किया गया है। इसीलिए सौन्दर्यमलंकार कहकर वामन ने अलंकार को परिभाषित करने का यत्न किया है। यह अलंकार शब्द उपलब्ध काव्य शास्त्रीय साहित्य में अत्यधिक प्राचीन काल से प्रयुक्त हुआ है और इसका विकास वाद के रूप में भी हुआ है। काव्य शास्त्र की सुप्रसिद्ध छः सरणियों में अलंकार, रीति, रस, ध्वनि, औचित्य एवं वक्रोक्ति का परिगणन जब किया जाता है। तो अलंकार सर्वप्रथम परिगणित होता है। प्रायः इसे काव्य के बाह्य तत्त्व के रूप में व्याख्यायित करके इसके महत्त्व को सीमित कर दिया गया है। इसीलिए अलंकारवादियों को काव्य शास्त्र में वह स्थान नहीं मिल सका जो रस या ध्वनि को मिला। वस्तुतः अलंकार शब्द आधुनिक समालोचना में प्रयुक्त सौन्दर्य का पर्यायवाची माना जा सकता है। यह सौन्दर्य आन्तर और बाह्य दोनों धरातलों पर काव्य का अभिन्न अंग है और इसी के कारण काव्य सहृदय के लिए आकर्षक और आह्लादक बनता है। "काव्यं ग्राह्यमलंकारात्" (वामन) यह ग्राह्यता आह्लादकता के कारण है। अलंकार केवल बाह्य शोभादायक धर्म नहीं है, अपितु आन्तर शोभा की भी अभिवृद्धि का हेतु है। इसी कारण शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों को काव्यशास्त्र में स्थान दिया गया है।

काव्य की चर्चा के समय जिस प्रकार वर्गीकरण किया गया, उससे ऐसा लगने लगा जैसे किसी एक तत्त्व का प्राधान्य अन्त तत्त्वों के लिए उपेक्षा–भाव का कारण बन जाता है। यह दृष्टि अत्यधिक एकांगी है क्योंकि काव्य जैसे विस्तृत फलक में किसी एक तत्त्व को ही ढूँढना न वस्तु के साथ न्याय है और न ही कवि के साथ।

कवि काव्य की रचना किस प्रकार करता है इसका विचार भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा में राजशेखर एवं अत्यधिक सूक्ष्म रूप में मम्मट के अतिरिक्त अन्य किसी आचार्य ने नहीं किया है। यह पूरी परम्परा काव्य के वस्तुपरक मूल्यांकन एवं आस्वादक की दृष्टि से विवेचन पर सीमित होकर रह

गई है, इसीलिए भरत के रससूत्र से लेकर जगन्नाथ के काव्य के लक्षण तक प्रायः 1500 वर्षों की लम्बी परम्परा में काव्य के जितने भी लक्षण किए गए, वे काव्य के स्वरूपाधायक और प्राणाधायक दो वर्गों में विभाजित हो गए। भामह का लक्षण 'शब्दार्थो सहितौ काव्यम्' अथवा दण्डी का लक्षण 'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली' काव्य शरीर का विवेचन करते दिखाई पड़ते हैं तो वामन का रीतिरात्मा काव्यस्य' अथवा विश्वनाथ का 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' आत्म तत्त्व की विवेचना करते हैं। शरीर और आत्मा का यह विश्लेषण काफी दूर तक वेदान्त दर्शन से प्रभावित प्रतीत होता है। लेकिन इन सबके मूल में विद्यमान तत्त्व जो काव्य को 'दिक्कालानवच्छिन्न' रूप में आह्लादक और आकर्षक बनाता है वह तो सौन्दर्य ही है। इस सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने का कवि का जो कौशल है वह निश्चय ही रस अलंकार रीति आदि रूपों में अभिव्यक्त होता है।

कवि सौन्दर्य से– वह भौतिक सौन्दर्य हो, भावों का सौन्दर्य हो या घटनाओं का सौन्दर्य हो– प्रभावित अनुप्राणित होकर अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित होता है और यही प्रेरणा काव्य रचना का मूलाधार बनती है। वह जिस सौन्दर्य को आत्मसात् करता है, उसे अपनी प्रतिभा और व्युत्पत्ति से अनुप्राणित कर एक अपूर्व सृष्टि करता है। इसीलिए भारतीय परम्परा में कवि को प्रजापति के तुल्य स्थान दिया गया है।[1] उसकी सृष्टि प्रजापति की त्रिगुणात्मिका[2] सृष्टि से अलग सुख–दुःख–मोह स्वभाव न होकर केवल आनन्दमयी होती है। आनन्द की अनुभूति को रस के रूप में व्याख्यायित किया गया और कवि की दृष्टि से इस रस की प्रतीति करवाने का सर्वोत्तम माध्यम ध्वनि को बताया गया। इसीलिए रस ध्वनि को को ध्वनिवादी आचार्यों ने सर्वोत्तम काव्य का आधार माना है।

सौन्दर्य की अनुभूति से अभिव्यक्ति और आस्वादन की यह परम्परा काव्य बीज, काव्य की उत्पत्ति से आरम्भ होकर काव्यास्वाद पर परिणत होती है। सौन्दर्य शब्द यहाँ पर लोक में प्रचलित और प्रयुक्त अर्थ से किंचित विशिष्ट अर्थ में लेने की आवश्यकता है। यह वस्तु पर आधारित होता है, लेकिन उससे स्वतंत्र और

---

1. अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
   यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।। अ.पु., 339/10
2. नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
   नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।। का.प्र., 1/1

पृथक् भी इसकी सत्ता होती है। वस्तु के किसी विशेष अंग या रंग में सौन्दर्य को परिसीमित नहीं किया जा सकता। प्रायः लोक में देखा गया है कि अलग-अलग रमणीयता के आधायक तत्त्वों का परिगणन करने के बाद भी जब संतोष नहीं होता हे तो बरबस मुँह से निकल जाता है। "बस इतना समझ लो वह बहुत सुन्दर है।" कालिदास की शकुन्तला सभी युगों एवं सभी कालों के साथ सभी स्थानों में सर्वाधिक सौन्दर्य का प्रतिमा रही है। लेकिन पूरे शाकुन्तल में कहीं भी उसका नख-शिख वर्णन नहीं किया गया है। मेघदूत में यक्षिणी का सर्वांग वर्णन करने के बाद भी कवि ऐसा रूप खड़ा नहीं कर पाये, जो सबको संसार की सर्वाधिक सुन्दरी प्रतीत हो सके। शकुन्तला बिना नख-शिख वर्णन के ही प्रत्येक देश और काल में भावक के चित्त की सर्वाधिक सुन्दरी स्त्री बन गई। स्पष्ट है कि सौन्दर्य भौतिक वस्तुओं से व्यतिरिक्त ऐसा तत्त्व है जो अनुभूति का आधार तो बनता है लेकिन जिसकी व्याख्या 'इदमित्थम्' शब्दशः नहीं की जा सकती।

भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा में सौन्दर्य की यह धारणा अन्तः स्रोतस्विनी के समान प्रत्येक अवधारणा एवं सिद्धान्त में विद्यमान रही है। सौन्दर्य शब्द का प्रयोग समालोचना एवं कला के सन्दर्भ में आधुनिक पाश्चात्य चिन्तन की देन है। क्रोचे ने 'ईस्थेटिक्स' नामक ग्रन्थ की रचना के द्वारा सौन्दर्य को साहित्य के साथ अनिवार्य रूप से जोड़ दिया। आधुनिक भारतीय समालोचना अन्य अनेक शास्त्रों की तरह पाश्चात्य चिन्तन से प्रभावित हुई है और इसी कारण सौन्दर्य शास्त्र और सौन्दर्य विचार का आविर्भाव समालोचना के क्षेत्र में हुआ है। इस बात का संकेत पहले ही दिया जा चुका है कि काव्य का समुचित मूल्यांकन कवि, काव्य एवं भावक तीनों स्तरों पर किया जाना अपेक्षित है। इस दृष्टि से मम्मट का मंगलाचरण भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा में अकेला निदर्शन है। इसमें न केवल वस्तुपरक अपितु कवि सापेक्ष और सहृदय सापेक्ष सौन्दर्य सिद्धान्त को अत्यधिक सूक्ष्मता से प्रस्तुत करने का यत्न किया गया है-

'नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति॥

कवि की वाणी अर्थात् काव्य किस प्रकार का हो? कवि सृष्टि के नियमों से ऊपर उठकर जो सृष्टि करता है, वह सहृदय को किस प्रकार आह्लादित करती है? ये सारी बातें मम्मट ने इस एक कारिका में सूत्र रूप में पिरो दी हैं।

संस्कृत साहित्य आज जिस रूप में उपलब्ध होता है, उसमें गद्य की अपेक्षा पद्य काव्यों की संख्या अधिक है। इसके कई कारण हो सकते हैं। पद्य को स्मरण करना अधिक सरल होता है और छन्दों की लय सामान्य जन को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। इसके विपरीत गद्य का पाठ श्रमसाध्य होता है और उसे स्मरण रखना कष्टसाध्य। स्मृति की बात यहाँ इसलिए कहना जरूरी है कि मुद्रण कला के आविष्कार के पूर्व ग्रन्थ हाथ से लिखे जाते थे, इसलिए सर्वजन सुलभ नहीं थे। काव्य के दृश्य एवं श्रव्य रूपी विभाजन में भी इसी बात का संकेत मिलता है। अभिनय द्वारा मंच पर उपस्थापित काव्य दृश्य काव्य था और उसके अतिरिक्त समस्त साहित्य श्रवण पर आधारित था, जहाँ काव्य का पाठ सहृदयों के लिए किया जाता था। संभवतः इसी कारण से गद्य काव्य की रचना को पद्य की अपेक्षा कठिन माना गया। 'गद्यं कवीनां निकर्ष वदन्ति' उक्ति भी इसी बात की ओर संकेत करती है। सुप्रसिद्ध सुबन्धु, दण्डी एवं बाण जैसे कवियों के अतिरिक्त गद्यकाव्य लेखकों की ओर आधुनिक काल में अध्येताओं का ध्यान कम गया है। दशम शताब्दी में धनपाल नामक कवि हुए जिन्होंने तिलकमञ्जरी नामक गद्यकाव्य की रचना की। ये जैन कवि थे। अतः संस्कृत के साथ ही प्राकृत एवं अपभ्रंश में भी इन्होंने रचना की। इनका तिलकमञ्जरी काव्य कथा की कोटि में रखा जाता है। इसकी वस्तु कल्पना प्रसूत है और बाण के परवर्ती अनेक कवियों की तरह इनकी रचना भी बाण की शैली से प्रभावित है।

आज जब युवा वर्ग सरल मार्ग से लक्ष्य तक पहुँचने में प्रवृत्त है तब किसी अल्पप्रसिद्ध एवं अतिन्यून विश्लेषण का आधार रहे ग्रन्थ को शोध के लिए चुनना साहसपूर्ण कार्य कहा जाएगा। डॉ. विजय गर्ग ने तिलकमञ्जरी पर शोध ही नहीं किया, समालोचना के लिए सौन्दर्य को विवेचन का आधार बनाया है। यह चयन इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि परम्परा प्राप्त गुण, दोष, रस, अलंकार आदि खण्डों में विभाजित समालोचना के साथ आधुनिक सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टि का भी समावेश भी इसमें किया गया है। यह समन्वयपरक समालोचना संस्कृत साहित्य के लिए आवश्यक भी है और उपयोगी भी। 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' कालिदास की इस सुप्रसिद्ध उक्ति के अनुसार प्राचीन को ही एकमात्र आदर्श मानना नवीन चिन्तन में बाधक का काम करता है। इसलिए सौन्दर्य को काव्य समालोचना का आधार बनाना डॉ. विजय गर्ग की पूर्वग्रह मुक्त शोध दृष्टि का

परिचायक है। इस शोध के द्वारा उन्होंने अल्प प्रसिद्ध ग्रन्थ तिलमञ्जरी को पाठकों के लिए पाठ्य एवं आस्वाद्य बनाने का काम किया है। इसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। लीक से हटकर अत्यधिक श्रमपूर्वक किए गए इस शोध कार्य के लिए डॉ. गर्ग को भूरिशः बधाई। भविष्य में भी वे इसी प्रकार साहित्य एवं शास्त्र सेवा में प्रवृत्त रहें यह मेरी शुभकामना है।

प्रो. दीप्ति त्रिपाठी
पूर्व निदेशक, राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन
आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

पुरोवाक्

काव्य शब्द से तात्पर्य कवि के कर्म अथवा कृति से है। काव्य रसमय, भावमय और आनन्दमय होता है। कवि अपनी कल्पना से जिस सृष्टि की रचना करता है, उसके समक्ष ब्रह्मा की सृष्टि भी तुच्छ प्रतीत होती है। कहा भी गया है-

अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।

ब्रह्मा की सृष्टि नियति के नियमों में आबद्ध, सुखदुःखात्मक तथा मधुरकषायादि षड्रसान्विता है, परन्तु कवि का काव्य जगत् नियति के नियमों से मुक्त, केवल आनन्ददायक तथा शृङ्गारादि नौ रसों से युक्त है-

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।

काव्याचार्यों ने काव्य को दृश्य तथा श्रव्य दो वर्गों में विभाजित किया है। दृश्य काव्य अभिनयात्मक होता है। इसमें नटादि में रामादि के स्वरूप का आरोप किया जाता है, अतः इसे रूपक भी कहते हैं। दृश्य काव्य में संस्कृत वाङ्.मय में उपलब्ध रूपक तथा इसके भेद व प्रभेद आते हैं। श्रव्य काव्य के तीन भेद हैं- गद्य, पद्य और चम्पू। छन्दयुक्त गेयात्मक रचना को पद्य तथा छन्दमुक्त पदरचना को गद्य कहते हैं। गद्य तथा पद्य युक्त मिश्र रचना चम्पू कहलाती है।

संस्कृत वाङ्.मय में पद्य, गद्य की अपेक्षा प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। इसका कारण स्पष्ट है कि पद्य काव्य में कवि छन्दादि नियमों से आबद्ध होता है। काव्य में किसी भी प्रकार की त्रुटि दृष्टिगोचर होने पर, अपने दोष को पद्यबन्ध के नियमों पर आरोपित कर स्वयं को दोषमुक्त सिद्ध कर देता है, परन्तु गद्य रचना में नियमों का बन्धन न होने के कारण अपने दोष को

किसी अन्य माध्यम पर आरोपित नहीं कर सकता। गद्यरचना में कोई त्रुटि आने पर उसी प्रकार दृष्टिगत होती है, जिस प्रकार श्वेत वस्त्र में काला धब्बा। इसी कारण गद्य को कवियों की निकष (कसौटी) कहा गया है।

गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।

संस्कृत साहित्य के गद्यकारों में अद्य पर्यन्त दण्डी, सुबन्धु, बाणभट्ट, अम्बिकादत्तव्यास आदि कतिपय कवियों की कृत्तियों का ही परिशीलन किया गया है। अभी भी अनेक अन्य कवि ऐसे है जिनकी गद्य कृतियाँ उपेक्षित पड़ी हुई हैं। यदि उन्हें प्रकाश में लाया जाए, तो निश्चित रूप से संस्कृत साहित्य की श्री वृद्धि होगी। महाकवि धनपाल भी ऐसे ही काव्यकार हैं, जिनको साहित्य जगत् में वह सम्मान प्राप्त नहीं हुआ है जिसके वे अधिकारी हैं। धनपाल व्याकरण, दर्शन तथा साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। अपनी काव्य प्रतिभा से ही उन्होंने भोजराज की राजसभा में सर्वोच्च पद को प्राप्त किया था। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश तीनों भाषाओं में काव्य रचनाएँ की है परन्तु काव्य जगत् में उनकी कीर्ति का कारण उनकी मनोहारी तथा रमणीय कृति तिलकमञ्जरी है। 'तिलकमञ्जरी' पुनर्जन्म पर आधारित प्रेम कथा है। इसमें हरिवाहन तथा तिलकमञ्जरी के पवित्र प्रेम का चित्रण किया गया है।

स्नातकोत्तर स्तर पर कादम्बरी कथा के अनुशीलन में आनन्द की प्राप्ति होने के कारण उसी समय किसी गद्य कृति पर कार्य करने की इच्छा जागृत हो गई थी। किसी रमणीय गद्य कृति के अन्वेषण क्रम में मुझे धनपाल की तिलकमञ्जरी के विषय में संस्कृत साहित्य के विभिन्न विद्वानों के मतान्तरों का ज्ञान हुआ। उसी समय मैंने तिलकमञ्जरी पर कार्य करने का निर्णय ले लिया। स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् विभाग के आदरणीय गुरुजनों के आशीर्वाद से विद्या वारिधि में तिलकमञ्जरी में अलङ्कारों का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। तिलकमञ्जरी का एक बार अध्ययन करने के पश्चात् तिलकमञ्जरी की रसमयी कथा का और अध्ययन करने की बौद्धिक बुभुक्षा बढ़ गई। इस विषय में परम आदणीय

गुरुजी प्रो. देवेन्द्र मिश्र तथा विभाग के आदरणीय गुरुजनों के परामर्श से मुझे तिलकमञ्जरी की काव्यसौन्दर्यात्मक समीक्षा करने का अवसर प्राप्त हुआ, जिससे मैं तत्क्षण कृतार्थ हुआ।

इस शोध कार्य को आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है। इन अध्यायों का प्रतिपाद्य इस प्रकार से है –

प्रथम अध्याय में काव्य सौन्दर्य पर विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत काव्य, विभिन्न आचार्यों द्वारा दी गई काव्य की परिभाषाओं, तथा काव्य के भेदों का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् सौन्दर्य के पाश्चात्य व भारतीय दृष्टिकोणों का वर्णन किया गया है। तदनन्तर सौन्दर्य के क्षेत्र का वर्णन कर काव्य सौन्दर्य की विवेचना की गई है।

द्वितीय अध्याय में महाकवि धनपाल के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। इसके अन्तर्गत उपलब्ध साक्ष्यों व सामग्री के आधार पर धनपाल के जीवन, स्थितिकाल, प्रतिभा तथा उनकी नौ रचनाओं का वर्णन किया गया है। धनपाल के पिता का नाम सर्वदेव तथा पितामह का नाम देवर्षि था धनपाल ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के बल पर राजा भोज की सभा में सम्मानित स्थान प्राप्त किया था। धनपाल की प्रसिद्धि का प्रमुख कारण उनकी तिलकमञ्जरी कथा ही है। तिलकमञ्जरी से अलग उनकी आठ रचनाएँ और हैं।

तृतीय अध्याय में शोध के आधार ग्रन्थ तिलकमञ्जरी की सरस कथा का सार देकर तिलकमञ्जरी के चार टीकाकारों–शान्तिसूरि, विजयलावण्यसूरि, पण्यास पद्मसागर तथा ताडपत्रीय टिप्पणकार के पाण्डित्य तथा उनकी कृतियों का उल्लेख किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में तिलकमञ्जरी के पात्रों के चारित्रिक सौन्दर्य को उद्घाटित किया गया है। तिलकमञ्जरी के अनेक पात्र दिव्य शक्तियों से सम्पन्न हैं तथा उनका सम्बन्ध दिव्य लोकों से भी है। अतः प्रथमतः दिव्य, अदिव्य तथा दिव्यादिव्य भेदों के आधार पर पात्रों का वर्गीकरण किया गया है तत्पश्चात् पुरुष व स्त्री पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का निरूपण किया गया है।

पञ्चम अध्याय में तिलकमञ्जरी में रसाभिव्यक्ति की विवेचना की गई है। भोजराज के जिन कथाओं में उत्सुक्ता उत्पन्न होने पर धनपाल ने अद्‌भुत रस युक्त इस कथा की रचना की थी। तिलकमञ्जरी का अङ्गी रस शृङ्गार होने पर भी इस कथा में आश्चर्यजनक घटनाओं की प्रचुरता होने के कारण सत्य ही यह कथा अद्‌भुत रस स्फुटा है। इस अध्याय में तिलकमञ्जरीगत शृङ्गार, अद्‌भुत करुण, वीर, रौद्र, भयानक व शान्त रसों की विवेचना की गई है।

षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत तिलकमञ्जरी में औचित्य का परिशीलन किया गया है। इसमें आचार्य क्षेमेन्द्रोक्त अभिप्राय, अलङ्कार, कुल, तत्त्व, नाम, पद, रस, वाक्य सत्त्व सारसङ्ग्रह, स्वभाव तथा व्रत के औचित्य की समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

सप्तम अध्याय में तिलकमञ्जरी में वक्रोक्ति के वैचित्र्य को प्रकाशित किया गया है। इसके अन्तर्गत आचार्य कुन्तक सम्मत वक्रोक्ति के भेदों-वर्णविन्यासवक्रता, पदपूर्वार्धवक्रता, पदपरार्धवक्रता, वस्तुवक्रता, प्रकरणवक्रता तथा प्रबन्धवक्रता के अनुसार तिलकमञ्जरी में उत्पन्न वैचित्र्य व रमणीयता को प्रकट किया गया है।

अष्टम अध्याय में तिलकमञ्जरी की भाषा शैली की दृष्टि से समीक्षा की गई है। वर्ण्य विषय के अनुरूप भाषा कविगत भावों को सहृदय तक तथावत् सम्प्रेषित करती है। धनपाल की विषयानुकूल भाषा सहृदय को आनन्द प्रदान कर उसके मन का रंजन करती है। इस अध्याय में गद्य शैली के लिए स्वीकृत धनपाल के आदर्शों का वर्णन किया गया है।

उपसंहार में इन अध्यायों में विवेचित विषय-वस्तु का क्रम से निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

मेरे शोध-कार्य में जिन विद्वानों, गुरुजनों, मित्रों व अग्रजों ने सहयोग किया है। उनका आभार प्रकट करना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है।

संस्कृत की नाना विधाओं के अप्रतिम विद्वान् व संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यक्ष प्रो. देवेन्द्र मिश्र जी के पितृतुल्य वात्सल्य

तथा सशक्त व स्नेहिल निर्देशन के द्वारा ही यह शोध-प्रबन्ध अपनी पूर्णता को प्राप्त कर पाया है। इस शोध-प्रबन्ध में जो भी सार है, वह इनके उत्कट वैदुष्य तथा पारदर्शिनी प्रतिभा के कारण है। एतदर्थ, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन हेतु उपयुक्त शब्द न मिलने के कारण मेरी लेखनी शिथिल हो रही है। मैं सदैव उनके चरण-कमलों में सादर नमन करता हूँ।

काव्यशास्त्र, भाषाविज्ञान तथा व्याकरण की मान्य विदुषी प्रो. दीप्ति त्रिपाठी का स्नेहाशीश मुझे प्राप्त होता रहा है। इन्होंने समय-समय पर शोध-कार्य की प्रगति के विषय में पूछकर तथा अपेक्षित समय व अमूल्य परामर्शों को देकर शोध-कार्य में मेरी महती सहायता की है। मैं उनके श्रीचरणों में सविनय प्रणाम करता हूँ।

मैं विभाग के समस्त गुरुजनों का हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर आवश्यक परामर्श देकर सतत् मेरा उत्साहवर्धन किया है। विभाग के मानसिंह और नीरज भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने विभागीय कार्यों में मुझे सहयोग दिया।

मैं डॉ. राजेन्द्र कुमार, डॉ. अजय झा, आनन्द कुमार तथा उन सभी अग्रजों तथा मित्रों का भी आभारी हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मेरे कार्य में सहायता प्रदान की।

दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय, साहित्य अकादमी (दिल्ली) तथा भारतीय पुरातत्त्व पुस्तकालय के कर्मचारी भी इस आभार के पात्र हैं, जिन्होंने यथा सम्भव आवश्यक पुस्तकों को उपलब्ध करवाकर मेरे शोध कार्य में सहयोग किया।

मैं अपने माता जी व पिता जी के प्रति आभार प्रकट कर उऋण नहीं होना चाहता, जिन्होंने सतत् मेरे उत्कर्ष की ही कामना की है। मैं अपने अनुजद्वय का भी ऋणी हूँ जिनका स्नेह ही मेरा उत्साह सम्बल बना रहा। मेरी अर्द्धांगिनी भी साधुवाद की पात्रा है, जिसने पदे-पदे मेरा उत्साहवर्धन किया।

भारतीय विद्या प्रकाशन के श्री रमन जैन को भी मैं हार्दिक धन्यवाद अर्पित करता हूँ, जिन्होंने इसे पुस्तक के व्यवस्थित रूप प्रस्तुत करने में महती भूमिका का निर्वाह किया है।

अन्त में मैं पुनः अपने गुरुजी प्रो. देवेन्द्र मिश्र जी को प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूँ तथा ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे आजीवन उनका आशीर्वाद मिलता रहे।

– विजय गर्ग

संक्षिप्ताक्षर

अ.	–	अध्याय
अ. को.	–	अमरकोश
अ. पु.	–	अग्निपुराण
अनु.	–	अनुवाद
अभि.शा.	–	अभिज्ञानशाकुन्तल
आ.	–	आचार्य
ऋ.	–	ऋग्वेद
ऋ. पं.	–	ऋषभपंचाशिका
औ. वि. च.	–	औचित्यविचारचर्चा
का.	–	कारिका
का. द.	–	काव्यादर्श
का. प्र.	–	काव्यप्रकाश
का. ल.	–	काव्यालङ्कार
का. सा. सं.	–	काव्यालङ्कारसारसंग्रह
का. सू. वृ.	–	काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति
काद.	–	कादम्बरी
कुमार.	–	कुमारसम्भव
गी. सौ.	–	गीता सौरभम्
च. लो.	–	चन्द्रालोक
चि. मी.	–	चित्रमीमांसा
ति. म.	–	तिलकमञ्जरी

द. रू.	–	दशरूपक
ध्वन्या.	–	ध्वन्यालोक
ना. शा.	–	नाट्यशास्त्र
नी. श.	–	नीतिशतक
प. त.	–	पञ्चतन्त्र
पृ.	–	पृष्ठ
मेघ.	–	मेघदूत
र. गं. ध.	–	रसगङ्गाधर
लो. टी.	–	लोचन टीका
व. जी.	–	वक्रोक्तिजीवित
वृ. सू. को.	–	वृहद्सूक्तिकोश
शृं. प्र.	–	शृंगारप्रकाश
स. क.	–	सरस्वती कण्ठाभरण
सा. द.	–	साहित्यदर्पण
सू.	–	सूत्र
हर्ष	–	हर्षचरित

विषयानुक्रमणी

क्र.स.		पृष्ठ सं.
भूमिका	–	ii
पुरोवाक्	–	vii
संक्षिप्ताक्षर	–	xiii

प्रथम अध्याय : काव्य सौन्दर्य – 1–17

- काव्य
- काव्य लक्षण
- काव्य भेद
- सौन्दर्य
- सौन्दर्य का क्षेत्र
- काव्य सौन्दर्य

द्वितीय अध्याय : धनपाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व – 19–32

- धनपाल का जीवन
- धनपाल का समय
- धनपाल की प्रतिभा
- धनपाल का कृतित्व

तृतीय अध्याय : तिलकमञ्जरी का कथासार – 33–65

- तिलकमञ्जरी का कथासार
- तिलकमञ्जरी के टीकाकार

चतुर्थ अध्याय :
तिलकमञ्जरी के पात्रों का चारित्रिक सौन्दर्य – 67–102

- पात्र
- दिव्य पात्र

- अदिव्य पात्र
- दिव्यादिव्य पात्र
- पुरुष पात्र
- स्त्री पात्र

पञ्चम अध्याय : तिलकमञ्जरी में रस – 103-134

- रस
- शृङ्गार रस
- अद्भुत रस
- करुण रस
- वीर रस
- रौद्र रस
- भयानक रस
- शान्त रस

षष्ठ अध्याय : तिलकमञ्जरी में औचित्य – 135-173

- औचित्य
- औचित्य का क्रमिक विकास
- औचित्य के भेद
- अभिप्रायौचित्य
- अलङ्कारौचित्य
- कुलौचित्य
- तत्त्वौचित्य
- नामौचित्य
- पदौचित्य
- रसौचित्य
- वाक्यौचित्य
- सत्त्वौचित्य
- सारसङ्.ग्रहौचित्य

○ स्वभावौचित्य
○ व्रतौचित्य

सप्तम अध्याय : तिलकमञ्जरी में वक्रोक्ति– 175–219
○ वक्रोक्ति
○ पूर्ववर्ती आचार्यों का वक्रोक्ति चिन्तन
○ परवर्ती आचार्यों का वक्रोक्ति चिन्तन
○ कुन्तक का वक्रोक्ति सिद्धान्त
○ वक्रोक्ति के भेद
○ वर्णविन्यासवक्रता
○ पदपूर्वार्धवक्रता
○ पदपरार्धवक्रता
○ वस्तुवक्रता
○ प्रकरणवक्रता
○ प्रबन्धवक्रता

अष्टम अध्याय : तिलकमञ्जरी की भाषा-शैली – 221–230

उपसंहार – 231–236

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची – 237–246

प्रथम अध्याय

काव्य सौन्दर्य

- काव्य
- काव्य लक्षण
- काव्य भेद
- सौन्दर्य
    - पाश्चात्य चिन्तन
    - संस्कृत वाङ्मय में सौन्दर्य
- सौन्दर्य का क्षेत्र
- काव्य सौन्दर्य

काव्य

वाणी अथवा भाषा भावाभिव्यक्ति का श्रेष्ठ व सशक्त माध्यम है। इस जगत् के समस्त प्राणी अपनी इच्छाओं, विचारों व भावों को भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त करते हैं- कोई गाकर, कोई गरज कर तथा कोई चहक कर। परन्तु ब्रह्मा की सर्वश्रेष्ठ रचना मनुष्य अनेक प्रकार से अपने भावों व विचारों को प्रकट करता है जैसे चित्र बनाकर, गाकर अथवा बोलकर। जिस प्रकार पक्षी चहचहा कर अपना विचार प्रकट करते है, परन्तु कोयल की चहचहाहट (कूक) कर्णप्रिय व आनन्द प्रदान करने वाली होती है उसी प्रकार मनुष्य की सरस व मीठी वाणी आनन्ददायक व सहृदय-हृदय श्लाध्य होती है। कवि अपने विचारों व भावों को चमत्कारपूर्ण वाक्यों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है जिसमें सामान्य वाक्य की अपेक्षा आनन्दतत्त्व का अधिक समावेश होता है। कवियों में भी वे कवि विरले ही होते हैं[1] जिनके काव्य में उस अर्थ को प्रकट करने की शक्ति होती है। प्रतिभावान् कवियों के समक्ष उस रमणीय अर्थ को प्रकट करने वाले शब्द अपने आप ही नृत्य करते हुए आ खड़े होते हैं।

कवि प्रकृति के नियमों से स्वच्छन्द होता है। वह अपनी प्रतिभा (शक्ति) से किसी भी नवीन अर्थ को प्रतिपादित करने के लिए किसी भी नवीन शब्द का आश्रय ले सकता है तथा किसी अभिनव प्रयोग को नवीन भाव का प्रतीक बना सकता है। शक्ति सम्पन्न कवि व उसके काव्य को किसी परिचय की आवश्यकता नहीं होती। उसके अमृत तुल्य रसास्वादयुक्त[2] काव्य की प्रसिद्धि कस्तूरी के समान स्वयं ही जगत् में प्रसारित हो जाती है। काव्य सौन्दर्य की सृष्टि है तथा कवि सौन्दर्य का द्रष्टा व स्रष्टा है। कवि की काव्य रूपी सृष्टि ब्रह्मा की सृष्टि से भी उत्कृष्ट है क्योंकि नौ रसों से युक्त होने के कारण वह मनोरम तथा केवल आनन्ददायक है।[3] शृङ्गार परक काव्य में तो रसानन्द प्राप्त होता ही है, करुण रस परक काव्य में भी सुखास्वादन ही होता है।

1. कवित्वं दुलर्भं तत्र, शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा। अ. पु., 337/4
2. संसारविषवृक्षस्य द्वे एव मधुरे फले।
काव्यामृतरसास्वादः संगमः सज्जनैः सह।। वृ. सू. को, पृ. 910
3. नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।। का. प्र.,1/1

काव्य लक्षण

काव्य की परिभाषा या लक्षण एक ऐसा विषय है जिस पर आचार्यों की पृथक-पृथक धारणाएँ रही है। जिस आचार्य ने काव्य में जिस तत्त्व को उत्कृष्ट माना, उसी के अनुसार काव्य का लक्षण किया है। इससे काव्यचिन्तकों में अत्यधिक वैमत्य दृष्टिगोचर होता है। कुछ आचार्य शब्द को, कुछ अर्थ को तथा कुछ दोनों की प्रधानता देते हैं। किसी आचार्य ने बाह्य तत्त्व, तो किसी ने आत्म तत्त्व के आधार पर काव्य का लक्षण किया है।

काव्यशास्त्र के आद्याचार्य **भरत** ने नाट्यशास्त्र में काव्य का लक्षण नहीं किया है परन्तु रूपक का वर्णन करते हुए उन्होनें काव्य के अंगों जैसे रस, गुण, अलङ्कार भाव आदि की विवेचना की है। काव्य परिभाषा पर सर्वप्रथम मत आचार्य भामह का प्राप्त होता है। इन्होंने शब्द और अर्थ दोनों के सहभाव को काव्य माना है।[4] सहितौ पद से शब्द और अर्थ के समान महत्त्व का प्रतिपादन ही अभीष्ट प्रतीत होता हैं। आचार्य **भामह** अलङ्कारवादी आचार्य है, अतः उन्होंने शब्दार्थ पर ध्यान दिया है। आचार्य **दण्डी** का मत है कि यदि शब्दरूपी ज्योति संसार को प्रकाशित न करे तो यह समस्त विश्व अंधकारमय हो जाए।[5] शब्द की महिमा का प्रतिपादन करने के पश्चात् वे काव्य का लक्षण करते हुए कहते हैं - इष्ट अर्थात् हृदयाह्लादक अर्थ से युक्त पदावली (पद समूह) काव्य का शरीर है।[6] इस लक्षण में उन्होंने इष्ट अर्थात् चमत्कारपूर्ण अर्थ से युक्त पद समूह को काव्य कहा है।

भामह तथा दण्डी के पश्चात् आचार्य **वामन** ने काव्य का लक्षण प्रस्तुत किया है। भामह और दण्डी ने काव्य लक्षण में काव्य शरीर की विवेचना की हैं। आचार्य वामन ने कुछ आगे बढ़कर उस काव्य शरीर में आत्मा की गवेषणा की है। उनके अनुसार रीति काव्य की आत्मा है।[7] काव्य अलङ्कार के कारण ही ग्राह्य होता है।[8] वे गुण व अलङ्कार से युक्त शब्दार्थ को काव्य मानते हैं।[9] आचार्य रुद्रट ने भी

4. शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्। का. ल., 1/16
5. इदमन्धतमः, कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
   यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते।। का. द., 1/4
6. शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली। वही, 1/10
7. रीतिरात्मा काव्यस्य। का. सू. वृ., 1/2/6
8. काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात् - वही, 1/1/2
9. काव्यशब्दोऽयं गुणलङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोवर्तते। का. सू. वृ., 1/1/1

शब्द और अर्थ के समन्वय को ही काव्य माना है।[10]

आचार्य **कुन्तक** काव्य का लक्षण देते हुए कहते हैं- सहृदय हृदयाह्लादक, वक्र (चमत्कारयुक्त) कवि व्यापार से युक्त बंध (रचना) में विशेष रूप से अवस्थित तथा सहित भाव से युक्त शब्द और अर्थ (दोनों मिलकर) काव्य होते हैं।[11] काव्य का काव्यत्व कवि की प्रतिभा व कौशल पर आधारित होता है। जब शब्दार्थ युगल सहित भाव से युक्त होकर कवि के वक्रोक्ति व्यापार युक्त बंध में व्यवस्थित होते हैं, तभी काव्य होता है।

क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य का प्राण मानते हुए कहा है कि औचित्य रससिद्ध काव्य का स्थिर जीवित है।[12] औचित्य रहित काव्य अलङ्कार व गुण होने पर भी निष्प्राण हो जाता है। मम्मट ने दोष रहित, गुण युक्त सामान्यतः अलङ्कार सहित कहीं-कहीं अलङ्कार रहित शब्दार्थ को काव्य माना है।[13] उनके अनुसार रस से पूर्ण होने पर भी यदि रचना में अलङ्कार स्फुट न हो, तो भी काव्यत्व की हानि नहीं होती।

आचार्य **विश्वनाथ** रसयुक्त वाक्य को काव्य कहते हैं।[14] पंडितराज जगन्नाथ ने काव्य का लक्षण करते हुए कहा है कि रमणीय अर्थ को प्रतिपादित करने वाला शब्द ही काव्य है।[15] रमणीयता से उनका अभिप्राय आनन्द या लोकोत्तर आह्लाद से है।

यहाँ काव्य लक्षणों की व्याख्या करना पिष्ट-पेषण मात्र ही होगा क्योंकि संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में इनकी विस्तार से चर्चा हुई है। जिन आचार्यों ने काव्य का लक्षण किया है, उन्होंने शब्द, अर्थ या शब्दार्थ मात्र को ही इसका आधार नहीं बनाया है अपितु इनसे अभिव्यञ्जित विशिष्ट भाव को ही काव्य का लक्षण प्रतिपादित किया है। यह विशिष्ट भाव निश्चित रूप से रसाभिव्यक्ति ही है।

---

10. ननु शब्दार्थौ काव्यम्। का. ल, 2/1
11. शब्दार्थौ सहितौ वक्रव्यापारशालिनि। बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी।। व. जी. 1/7
12. औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्। औ. वि. च., 1/5
13. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि। का. प्र., 1/1
14. वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। सा. द. 1/3
15. रमणीयार्थ-प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। र. गं. ध. 1/1

काव्य भेद

ध्वनिवादी आचार्यो ने व्यंग्य के आधार पर काव्य के तीन भेद किए है। ध्वनि काव्य, गुणीभूत व्यंग्य काव्य और चित्र काव्य। वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ के अधिक रमणीय होने पर ध्वनि काव्य होता है। विद्वानों ने इसे उत्तम काव्य कहा है।[16] जहाँ पर वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ की अपेक्षा अधिक रमणीय होता है, वहाँ मध्यम काव्य होता है। इसमें व्यंग्यार्थ गौण हो जाता है, इसीलिए इसके गुणीभूत व्यंग्य भी कहते हैं।[17] चित्र काव्य में व्यंग्यार्थ का अभाव होता है।[18] इसमें अलङ्कारों का प्राधान्य रहता है। यह शब्द चित्र और अर्थ चित्र नामक भेदों से दो प्रकार का होता है।

साहित्यदर्पणकार ने स्वरूप भेद के आधार पर अन्य प्रकार से काव्य के दो भेद किये हैं दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य।[19] दृश्य काव्य के दो भेद है- रूपक और उपरूपक। इसी प्रकार श्रव्य काव्य के भी तीन भेद होते है- पद्य, गद्य और चम्पू। छन्दयुक्त रचना पद्य कहलाती है। छन्दमुक्त रचना को गद्य कहते हैं तथा जिसमें गद्य और पद्य दोनों हों, उसे चम्पू कहा जाता है। गद्य को कवियों की कसौटी कहा गया है। गद्य के दो भेद है- कथा तथा आख्यायिका। कथा तथा आख्यायिका दोनों में सरस वस्तु का निबंधन गद्य द्वारा होता है। इनमें कहीं-कहीं आर्यावक्त्र व अपवक्त्र छन्द होते हैं। दोनों में मुख्य भेद यह है कि कथा कवि की काल्पनिक सृष्टि है जबकि आख्यायिका की विषय वस्तु ऐतिहासिक होती है। आख्यायिका की कथावस्तु उच्छवासो या आश्वासों में विभक्त रहती है। जबकि कथा में ऐसा नहीं होता।

धनपाल विरचित सहृदय हृदयाह्लादक रचना तिलकमञ्जरी कथा काव्य है। इसका मंगलाचरण नमस्कारात्मक है। धनपाल ने सर्वप्रथम जिनदेव की स्तुति की है। तत्पश्चात् खलादि के चरितों का वर्णन करके अपने पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख किया है। कथा के आरम्भ में भूमिका में ही धनपाल ने अपने वंश तथा

---

16. इदमुत्तममतिशयिनिव्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः। का. प्र., सू.2
17. अतादृशी गुणीभूतव्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यमम्। वहीं सू. 3
18. शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम्। वही, सू.4
19. दृश्यश्रव्यत्व भेदेन पुनः काव्यंद्विधा मतम्। सा. द., 6/1

आश्रय देने वाले राजाओं का उल्लेख किया है। यह सब विश्वनाथ के कथा लक्षण के अनुसार पद्य में किया गया है। मुख्य कथा गद्य में निबद्ध की गई है। जिसमें यत्र-तत्र आर्या, वक्त्र और अपवक्त्र छंदों का प्रयोग किया गया है।

सौन्दर्य

सुन्दरता का भाव ही सौन्दर्य है। सौन्दर्य अनुभूति का विषय है। किसी भी वस्तु या विषय की सुन्दरता मनुष्य के हृदय को प्रभावित करती है। नारी सौन्दर्य, सुन्दर पुष्प, ऊँचे-ऊँचे पर्वत, जंगल में खड़े घने वृक्ष, मनोरम घाटियाँ, घुमड़ते हुए बादल, स्वच्छ नीला आकाश किस के हृदय को हर नहीं लेते। सुन्दर वस्तु में वह आर्कषण होता है कि मनुष्य अपनी सुध-बुध खोकर सौन्दर्य रसास्वादन में तल्लीन हो जाता है। सुन्दरता ऋषि-मुनियों के हृदय में भी काम को प्रवेश करने का अवकाश दे देती है। नारद, विश्वामित्र सदृश महर्षि भी इसके वशीभूत हो गये, तब सामान्य जन की तो क्या कही जाए।

सौन्दर्य व्यक्ति सापेक्ष होता है। सौन्दर्य के प्रति प्रत्येक व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से आकर्षित होता है। तथा प्रत्येक व्यक्ति का सौन्दर्य के प्रति अलग दृष्टिकोण होता है। कोई सौन्दर्य को वस्तु में देखता है तो कोई हृदय में। इसी कारण सौन्दर्य के लिए क्रमानुसार अनेक धारणाएँ विकसित हुई। इन मतों व धारणाओं का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है।

पाश्चात्य चिन्तन

सौन्दर्य पाश्चात्य दार्शनिकों की समालोचना का प्रमुख व प्रिय विषय रहा है। इसलिए सौन्दर्य विषयक चिन्तन में पाश्चात्य विद्वानों के मतों की एक सुदीर्घ परम्परा दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन ग्रीक चिन्तक प्लेटो, अरस्तु प्रभृति विद्वानों से लेकर आधुनिक काल के सौन्दर्य शास्त्री क्रोचे ने सौन्दर्य पर विस्तारपूर्वक अपने मत को प्रस्तुत किये हैं।

प्लेटो : प्लेटो का सौन्दर्य विषयक दृष्टिकोण आध्यात्मिक है। वे कहते है कि सौन्दर्य सृष्टि का मूल तत्त्व है और इसका सन्धान करना ही तत्त्व द्रष्टा का चरम लक्ष्य है। वे सौन्दर्य को प्रकाश रूप मानते है जो वस्तुतः चैतन्य रूप है।[20]

20. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 21

प्लेटो का मत है- *If anything is beautiful, it is beautiful for no other reason that it pertakes of absolute beauty.*[21] प्लेटो प्रेममार्ग को सौन्दर्यानुभूति का साधन मानता है। यह स्थापित सत्य है कि व्यक्ति जिससे प्रेम करता है, उसे वह संसार में सबसे सुन्दर लगता है। लैला कृष्णवर्णा थी परन्तु मजनूँ को वह संसार की सभी स्त्रियों से अधिक सुन्दर लगती थी क्योंकि मजनूँ उसे प्रेम करता था।

प्लेटो ने सुंदर को सत्य और शिव से अभिन्न माना है। उसके अनुसार जगत् सत्य का प्रतिबिंब है अतः अवास्तविक है। इसी कारण जगत् में व्यक्त सौन्दर्य भी अवास्तविक है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में परमात्मा ही सत्य है अतः वह ही परम सौन्दर्य है। परम सौन्दर्य का निवास मानव का अन्तःकरण है।[22]

अरस्तू : सौन्दर्य के विषय में अरस्तू का दृष्टिकोण अपने गुरु प्लेटो से कुछ भिन्न है। प्लेटो का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था परन्तु अरस्तू का दृष्टिकोण यथार्थवादी था। उसके अनुसार सौन्दर्य का दर्शन नेत्रों से होता है अतः शुभ या कल्याणकारी से उसका कोई संबंध नही है। सौन्दर्य के प्रति मानव सदा से संवेदनशील रहा है। प्राकृतिक सौन्दर्य से उत्प्रेरित होकर वह सुन्दर कलाकृतियों का सृजन करता आया है। कलात्मक सृजन का जन्म मानव में भावनात्मक अभिव्यक्ति की क्षुधा के कारण होता है। सौन्दर्यात्मक आनन्द भावों से होता है, बौद्धिक स्त्रोत से नहीं। सौन्दर्य केवल बाह्य प्रकृति का अनुकरण न होकर मानव की अन्तः प्रकृति का भी अनुकरण है।[23] यह सत्य है कि कलाकार प्राकृतिक सौन्दर्य से ही सृजन की प्रेरणा ग्रहण करता है तथापि उसकी कृति उससे श्रेष्ठ होती है क्योंकि कलाकार अपने अन्तःकरण की प्रेरणा व अपनी प्रतिभा से उसमें अनन्त सौन्दर्य का समावेश कर देता है। इसी कारण कलाकार की कृति ब्रह्मा की कृति से श्रेष्ठ मानी जाती है।[24]

प्लोटिनसः प्लोटिनस का मत है कि सौन्दर्य भौतिक पदार्थों में नहीं होता अपितु उन शाश्वत विचारों में निहित है, जिन्हें सांसारिक वस्तुएँ या भौतिक पदार्थ

---

21. सौन्दर्य तत्त्वनिरूपण ; डॉ. नरसिम्हाचारी, पृ. 28
22. सौन्दर्य, राजेन्द्र बाजपेयी, पृ. 22-28
23. वही, पृ. 31-34
24. अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
    यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।। अ. पु., 339/10

केवल अंशतः प्रतिबिम्बित करते हैं। सौन्दर्य का दर्शन बाहरी नेत्रों से नहीं, आन्तरिक नेत्रों से सम्भव है। मानव मस्तिष्क सौन्दर्य के दर्शन तब तक नहीं कर सकता, जब तक वह स्वयं अपने आपको सुन्दर नहीं बना लेता।[25]

आगस्टीनः ईसाई दार्शनिक संत आगस्टीन कहते हैं *Beauty is Unity* और संसार तत्वतः सुन्दर है। सौन्दर्य के प्रति आगस्टीन का दृष्टिकोण भी पूर्णतः आध्यात्मिक था। उनके अनुसार जो व्यक्ति चक्षु इन्द्रिय के प्रतिबिम्ब के परे अन्य कुछ नहीं देखता, वह कुछ भी सृजनात्मक नहीं देख सकता।[26] इसका तात्पर्य यह है कि जो चक्षु इन्द्रिय के प्रतिबिम्ब के अन्दर के स्वरूप को अर्थात् उसके प्राण तत्त्व को देखता है, वही सच्चे सौन्दर्य का दर्शन कर सकता है।

एक्वीनसः संत थामस एक्वीनस ने आनन्द को सुन्दर की कसौटी बनाकर अपनी सौन्दर्य विषयक मान्यता को एक विषयीपरक रंग दिया। सुन्दर वस्तु वही है जिसकी अवधारणा आनन्दपूर्वक की जाए। सुन्दरता का ज्ञान और उसमें आनन्द की अनुभूति विषय और विषयी के मध्य एक प्रकार के समागम से उत्पन्न होती है।[27] एक्वीनस का मत है कि देखने पर जो वस्तु आत्मा को आह्लादित कर दे, उसका दर्शन शुभ है और वह सुन्दर कहलाने योग्य है।[28]

बामगार्टन : सौन्दर्य आरम्भ से ही पाश्चात्य विद्वानों का विवेच्य विषय रहा है परन्तु सर्वप्रथम बामगार्टन ने एक स्वतन्त्र विषय के रूप में "सौन्दर्य" का अध्ययन किया। उसने 1750 ई. में **'इस्थेटिका'** नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें उन्होंने सौन्दर्य के स्वरूप और उसके लक्ष्यों की विवेचना की है। बामगार्टन का मत है कि जब हम किसी वस्तु को देखकर उसके लालित्य से भावविभोर होकर उसे निरन्तर देखते रहते हैं, तो उससे जो आनन्द प्राप्त होता है, वही सौन्दर्यानुभूति है। बामगार्टन सौन्दर्य को इन्द्रियजन्य अनुभूति मानते हैं। सौन्दर्य दर्शन और उसका रसास्वादन पूर्णतः ऐन्द्रिय स्तर की वस्तु है। सौन्दर्य पर सर्वप्रथम सुव्यवस्थित रूप से विवेचन किए जाने के कारण उसे फादर आफ ऐस्थेटिक्स भी कहा जाता है।[29]

---

25. सौन्दर्य ; राजेन्द्र बाजपेयी, पृ. 34
26. वही, पृ. 39
27. रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र ; निर्मला जैन, पृ. 50
28. सौन्दर्य ; राजेन्द्र बाजपेयी, पृ. 41
29. वही, पृ. 59-60

काँट : काँट ने बामर्गाटन के मत का खण्डन किया है। उसके अनुसार वह वस्तु जो हमें केवल आनन्द प्रदान करती है, उसे हमें सुन्दर नहीं कहना चाहिए। सौन्दर्य का आदर्श केवल मानव के सम्बन्ध में लागू होता है। काँट का मत है कि सुन्दर वस्तु सार्वभौम आनन्द प्रदान करती है, तथापि सौन्दर्य का कोई सार्वभौम मापदण्ड नहीं हो सकता। सौन्दर्य संसार व्यवहारिक संसार से बिल्कुल भिन्न है। सौन्दर्य भावना की अभिव्यक्ति में होता है। काँट ने सौन्दर्य के स्थूल अस्तित्व का खण्डन किया है। उसके अनुसार वस्तु में सौन्दर्य नहीं होता, केवल द्रष्टा के मानस पटल पर उसका अस्तित्व होता है। सौन्दर्य के सम्बन्ध में निर्णय सदैव व्यक्तिगत होता है अतः सौन्दर्य के लिए निश्चित शर्तें देना असम्भव है।[30]

हीगल : जर्मन दार्शनिक हीगल ने **'इस्थेटिक'** नामक अपने ग्रन्थ में सौन्दर्य की विवेचना करते हुए अपना सौन्दर्य दर्शन प्रस्तुत किया है। हीगल ने सौन्दर्य को मस्तिष्क या विचार का प्रत्यक्षीकरण माना है, जिसकी अनुभूति एन्द्रिय माध्यम से की जाती है। हीगल एस्थेटिक को ललित कलाओं का दर्शन कहते हैं। उसके अनुसार मस्तिष्क प्रकृति से श्रेष्ठतर है अतः कला का सौन्दर्य प्रकृति से श्रेष्ठतर है। सौन्दर्य की सर्वप्रथम अनुभूति विवेक से होती है और उसी की अनुभूति कला है। यह अनुभूति व्यक्ति की बौद्धिक शक्तियों पर निर्भर करती है। प्लेटो ने कलाओं को सत्य के अनुकरण प्रकृति का अनुकरण कहकर उसे निम्नतर माना है, परन्तु हीगल का मत है कि कला सत्य के अनुकरण का अनुकरण मात्र नहीं, अपितु प्रकृति से उच्चतर वस्तु है क्योंकि कला यथार्थ से उठकर आदर्श की ओर चलती है। प्रत्येक महान् कलाकृति का प्रेरणा स्रोत प्रकृति होती हे। किन्तु जितनी वह महान् होती है उतनी ही वह जड़ जगत् से ऊपर उठती जाती है। इस प्रकार हीगल का चिन्तन विषय मुख्यतः कला सौन्दर्य रहा है।[31]

रस्किन : जॉन रस्किन ने भी सौन्दर्य पर अपने मतों को प्रस्तुत किया है। रस्किन की गणना योरोप के महान् सौन्दर्यशास्त्रियों में की जाती है। रस्किन का विचार है कि जब कोई बाह्य पदार्थ विचार के अभाव में केवल अपने बाह्य गुणों की सहज कल्पना से आनन्द देता है, तब हम उसे सुन्दर कहने लगते हैं। हम यह नहीं बता सकते कि हम किसी वर्ण या रंग के समवाय में आनन्द क्यों मानते हैं।

30. सौन्दर्य ; राजेन्द्र बाजपेयी, पृ. 61-64

31. वही, पृ. 64-68

यह स्थिति ठीक ऐसी है जैसे हम यह नहीं बता सकते कि हमें मीठा खाना क्यों पसन्द है और तीखा हमें क्यों नहीं भाता।[32]

रस्किन सौन्दर्य को प्रकृतिगत मानते हैं और वह ईश्वरीय अभिव्यक्ति होने के कारण उदात्त है। वह सौन्दर्याभिरुचि परिष्कृत है, जो हमारी नैतिक वृत्ति के अनुकूल वस्तु की शुद्धता और पूर्णता में सर्वाधिक आनन्द प्रदान करती है।[33]

कालरिज : कालरिज सौन्दर्य भावना को अन्तःप्ररित या आन्तः प्रज्ञ मानता है जिसका कार्य है आनन्द प्रदान करना।[34] सौन्दर्यानन्द का रसास्वादन वहीं कर सकता है जिसकी वृत्तियाँ कोमल है, जो भावुक है तथा जो सौन्दर्य का पारखी है। कालरिज काल को प्रकृति की अनुकृति नहीं मानता। इसके अनुसार कलाकार प्रकृति के बाह्य रूपों का अनुकरण न कर प्रतीकों द्वारा प्रकृति की आत्मा का सम्प्रेषण करता है। कलाकार मूल वस्तु का अनुकरण तो करता है साथ ही वह अपनी ओर से भी कुछ न कुछ जोड़ता-घटाता है, अपने विचारों के रंग में उसे रंगता है, अपनी कल्पना की स्वर्णाभा से अलंकृत करता है। कलाकृति जीवन की प्रतिकृति नहीं होती, उसमें जीवन से कुछ बातें अधिक होती है, कुछ कम।[35] कल्पना का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कालरिज ने कहा है कि कलाकार की महत्ता सृजन में है और यह कार्य कल्पना कर सकती है। कलाकार को चाहिए कि वह ऐसा रूप प्रस्तुत करे, जिससे प्रकृति की आत्मा का, उसके विशिष्ट व्यक्तित्व का, उसके सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण हो सके।[36]

क्रोचे : आधुनिक सौन्दर्यशास्त्रियों में बेनेदेत्तो क्रोचे का प्रमुख स्थान है। क्रोचे ने अपने ग्रन्थ **ईस्थेटिक** में सौन्दर्य की विस्तारपूर्वक विवेचना की है। क्रोचे के अनुसार सौन्दर्य प्रकृतिगत न होकर कलाकार की सृष्टि है। मन के सहज ज्ञान की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति उसका कारण है। जो सहज ज्ञान की बिम्बात्मक अभिव्यञ्जना नहीं है वह केवल ऐन्द्रिय संवेदन या प्राकृतिक धारणा है। सहज ज्ञान का बिम्ब मानसिक है और कलाकार अपने माध्यम (कृति) में उसे प्रकट

32. सौन्दर्य तत्त्व ; दासगुप्त, पृ. 175
33. सौन्दर्य तत्त्व निरूपण ; डॉ. नरसिम्हाचारी, पृ. 29
34. पश्चात्य काव्यशास्त्र ; देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ. 130
35. पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त ; डॉ. शान्तिस्वरूपगुप्त, पृ. 144-146
36. वही; पृ. 152

करने का प्रयत्न करता है। इस व्यक्त रूप के द्वारा भावक कलाकार की भावना या मानसिक अभिव्यञ्जना तक पहुँच पाता है।[37] अभिव्यञ्जना आत्मिक क्रिया है। यह वह साधन है, जो संवेदन के धुँधले क्षेत्र से भाव या अनुभूति को निकाल कर बोधगम्य बनाती है। सौन्दर्य सफल अभिव्यञ्जना है। यदि अभिव्यञ्जना सफल नहीं है तो वह अभिव्यञ्जना ही नहीं है। सुन्दर में एकता होती है, क्योंकि सुन्दर में मात्रा का भेद अशक्य है। सुन्दर का अर्थ ही है- पूर्ण सुन्दर, जो पूर्ण नहीं है, वह सुन्दर भी नहीं है। अधिकतर सौन्दर्यशास्त्री कलाकार के आनन्द के विषय में विवेचना नहीं करते, उनकी दृष्टि मुख्यतः भावक पर रहती है। किन्तु क्रोचे ने स्रष्टा को भी आनन्द का भोगी माना है। उसके अनुसार सफल अभिव्यञ्जना से कलाकार को भी आनन्द प्राप्त होता है।[38]

इसी प्रकार अनेक अन्य पाश्चात्य दार्शनिकों ने सौन्दर्य की विवेचना की है। इन विद्वानों में कुछ की सौन्दर्य दृष्टि व्यक्तिपरक, कुछ की विषयपरक तथा कुछ की आत्मपरक है। इनमें मतैक्य दृष्टिगोचर नहीं होता। डॉ. नरसिम्हाचारी का मत है कि सुन्दर की खोज में पाश्चात्य विद्वानों व दार्शनिकों की एक लम्बी पंक्ति अवश्य प्रवृत्त हुई है, किंतु सुन्दर का स्वरूप निर्धारित करने में कोई सर्वमान्य ढंग से सफल नहीं हो पाया है।

संस्कृत वाङ्मय में सौन्दर्य

यह माना जाता है कि संस्कृत वाङ्मय में 'सौन्दर्य' पद का प्रयोग अधिक प्राचीन नहीं है। पाश्चात्य विद्वान् भी आँखे मूंदकर तथा यह सोचकर अभिभूत होते रहते हैं कि उनका सौन्दर्य विषयक चिन्तन सर्वाधिक प्राचीन है और अनेक भारतीय विद्वान् भी यही मानते हैं कि सौन्दर्य की अवधारणा पश्चिम की देन है। किंतु यदि पूर्वाग्रह त्याग कर चिन्तन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में वैदिक काल से ही सौन्दर्य के प्रति विशेष आकर्षण रहा है। प्राचीन काल से ही संस्कृत वाङ्मय में सौन्दर्य के वाचक और व्यञ्जक पदों का प्रयोग होता आया है। **अमरकोश** में सुन्दर के बारह पर्याय दिए गए हैं -सुन्दर, रुचिर, चारु, सुषम, साधु, शोभन, कांत, मनोरम, रुच्च, मनोज, मञ्जु और मञ्जुल।[39] ललित, कमनीय,

---

37. सौन्दर्य तत्व निरूपण ; डॉ. नरसिम्हाचारी, पृ. 32
38. पाश्चात्य काव्य शास्त्र ; देवेन्द्र नाथ शर्मा, पृ. 168-170
39. सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्।
कान्तं मनोरमं रुच्यं मनोज्ञं मञ्जु मञ्जुलम्। अ. को., तृ का. 1/52

रमणीय, आदि पद भी सुन्दर के वाचक है। डॉ. फतह सिंह का मत है कि सौन्दर्य विषयक शोध कार्यों से यह स्पष्ट है कि भारतीय काव्य चिन्तन में सौन्दर्य तत्व का अस्तित्व उतना ही प्राचीन है जितना ऋग्वेद। ऋग्वेद के अनुसार काव्य में प्रियता, मधुर-मादकता तथा चारुता मुख्य होती हैं।[40]

ऋग्वेद में सुन्दर तथा सौन्दर्य वाचक अनेक पर्यायों का प्रयोग मिलता है जैसे - पेशस, अप्सस्, दृश, चारु, रुचिर, भद्र, चित्र, प्रिय, कल्याण, शुभ, श्रिय आदि। डॉ. पाण्डेय कहते हैं कि वैदिक कवि द्रष्टा और ऋषि थे। उनका प्रकृति का प्रत्यक्षीकरण सजीव और सुंदर था।[41] उषस् आदि सूक्तों में प्रकृति सौन्दर्य का अपूर्व वर्णन किया गया है। प्रकाश रूपी वस्त्र से आवृत उषा पूर्व दिशा में उदित होकर अपने सौन्दर्य को अनावृत करती है। वह निशा के अंधकार को दूर कर अपने प्रकाश-सौन्दर्य से जगत् को मोहित करती है।[42] इसी प्रकार ऋग्वेद के सोम, अग्नि, विष्णु, उषा, आदि सूक्तों में सौन्दर्य का विविध रूपों वर्णन मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि ऋग्वेद काल से ही वैदिक ऋषि सौन्दर्य विषयक अत्यन्त सूक्ष्म चिन्तन किया करते थे।

उपनिषदों में भी सौन्दर्य विषयक चिंतन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों में सौन्दर्य को विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से देखा गया है। यहाँ प्रकाश रूप परम तत्व को ही सौन्दर्य की संज्ञा दी गई है। उपनिषदों में सौन्दर्य और सत्य को समरूप कहा गया है, जो शाश्वत सत्य है। इनमें सौन्दर्य का भौतिक पक्ष उपेक्षित रहा है।[43]

आदिकवि वाल्मीकि कृत **रामायण** में भी सुन्दर के लिए रम्य, शोभन, रमणीय, चारु आदि पदों का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है। रामायण के सात काण्डों में से एक काण्ड का नाम ही 'सुन्दर काण्ड' है। आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत है "रामायण बाल्मीकि की अमृतमय वाणी में सौन्दर्य सृष्टि का चरम उत्कर्ष है।"[44] रामायण में प्रकृति, मानव व कलागत सौन्दर्य अपने चरम रूप में दृष्टिगोचर

---

40. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, पृ. 73
41. स्वतन्त्रकलाशास्त्र ; कान्तिचन्द्र पाण्डेय, पृ. 10-11
42. एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात्। उषसूक्त, वैदिक संग्रह, पृ. 54
43. सौन्दर्य, राजेन्द्र बाजपेयी, पृ. 144
44. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आ. बलदेव उपाध्याय, पृ. 31

होता है। रामायण में यद्यपि प्रकृति सौन्दर्य की प्रधानता है तथापि संगीत, नृत्य, मूर्ति, चित्र आदि कलाओं का सौन्दर्य पदे-पदे परिलक्षित होता है। काव्य के सभी तत्वों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन होने के कारण काव्याचार्य सदैव इसमें से उदाहरणों को उद्धृत करते रहते हैं। ध्वनिकार आनन्दवर्धन भी अपने ध्वनि सिद्धान्त को परिपुष्ट करने के लिए रामायण का ही अवलम्बन करते हैं -

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा आदिकवेः पुरा।
क्रौंचद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥[45]

कवि शिरोमणि **कालिदास** के काव्यों में भी सर्वत्र सौन्दर्य का दर्शन होता है। कालिदास वल्कलवस्त्र धारिणी शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि प्रकृत्या सुन्दर आकृति वाले शरीर कुछ भी धारण कर ले, वे उनके अलङ्करण बन जाते हैं क्योंकि सहज सौन्दर्य असुन्दर को भी सुन्दर बना देता है।[46] डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित कहते हैं कि कालिदास सौन्दर्य को केवल वस्तु का गुण नहीं मानते, इसके विपरीत वे उसमें निहित अन्तरीण सौन्दर्य-शक्ति का दर्शन करते हैं। यह सौन्दर्य प्रकृतिदत्त ही नहीं है, ईश्वर द्वारा प्रतिष्ठित, आध्यात्मिक और अभौतिक भी है। कुमारसम्भव में पार्वती का शब्द चित्र बनाते हुए उन्होंने इसी सत्य का उद्घाटन किया है।[47]

संस्कृत काव्याचार्यों ने भी सौन्दर्य की विभिन्न रूपों में विवेचना की है। सत्य का प्रमुख प्रयोजन आनन्द प्रदान करना है। पाश्चात्य चिन्तक सौन्दर्य को आनन्द का मूल कारण मानते हैं। भारतीय काव्यज्ञ भी काव्य के आत्म तत्व 'सौन्दर्य' के महत्व को भली भांति जानते थे इसलिए उन्होंने काव्य में सौन्दर्य के स्वरूप और उसके मूल तत्वों पर अति सूक्ष्मता से विचार किया है। बलदेव उपाध्याय कहते हैं-संस्कृताचार्य जानते थे कि सौन्दर्य के अभाव में न तो अंलकार

---

45. ध्वन्या., 1/5
46. सरसिजमनुविद्धं शैलवेनापि रम्यं, मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्मीलक्ष्मीं तनोति।
    इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी, किमिव हि मधूराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥ अभि. शा. 1/18
47. (क) सौन्दर्य तत्त्व, दासगुप्त, भूमिका, पृ.40
    (ख) सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथा प्रदेशं विनिवेशितेन।
    सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव॥ कुमार., 1/49

में अलंकारतत्व रहता है और न ध्वनि में ध्वनितत्त्व।[48] आचार्यों ने काव्यता की गवेषणा करते हुए किसी न किसी रूप में सौन्दर्य की विवेचना की है।

संस्कृत काव्याचार्यों में वामन ने सर्वप्रथम 'सौन्दर्य' का परिभाषा परक अर्थ किया है - **काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्। सौन्दर्यमलङ्कारः।**[49] अर्थात् काव्य अलङ्कार से ग्राह्य होता है, सौन्दर्य ही अलङ्कार है। इस प्रकार वामन ने सौन्दर्य को काव्य का प्राण माना है। जिसमें सौन्दर्य नहीं वह काव्य ही नहीं है। 'अलंक्रियते अनने इति अलङ्कारः' ऐसी व्युत्पत्ति करने पर अलंङ्कार का अर्थ होता है वे सभी तत्व जो काव्य को अलङ्कृत करते हैं, अलङ्कार कहलाते हैं। इससे काव्य के सभी तत्त्वों का अन्तर्भाव अलङ्कार में हो जाता है। वामन ने **सौन्दर्यमलङ्कारः** कहकर अलङ्कार को काव्य का सर्वस्व माना है। यदि वामन को अलङ्कार शास्त्र का कोई अन्य नाम अभिप्रेत होता, तो मैं समझता हूं वह निश्चित ही सौन्दर्यशास्त्र होता।

पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने काव्य लक्षण में सौन्दर्य के उचित पर्याय रमणीय का प्रयोग किया है - **रमणीयार्थ-प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।**[50] अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द काव्य है। यह रमणीय अर्थ सौन्दर्य ही है। ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने भी काव्य सौन्दर्य को प्रतीयमान अर्थ (ध्वनि) की संज्ञा से अभिहित किया है। उनके अनुसार जिस प्रकार अङ्गना में लावण्य (सौन्दर्य) उसके प्रसिद्ध अङ्गों से भिन्न भासता है। उसी प्रकार प्रतीयमान अर्थ महाकवियों की वाणी में वाच्यार्थ से अलग ही भासित होता है-

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरक्तिं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।।[51]

मम्मट भी इसका समर्थन करते हुए कहते हैं कि जहां व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की उपेक्षा अधिक अधिक सुन्दर और चमत्कारयुक्त होता है उसे विद्वान् ध्वनि कहते हैं।[52] वक्रोक्ति सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य **कुन्तक** का मत है कि काव्य सौन्दर्य कथन की विलक्षणता में होता है। कुन्तक सौन्दर्य को कवि वाणी का

---

48. भारतीय साहित्यशास्त्र, पृ. 2
49. का. सू. वृ., 1/1/1, 2
50. र. गं. ध., 1/1
51. ध्वन्या. 1/4
52. इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः। का. प्र., सू.2

आधार तत्व मानते हुए कहते हैं – कवि वाणी केवल कथा पर आश्रित होकर जीवित नहीं रहती, अपितु उसके जीवन का आधार है रसास्वादन कराने वाले प्रसंगों की अतिशयता।[53] भर्तृहरि ने भी कहा है- सुकवियों की वाणी उनके मरणोपरान्त भी यशरूपी काया में उन्हें जीवित रखती है।[54]

अनेक परवर्ती आचार्यों ने चमत्कार को सौन्दर्य का मूल माना है। आचार्य क्षेमेन्द्र के औचित्य विषयक मत को उद्धृत करते हुए डॉ. दीक्षित कहते हैं कि क्षेमेन्द्र ने औचित्य से ही चमत्कार का उदय स्वीकार कर लिया, क्योंकि औचित्य के अभाव में काव्य में उस मनोज्ञता (सौन्दर्य) के उदय की आशा नहीं की जा सकती, जो सहृदय को आकर्षित कर सके।[55] **क्षेमेन्द्र** ने औचित्य को रस सिद्ध काव्य का जीवित कहा है। औचित्य के कारण ही रस का चारुचर्वण होता है।[56] चारु पद सौन्दर्य का वाचक है तथा चर्वणा आस्वादन का। इस प्रकार क्षेमेन्द्र ने परोक्षत: सौन्दर्य की ही विवेचना की है।

इसी प्रकार भामह, दण्डी, रुद्रट, विश्वनाथ, अभिनवगुप्त प्रभृति अनेक आचार्यों ने सौन्दर्य तथा सुन्दर पद का प्रयोग किया है अथवा उनके वाचक पदों का बहुश: प्रयोग किया है। यहां पर कुछ आचार्यों के मतों का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। इस विवेचना से यह स्पष्ट है कि संस्कृत वाङ्मय में सौन्दर्य की अवधारणा नवीन नहीं है। संस्कृतज्ञ सौन्दर्य तत्त्व की सूक्ष्मता को देख चुके थे, समझ चुके थे तथा उसकी विवेचन कर चुके थे।

सौन्दर्य का क्षेत्र

पाश्चात्य व भारतीय दृष्टिकोणों के पर्यालोचन से यह ज्ञात होता है कि कुछ विद्वान् सौन्दर्य का संबंध केवल ललित कलाओं से मानते हैं तथा कुछ कलाओं के अतिरिक्त प्रकृति और जगत् के प्रत्येक क्षेत्र में भी सौन्दर्य का दर्शन करते हैं।

---

53. निरन्तररसोद्गारगर्भसन्दर्भनिर्भराः। गिरः कवीनां जीवन्ति न कथामात्रमाश्रिता। व. जी., चतुर्थ उन्मेष, पृ.417
54. जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।। नी. श., पद्य 21
55. सौन्दर्य तत्त्व, दासगुप्त, भूमिका, पृ. 42
56. (क) औचित्यं रस सिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्। औ. वि. च., 1/5
(ख) औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे रस जीवितभूतस्य। वही, 1/3

पाश्चात्य दार्शनिक हीगल ने सौन्दर्य को कलाओं का दर्शन कहा है। ये कलाएं पांच हैं - वास्तु, मूर्ति, चित्र संगीत और काव्य। ये समस्त कलाएं सौन्दर्य की विभिन्न माध्यमों से की गई अभिव्यक्ति होती है, दूसरे शब्दों में वे सौन्दर्य का मूर्त रूप हैं। वात्स्यायन ने सौन्दर्य के मूल को पहचान कर कलाओं का अति सूक्ष्म विभाजन किया है। उन्होंने कामसूत्र में कलाओं की संख्या 64 बताई है। भारतीय परम्परा में सौन्दर्यतत्त्व कलाओं से विच्छिन्न कोई अलग तत्त्व नहीं है। जो सुन्दर नहीं है, वह कला ही नहीं है। सौन्दर्य के क्षेत्र के विषय में डॉ. नगेन्द्र का मत है - प्रकृति सौन्दर्य के प्रत्यक्ष भावन और चिंतन से कला का जन्म होता है और कलानिबद्ध सौन्दर्य के भावन और चिंतन से सौन्दर्यशास्त्र का। वस्तुतः सौन्दर्य का क्षेत्र अति विस्तृत है। विभिन्न विद्वान् अपने विवेकानुसार इसका क्षेत्र निर्धारण करने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु सौन्दर्य विषयक अधिकतर आधारग्रन्थ इस मत को स्पष्ट करते हैं कि सौन्दर्य के क्षेत्र में कलागत सौन्दर्य आता है। जहां प्रकृतिगत सौन्दर्य की विवेचना की गई हैं। वहां कलागत सौन्दर्य को उद्दीपक व प्रेरणा स्रोत माना गया है।

काव्य सौन्दर्य

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि सौन्दर्य का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। यह काव्येतर कलाओं में भी प्रस्तुत है। काव्य सौन्दर्य का अध्ययन क्षेत्र काव्य तथा उसके तत्त्वों के अध्ययन तक सीमित है। काव्यकला को सभी कलाओं में सर्वोत्तम माना गया है। कवि को जैसा रुचिकर लगता है, उसी प्रकार से काव्य जगत् परिवर्तित हो जाता है।[57] मम्मट भी कवि की सृष्टि को ब्रह्मा की सृष्टि से उत्कृष्ट बताते हुए कहते हैं-कवि की सृष्टि नियति के बंधनों से रहित, केवल आनन्दस्वरूपा, किसी अन्य के नियन्त्रण से रहित तथा नौ रसों से रुचिर है।[58] काव्य का प्रमुख प्रयोजन सामाजिक को आनन्द प्रदान करना है। सामाजिक इस मीमांसा में नहीं पड़ता कि उसे आनन्दानुभूति (सौन्दर्यानुभूति) काव्य के किस तत्त्व से हुई है। इसकी मीमांसा करना तो काव्यज्ञों तथा काव्याचार्यों का कार्य है। सौन्दर्य कैसे उत्पन्न होता है। तथा सौन्दर्य का वह कौन सा नियामक तत्त्व है

57. अपारे काव्येसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।। अ. पु., पृ. 339/10

58. नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति। का. प्र., 1/1

जिसकी सत्ता से काव्य में काव्यत्व रहता है। इस प्रश्न की गवेषणा में ही काव्यशास्त्र में अनेक सम्प्रदायों का उदय हुआ। प्रारम्भिक आचार्य अलङ्कारों को ही काव्य का सर्वस्व मानते थे, अतः उनके ग्रन्थों का नाम भी काव्याङ्कार होता था। परन्तु परवर्ती आचार्यों को यह मत स्वीकार नहीं हुआ और उन्होंने रस, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य और ध्वनि को काव्यात्मा मानकर विवेचनाएं की, जिससे रस सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय, औचित्य सम्प्रदाय और ध्वनि सम्प्रदाय का विकास हुआ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में काव्य-सौन्दर्य विषयक तत्त्वों- रस, औचित्य और वक्रोक्ति के आधार पर तिलकमञ्जरी के विविध स्थलों के वर्णनों में उत्पन्न चमत्कार व रमणीयता की विवेचना की गई है। गद्य काव्य में पात्रों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। कवि पात्रों के माध्यम से ही अपनी कल्पना को आकार प्रदान करता है। वह पात्रों की अन्तः प्रकृति को निर्धारित कर उससे अभिलषित आचरण करवाता है, जिससे उसके पात्र जीवंत होकर काव्य सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं। अतः सौन्दर्य उद्घाटन के क्रम में सर्वप्रथम पात्रों के चारित्रिक सौन्दर्य को प्रकट किया गया है।

द्वितीय अध्याय

धनपाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

- धनपाल का जीवन
- धनपाल का समय
  - अन्तः प्रमाण
  - बाह्य प्रमाण
- धनपाल की प्रतिभा
- धनपाल का कृतित्व

धनपाल का जीवन

धनपाल ने स्वरचना तिलकमञ्जरी में अपने जीवन, पिता एवं पितामह आदि का वर्णन किया है। धनपाल का जन्म मध्यप्रदेश के सांकाश्य नगर के काश्यप गोत्रिय ब्राह्मण कुल में हुआ। इनके पिता 'सर्वदेव' एक विद्वान् ब्राह्मण, समस्त शास्त्रों के अध्येता तथा कर्मकाण्ड में निपुण थे। उनकी वाणी कमनीय काव्य के निबन्धन तथा अर्थ मीमांसा करने में प्रकृष्ट थी।[1]

धनपाल के अनुज का नाम शोभन था। यह दर्शन, व्याकरण तथा साहित्य शास्त्र का विद्वान् था। इसे अपने पिता में परमश्रद्धा थी। यह अपने पिता की आज्ञा से जैन धर्म की दीक्षा लेकर जैन मुनि बन गया था। शोभन ने चौबीस तीर्थकरों की स्तुति में 'स्तुतिचतुर्विंशतिका' की रचना की थी। शोभन के आग्रह करने पर धनपाल ने इस पर टीका लिखी थी। धनपाल की भगिनी का नाम सुन्दरी था, जो संस्कृत एवं प्राकृत भाषा की विदुषी थी। सुन्दरी के लिए धनपाल ने पाइयलच्छीनाममाला नामक प्राकृत कोश की रचना की थी। धनपाल का विवाह 'धनश्री' नामक अत्यन्त कुलीन कन्या से हुआ।[2] प्रबन्धचिन्तामणि में धनपाल की पत्नी के लिए ब्राह्मणी शब्द का प्रयोग किया गया है।[3]

धनपाल के पितामह का नाम देवर्षि था। 'देवर्षि' अत्यन्त दानी थे। धनपाल उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं – ''मध्य देश के सांकाश्य नगर में एक द्विज उत्पन्न हुआ, जो दानवर्षित्व से विभूषित होते हुए भी देवर्षि नाम से प्रसिद्ध हुआ।[4]

धनपाल का पारिवारिक वातावरण अध्ययनात्मक था। धनपाल के पिता एवं पितामह वेद, वेदाङ्गो के प्रकाण्ड पण्डित तथा धार्मिक कर्मकाण्डों में निपुण थे, इसी कारण धनपाल की शास्त्राध्ययन में रुचि स्वतः ही हो गयी थी। धनपाल ने श्रुतियों तथा स्मृतियों का गहन अध्ययन किया था।

---

1. शास्त्रेष्वधीती कुशलः क्रियासु, बन्धे च बोधे च गिरां प्रकृष्टः।
   तस्यात्मजन्मा समभून्महात्मा, देवः स्वयंभूरिव सर्वदेवः।। – ति. म., भूमिका, पद्य 52
2. बोरदिया, हीराबाई; जैनधर्म की प्रमुख साध्वियाँ एवं महिलाएँ, पृ. 184
3. मेरूतुंग; प्रबन्धचिन्तामणि, पृ. 36
4. आसीद् द्विजन्माऽखिलमध्यदेशप्रकाशसांकाश्यनिवेशजन्मा।
   अलब्ध देवर्षिरिति प्रसिद्धिं यो दानवर्षित्वविभूषितोऽपि।। – ति. म., भूमिका, पद्य 51

धनपाल धारानगरी के राजा मुञ्ज तथा उनके उत्तराधिकारी भोजराज के आश्रित थे। राजा मुञ्ज का भोजराज पर अत्यधिक स्नेह था, इसीलिए मुञ्ज ने भोजराज का राज्याभिषेक स्वयं किया था।[5] धनपाल ने अपनी विद्वता से राजा भोज की सभा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। आचार्य मेरूतुंग के अनुसार धनपाल राजा भोज की सभा के अन्यतम पण्डित थे।[6] राजा मुञ्ज ने इनकी काव्य कला से प्रसन्न होकर अपनी राजसभा में 'सरस्वती' की उपाधि से सम्मानित किया था।[7]

धनपाल वैदिक कर्मकाण्डों को करने वाले कट्टर ब्राह्मण थे। धनपाल के अनुज शोभन ने जैन धर्म की दीक्षा ली थी। बाद में धनपाल ने भी अपने अनुज शोभन व जैन सिद्धान्तों से प्रभावित होकर जैन धर्म की दीक्षा ली। प्रबन्ध चिन्तामणि में धनपाल के जैन धर्म को स्वीकार करने की कथा इस प्रकार दी गई है[8] -

एकबार धनपाल के पिता सर्वदेव जैन मुनि वर्धमान सूरि के प्रवचनों से उनके गुणों से प्रभावित हो गये। उनके गुणों में अनुरक्त होकर वे वर्धमान सूरि के उपाश्रय में गए तथा उनसे कहा कि मेरे पिता देवर्षि राजाओं से दक्षिणास्वरूप अत्यधिक धन प्राप्त करते थे। इस कारण मुझे अपने गृह में संचित निधि होने का संदेह है। सर्वदेव ने संचित धन मिलने पर आधा धन उन्हें देने का वचन दिया। शुभ मुहूर्त में मुनि द्वारा निर्देशित स्थान से सर्वदेव को धन की प्राप्ति होने पर मुनि ने सर्वदेव से उसके दो पुत्रों में एक को जैन धर्म में दीक्षित करने हेतु माँगा। सर्वदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को मुनि का शिष्य बनकर उन्हें ऋणमुक्त करने के लिए कहा, परन्तु कट्टर ब्राह्मण धनपाल ने जैन धर्म की बहुत निन्दा की। तब धनपाल के अनुज शोभन ने जैन धर्म की दीक्षा लेना स्वीकार कर लिया।

---

5. आकीर्णाङ्कितलः सरोजकलशच्छत्रादिभिर्लाञ्छनै-
स्तस्याजायत मांसलायतभुजः श्रीभोज इत्यात्मजः।
प्रीत्या योग्य इति प्रतापवसतिः ख्यातेन मुञ्जाख्यया
यः स्वे वाक्पतिराजभूमिपतिना राज्येऽभिषिक्तः स्वयम्।।-ति. म., भूमिका, पद्य 43

6. अभ्यस्तसमस्तविद्यास्थानेन धनपालेन श्रीभोजप्रसाद सम्प्राप्त
समस्तपण्डितप्रकृष्टप्रतिष्ठेन - प्रबन्धचिन्तामणि, पृ. 36

7. तज्जन्मा जनकांघ्रिपंकजरजः सेवाप्तविद्यालवो
विप्रः श्रीधनपाल इत्यविशदामेतामबध्नात् कथाम्।
अक्षुण्णोऽपि विविक्तसूक्तिरचने यः सर्वविद्याब्धिना
श्रीमुञ्जेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः।। - ति. म., भूमिका, पद्य 53

8. मेरूतुंग; प्रबन्धचिन्तामणि, पृ. 36

धनपाल ने अपने अनुज के इस कृत्य से रुष्ट होकर राजा भोज के द्वारा राज्य में जैन मुनियों के प्रवेश पर बारह वर्षों तक के लिए रोक लगवा दी। इस पर धारा नगरी के उपासकों के प्रार्थना करने पर तथा गुरुपुरुषों के बुलाये जाने पर सभी जैन सिद्धान्तों में पारङ्गत मुनि शोभन ने अपने गुरु से आज्ञा प्राप्त कर धारानगरी में प्रवेश किया। पालकी में जाते हुए धनपाल ने अपने भ्राता शोभन मुनि को धारा नगरी में प्रवेश करते हुए देखकर उन्हें उपलक्षित कर उपहास करते हुए कहा - "गर्दभदन्त भदन्त नमस्ते।" इस पर शोभन मुनि ने उन्हें आर्शीवाद देते हुए कहा - "कपिवृषणास्य वयस्य सुखं ते।" (हे कपियों में श्रेष्ठ आपको सुख हो)। उपहास में नमस्ते कहे जाने पर भी आशीर्वाद देकर शोभन मुनि ने वचनचातुर्य से धनपाल के हृदय को जीत लिया। धनपाल ने पूछा - 'आप किसके अतिथि हैं', शोभन मुनि ने कहा कि हम आपके अतिथि हैं। तब धनपाल ने मीठे वचनों में उन्हें भोजन का निमन्त्रण दिया। जैन मुनि प्रासुक (अनुद्दिष्ट) आहार भोजी होते हैं, अतः उन्होंने इसका निषेध किया।

जैन धर्म में जीवरक्षा की प्रधानता है। वे इस विषय में अत्यन्त सजग रहते हैं कि कहीं अनजाने में भी उनसे किसी जीव की हत्या न हो जाए। भिक्षाचर्या के लिए दो जैन मुनियों के घर आने पर धनपाल की पत्नी ने उन्हें दो दिन का दही दिया। मुनि द्वारा यह पूछा जाने पर कि यह दही कितने दिन का है, धनपाल ने उपहास करते हुए कहा - क्या इसमें कीड़े हैं?तब मुनि ने कहा कि हाँ, इसमें कीड़े है तथा उन्होंने उसे कीड़े दिखाए। इससे धनपाल को जिन धर्म में जीवदयाप्राधान्य व जीवोत्पत्ति के वैदग्ध्य आदि विशिष्ट सिद्धान्तों का ज्ञान हुआ। इसी से प्रभावित होकर धनपाल ने जैन धर्म में दीक्षित होना स्वीकार कर लिया।

धनपाल के जीवन एवं दीक्षा ग्रहण से सम्बन्धित विवरण प्रभावकचरितान्तर्गत 'महेन्द्रसूरिचरित'[9] में भी मिलता है। प्रभावकचरित व प्रबन्धचिन्तामणि के अतिरिक्त तिलकमञ्जरी अवतरणिका, संघतिलकसूरिकृत 'सम्यक्त्व सप्रतिका', श्रीरत्नमंदिरगणिकृत 'भोजप्रबन्ध', श्री इन्द्रहंसगणिकृत 'उपदेशकल्पवल्ली', श्री हेमविजयगणिकृत 'कथारत्नाकर', श्री जिनलाभसूरिकृत 'उपदेशप्रासाद', जैन साहित्य शोधक अंक तथा जैन साहित्य इतिहासादि में भी धनपाल से सम्बन्धित विवरण प्राप्त होता है।[10]

9. प्रभाचन्द्र; प्रभावकचरितान्तर्गत महेन्द्रसूरिचरित, पृ. 138-151

10. तिलकमञ्जरी; विजयलावण्यसूरीश्वर कृत पराग टीका सहित, प्रस्तावना, पृ. 27

धनपाल श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुयायी थे।[11] धनपाल ने जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात ऋषभदेव की स्तुति में 50 पद्यों में 'ऋषभपंचाशिका' तथा महावीर की स्तुति में 30 पद्यों से युक्त 'वीरस्तुति' की रचना की। उन्होंने ऋषभदेव का मन्दिर बनवाया तथा अपने गुरु महेन्द्रसूरि द्वारा ऋषभदेव की प्रतिमा का स्थापना करवाई। उन्होंने अनेक तीर्थों की भी यात्रा की।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रबन्धों व रचनाओं के पर्यालोचन से हमें धनपाल के जीवन से संबंधित विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

धनपाल का समय

धनपाल के समय के विषय में विद्वानों में अधिक मतभेद नहीं है। धनपाल के विषय में अनेक अन्तः व बाह्य प्रमाण उपलब्ध होते हैं, जिनसे धनपाल के समय का ठीक अनुमान किया जा सकता है।

अन्तः प्रमाण :

(1) धनपाल ने तिलकमञ्जरी के भूमिका भाग में बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, माघ, भारवि, भवभूति, बाणभट्ट[12] प्रभृति कवियों का उल्लेख किया है। बाण राजा हर्षवर्धन के सभापण्डित थे। हर्षवर्धन का समय 7 वी. सदी का है। धनपाल का समय इनके पश्चात् ही हो सकता है।

(2) तिलकमञ्जरी की भूमिका में धनपाल ने एक पद्य में कवि यायावर (राजशेखर) की वाणी को मुनिवृत्ति के समान कहा है।[13] राजशेखर का समय दशम शती का पूर्वार्द्ध है। अतः धनपाल का समय इसके पश्चात् ही हो सकता है।

(3) धनपाल की एक अन्य रचना पाइयलच्छीनाममाला में धनपाल के काल के विषय में एक स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है – विक्रम के 1029 वर्ष व्यतीत

---

11. प्रेमी, नाथूराम; जैन साहित्य और इतिहास, पृ. 410-411
12. केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कविन्।
    किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्ध्रकृतसन्निधिः।। – ति. म., भूमिका, पद्य 26
13. समाधिगुणशालिन्यः प्रसन्नपरिपक्त्रिमाः।
    यायावरकवेर्वाचो मुनीनामिव वृतयः।। –वही;, भूमिका, पद्य 33

होने पर मालवनरेश ने मान्यखेट पर आक्रमण करके लूटा, तब धारा नगरी में निवास करने वाले, मैंने अपनी कनिष्ट भगिनी सुन्दरी के लिए इसकी रचना की।[14]

(4) धनपाल ने अपने आश्रयदाता राजाओं में मुञ्जराज व भोजराज का वर्णन किया है। मुञ्जराज ने धनपाल के पाण्डित्य से प्रभावित होकर उसे 'सरस्वती' विरुद से सम्मानित किया था।[15] धनपाल ने तिलकमञ्जरी की भूमिका में भोजराज की प्रशंसा करते हुए कहा है कि समस्त वाङ्मयविद होते हुए भी भोज का जैन सिद्धान्तों में कुतुहल उत्पन्न होने पर, मैनें अद्‌भुत रस युक्त इस कथा की रचना की।[16] इतिहासकार भोज का समय 1010 से 1055 ई. के मध्य मानते हैं।

उपर्युक्त विवरणों से धनपाल का समय 10वी. शती का उत्तरार्द्ध निश्चित होता जाता है। धनपाल के समय की यह प्रारम्भिक सीमा है। बाह्य प्रमाणों के आधार पर धनपाल की अन्तिम समय सीमा निर्धारित की जा सकती है।

बाह्य प्रमाण :

धनपाल के जीवन एवं समय से सम्बन्धित अनेक बाह्य प्रमाण भी प्राप्त होते हैं –

(1) प्रबन्धचिन्तामणि[17] व प्रभावकचरित[18] नामक जैन ग्रन्थों से हमें धनपाल के जीवन व समय की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। प्रबन्धचिन्तामणि का

---

14. विक्कमकालस्स गए अउणतीसुत्तरे सहस्सम्मि।
मालवनरिंदधाडीए लूडिए मन्नखेडम्मि।।
धारानयरीए परिठ्ठिएण मग्गे ठिआए अणवज्जे।
कज्जे कणिट्ठबहिणीए 'सुन्दरी' नामधिज्जाए।।
पाइयलच्छीनाममाला, गाथा 276–277
15. अक्षुण्णोऽपि विविक्तसूक्तिरचने यः सर्वविद्याब्धिना,
श्री मुञ्जेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः।। ति. म., भूमिका, पद्य 53
16. निःशेषवाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ताः श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य।
तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतो राज्ञः स्फुटाद्‌भुतरसा रचिता कथेयम।। वही,पद्य 50
17. मेरूतुंग; प्रबन्धचिन्तामणि, पृ. 36–42
18. प्रभाचन्द्र; प्रभावकचरित, पृ. 138–151

रचना काल वि. सं. 1361[19] तथा प्रभावकचरित का रचनाकाल वि. सं. 1334[20] है। इन ग्रन्थों में धनपाल का वर्णन होने से यह सिद्ध है कि धनपाल का समय इससे पहले का होगा।

(2) नाथूराम प्रेमी के अनुसार धनपाल परमार वंश के राजा सीयक से लेकर भोज के समय तक जीवित रहे।[21] धनपाल ने भी तिलकमञ्जरी में सीयकराज का उल्लेख किया है।[22] राजा सीयक वही मालवनरेश हैं, जिन्होंने मान्यखेट पर वि. सं. 1029 में आक्रमण किया था।[23] इससे राजा सीयक का समय ई. सं. दशम शती का उत्तरार्द्ध निश्चित होता है तथा यही धनपाल का स्थिति काल भी निश्चित होता है।

(3) हेमचन्द्राचार्य ने तिलकमञ्जरी की भूमिका के एक पद्य 'प्राज्यप्रभावः प्रभवो ....' का उल्लेख 'काव्यानुशासन'[24] में किया है। हेमचन्द्र का समय ई. सं. 1088 से लेकर बाहरवीं शती के उत्तरार्द्ध तक है।[25]

(4) अणहिल्लपुर निवासी पल्लीपाल धनपाल ने तिलकमञ्जरी कथा को आधार बनाकर वि सं. 1261 में 1200 पद्यों से युक्त तिलकमञ्जरीसार[26] की रचना की।

(5) तिलकमञ्जरी के टिप्पणकार श्री शान्तिसूरी का समय द्वादश शती का पूर्वार्द्ध है।[27]

(6) नमिसाधु ने रुद्रट के काव्यालङ्कार पर लिखि अपनी टीका में तिलकमञ्जरी का उल्लेख किया है।[28] नमिसाधु ने इस टीका की रचना 1068 ई. में की थी।[29] इससे भी धनपाल का समय ई. 1068 से पूर्व का होना निश्चित हो जाता है।

---

19. चौधरी, गुलाबचन्द्र; जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ. 426
20. वही, पृ. 205
21. प्रेमी, नाथूराम; जैन साहित्य और इतिहास, पृ. 409
22. ति. म., भूमिका, पद्य 41
23. धनपाल, पाइयलच्छीनाममाला, गाथा 276
24. हेमचन्द्र; काव्यानुशासन, अध्याय 5, पृ. 328
25. हेमचन्द्र; अभिधानचिन्तामणि, भूमिका, पृ. 13-18
26. पल्लीपाल धनपाल; तिलकमञ्जरीसार, अहमदाबाद, 1969
27. तिलकमञ्जरी; विजयलावण्यसूरीश्वर कृत पराग टीका सहित, भाग-I, पृ. 19
28. New Catalogus catalogorum, Vol. 8 Ed. K. Kunjani Raja,
29. Kane, P.V.; History of Sanskrit poetics, p. 155

इन बाह्य प्रमाणों के आधार पर धनपाल की अन्तिम समय सीमा ग्याहरवीं शती का पूर्वार्द्ध निश्चित की जा सकती है। पाइयलच्छीनाममाला धनपाल की प्रथम रचना प्रतीत होती है क्योंकि इसके मङ्गलाचरण में धनपाल ने ब्रह्मा को नमस्कार किया है। यदि वे जैन धर्म में दीक्षित होते तो निश्चित ही जिनदेव को प्रणाम करते। पाइयलच्छीनाममाला का समय 972 ई. है। धनपाल ने 'सत्यपुरीय महावीर उत्साह' में महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ आदि मन्दिरों को नष्ट किये जाने का उल्लेख किया है।[30] महमूद गजनवी ने 1026 ई. में सोमनाथ के मन्दिरों को नष्ट किया था। इससे इस रचना का समय 1026 ई. के बाद का निश्चित होता है।

उपलब्ध अन्तः व बाह्य प्रमाणों के सम्यक् पर्यालोचन से धनपाल का समय ई. 960 से 1030 के मध्य निश्चित किया जा सकता है।

धनपाल की प्रतिभा

कवि में काव्य करने की शक्ति जन्म से ही होती है। कवित्व शक्ति के बिना काव्य नहीं बनता और यदि बनता है तो उपहसनीय होता है।[31] मम्मट ने कवि की स्वाभाविक काव्य करने की शक्ति, लोक-व्यवहार से उत्पन्न अनुभव, छन्द-व्याकरण-वेद-पुराण-कला-कोश- अर्थशास्त्र, कालिदासादि महाकवियों के काव्य के पर्यालोचन से उत्पन्न व्युत्पत्ति तथा काव्य मर्म को जानने वाले गुरु की शिक्षा के अनुसार अभ्यास के समष्टि रूप को काव्य सृष्टि का कारण कहा है।[32]

धनपाल की प्रतिभा का ज्ञान तिलकमञ्जरी के अध्ययन से ही हो जाता है। धनपाल ने अपने पाण्डित्य के बल पर ही राजा भोज की सभा में सर्वोच्च स्थान को प्राप्त किया था।

---

30. मंजेविणु सिरिमालदेसु अनुअणहिलवाडउं
चड्डावलि सोरट्ठ भग्गु पुणु दउलवाडउं।
सोमेसरू सोतेहि भग्गु जणमण आणंदणुं
भग्गु न सिरि सच्चडरिवीरू सिद्धत्थह नंदजुं।। – सत्यपुरीय महावीर उत्साह, पद्य 3
31. शक्तिः कवित्वबीजरूपः संस्कारविशेषः, यां विना काव्यं न प्रसरेत्, प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात्। – मम्मट; का. प्र., पृ. 17
32. शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।। – वही, 1/3

तिलकमञ्जरी के अध्ययन से ज्ञात होता है कि धनपाल ने वेद-वेदाङ्गों, तथा स्मृतियों का गहन अध्ययन किया था। उन्हें पौराणिक कथाओं, नीति शास्त्र, साहित्य, संगीत, सामुद्रिक शास्त्र, चित्रकला, गणित आदि का सम्यक् ज्ञान था।

तिलकमञ्जरी में वेद के लिए 'त्रयी'[33] शब्द का प्रयोग किया गया है। 'त्रयी' शब्द का प्रयोग ऋक्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद के लिए किया जाता है। पुरोहित द्वारा अप्रतिरथ मन्त्रों के उच्चारण का उल्लेख मिलता है।[34] सामवेद के सामस्वरों का भी वर्णन किया गया है।[35] धनपाल ने वेद के लिए श्रुति शब्द का प्रयोग करते हुए कहा है – "पुत्रहीन मनुष्य पुम् नामक नरक में जाता है।"[36]

ज्योतिष[37] में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों यथा मुहूर्त, तिथि, वार, करण, लग्न होरा आदि का वर्णन अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है।[38]

तिलकमञ्जरी पौराणिक कथाओं का भण्डार है। धनपाल ने तिलकमञ्जरी में अनेक स्थलों पर पौराणिक उद्धरणों का उल्लेख किया है। रामायण, महाभारत तथा पुराणों से देवी देवताओं, ऋषि-मुनियों, राजाओं, अप्सराओं, राक्षसों आदि से संबंधित अनेक कथाओं का वर्णन प्राप्त होता है। सम्पूर्ण तिलकमञ्जरी में स्थान-स्थान पर इन्द्र, ऐरावत, कुबेर, वरुण, कामदेव, रति, अर्जुन, पाराशर, परशुराम, नल, यम, राम, लक्ष्मी, सुग्रीव, रावण, त्रिजटा, सुग्रीव, विष्णु, विश्वकर्मा, शेषनाग, समुद्रमन्थन, शिव व अन्य अनेक नामों व उनसे सम्बन्धित कथाओं की ओर संकेत किया गया है। धनपाल धर्मशास्त्र व नीतिशास्त्र के भी ज्ञाता थे। ऋषि ऋण देव ऋण तथा पितृ ऋण[39] व त्रिवर्ग[40] का उल्लेख प्राप्त होता

33. त्रयीमिव महुनिसहस्रोपासित चरणां विन्ध्यगिरिमेखलामिव अक्षमालोपशोभिताम्- ति. म., पृ. 24
34. राजतपूर्णकुम्भमप्रतिरथाध्ययन ध्वनिमुखरेण – वही, पृ. 115
35. सवनराजिभिः सामस्वरैरिव – वही, पृ. 11
36. आत्मानं त्रायस्व पुंनाम्नो नरकात् इति सोत्प्रासं शासितस्येव गुरुकृतेन श्रुतिधर्मेण – वही, पृ. 21
37. प्रयाणशुद्धिमिव प्रष्टुमुपससर्प परिणतज्योतिषम् – वही, पृ. 197
38. पूर्णेसु च क्रमेण किंचित्सातिरेकेषु नवसु मासेषु सारतिथिवारकरणाश्रितेऽतिश्रेयस्यहनि पुण्ये मुहूर्ते यथास्वमुच्चस्थानस्थितैः कौतुकादिव शुभग्रहैरवलोकिते विशुद्ध लग्ने .... होरायामग्रत एव जातेन ......। वही, पृ. 75-76
39. पितृणामपि गच्छ इति याचितप्रसूतेरिव प्रादुर्भूतधर्मवासनातया संनिहितैर्देवर्षिभिः-ति. म., पृ. 20
40. अनयास्माकमविकला त्रिवर्गसंपत्तिः – वही, पृ. 28

है। समरकेतु ने नीतिशास्त्र का अध्ययन किया था।[41] षड्गुणों (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव व मन्त्र) का वर्णन प्राप्त होता है।[42]

धनपाल ने साहित्य, संगीत, चित्रकला तथा गणित आदि के ज्ञान का प्रयोग वर्णन को प्रभावशाली बनाने में किया है। इन विद्याओं से संबंधित अनेक उद्धरण तिलकमञ्जरी में प्राप्त होते हैं।[43]

धनपाल ने दर्शनशास्त्र का भी सम्यक् अध्ययन किया था। इन्होंने सांख्य, वैशेषिक, योग, वेदान्त, बौद्ध आदि दर्शनों का अध्ययन किया था। तिलकमञ्जरी में न्यायदर्शन [44] तथा प्रमाणों [45] का वर्णन किया गया है। वैशेषिक दर्शन के पदार्थ 'द्रव्य' का उल्लेख प्राप्त होता है।[46] सांख्य के पुरुष और प्रकृति का भी वर्णन किया गया है।[47] 'योग' शब्द का प्रयोग मिलता है।[48] बौद्ध दर्शन का वर्णन भी किया है।[49]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि धनपाल के पास न केवल काव्य करने की स्वाभाविक शक्ति थी अपितु मम्मटाचार्य सम्मत लोक व्यवहार, शास्त्र, दर्शन, कला ग्रंथों व महाकाव्यों के अध्ययन से उत्पन्न व्युत्पत्ति भी थी।

धनपाल का कृतित्व

धनपाल अपने समय के उच्च कोटि के विद्वान् थे। वे न केवल संस्कृत अपितु प्राकृत तथा अपभ्रंश के भी विद्वान् थे। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश

---

41. अधीतनीतिविद्यामभ्यस्तनिरवद्यधनुर्वेदम् - वही, पृ. 114
42. षाड्गुण्यप्रयोगचतुरः चतसृष्वपि विद्यासु लब्ध प्रकर्षः - वही, पृ. 13
43. वही, पृ. 70, 71, 229, 227, 24, 177, 79, 162, 166
44. न्यायदर्शनानुरागिभि न रौद्रैः - वही, पृ. 10
45. (क) विधिनिरूपितावद्यप्रमाणाम् सुकविवाचमिव - वही, पृ. 24
    (ख) प्रमाणविद्भिरप्यप्रमाणविद्यैरधीतनीतिभिः - वही, पृ. 10
46. वैशेषिकमते द्रव्यस्य प्राधान्यं गुणानामुपसर्जनभावो बभूव - वही, पृ. 15
47. दर्शनादेव चासौ जन्मसहभुवं पुमानिव सांख्यपरिकल्पितः प्रकृतिममुञ्चन्निसर्गधीरोऽपि सागर इव - वही, पृ. 278
48. लब्धहृदयप्रवेशमहोत्सवाभिरप्रयुक्तयोगाभिः - वही, पृ. 9
49. यस्य दोष्णि स्फुरद्धेतौ प्रतीये विबुधैर्ध्रुवः।
    बौद्धतर्क इवार्थानां नाशो राज्ञां निरन्वयः।। - वही, पृ. 16

तीनों भाषाओं में काव्य रचनाएँ की है। हीरालाल रसिक दास कापड़िया ने 'ऋषभपंचाशिका' में धनपाल की नौ रचनाओं का उल्लेख किया है[50] -

1. पाइयलच्छीनाममाला	प्राकृत कोश
2. तिलकमञ्जरी	संस्कृत
3. श्रावकविधि प्रकरण	प्राकृत
4. वीरस्तुति	प्राकृत
5. शोभनस्तुति वृत्ति	संस्कृत
6. ऋषभपंचाशिका	प्राकृत
7. सत्यपुरीय-श्री-महावीर-उत्साह	अपभ्रंश
8. वीरस्तुति	संस्कृत-प्राकृत
9. नाममाला	संस्कृत

1. पाइयलच्छीनाममाला[51] :

यह प्राकृत भाषा का कोश है। इसकी रचना धनपाल ने अपनी बहन सुन्दरी के लिए की थी।[52] इस कोश में धनपाल ने देशी, तत्सम एवं तद्भव शब्दों के पर्यायवाची शब्द दिये है। इसमें 279 पद्य हैं।

गंगा प्रसाद यादव के अनुसार पाइयलच्छीनाममाला ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह दक्कन के राष्ट्रकूटों और परमारों के संबंधों पर प्रकाश डालती है। यह परमार और राष्ट्रकूट के अनेक राजाओं के समय को निश्चित करने में प्राचीन भारतीय इतिहास के शोधार्थी की सहायता करती है।[53]

50. कापड़िया, हीरालाल रसिकदास; ऋषभपंचाशिका वीरस्तुतिद्वयरूपकृत्तिक्लाप:,पृ. 16
51. धनपाल; पाइयलच्छीनाममाला, (सं.) बेचरदास जीवराज दोशी
52. धारानयरीए परिट्ठिएण मग्गे ठिआए अणवज्जे।
    कज्जे कणिट्ठबहिणीए 'सुन्दरी' नामधिज्जाए।।-पाइयलच्छीनाममाला, गाथा - 277
53. Pailacchi is a work of considerable importance from the historiacal point of view. It throws some very significant light on the relations between Paramaras and the Rastrakutas of Daccan. The sack of Manyakheta, the capital of Rastrakutas, which is mentioned in Paiyalacci helps the student of ancient Indian history in fixing the period of various kings of paramar and Rastrakutas dynasties.-Yadav, Ganga Prasad; Dhanpal and his time, P.17

2. तिलकमञ्जरी :

यह एक प्रेम कथा है। इसमें हरिवाहन और तिलकमञ्जरी की प्रणय कथा का वर्णन है। यह पुनर्जन्म के तानों बानों पर बुनी गयी एक सुन्दर प्रेम कथा है। इस एक कृति से ही धनपाल ने संस्कृत गद्य लेखकों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

3. श्रावकविधिप्रकरण :

इसमें धनपाल ने श्रावक के धर्मों का विवेचन किया है।

4. वीरस्तुति :

इसमें धनपाल ने महावीर स्वामी की स्तुति की है। यह प्राकृत भाषा में रचित 30 पद्यों की स्तुति है। यह सम्पूर्ण स्तुति विरोधाभास अलंकार से युक्त है तथा प्राकृत भाषा में इस प्रकार की एकमात्र स्तुति है। वीरस्तुति के प्रारम्भ में ही धनपाल कहते हैं - मैं नख रहित जिन (विरोध परिहार हेतु - निर्मल नखों से युक्त) के चरण कमलों को प्रणाम करता हूँ। अविरुद्धवचन होते हुए भी विरुद्ध वचनों से (विरोध परिहार हेतु - अविरूद्धवचन वाले) भगवान महावीर की विरोधाभास अलङ्कार युक्त वचनों से स्तुति करता हूँ।[54]

5. शोभनस्तुतिवृत्ति

शोभन मुनि ने स्तुतिचतुर्विंशतिका की रचना की थी जिसमें 24 तीर्थंकरों की स्तुति की गई है। धनपाल ने भ्रातृ प्रेमवश शोभन की इस स्तुति पर एक वृत्ति की रचना की।[55]

6. ऋषभपंचशिका :

धनपाल ने प्राकृत भाषा में 50 पद्यों में इस स्तुति की रचना की है। इसमें धनपाल ने प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की स्तुति की है। प्रारम्भिक पद्यों में ऋषभदेव के जीवन की घटनाओं का वर्णन किया गया है। प्रथम पद्य में त्रिलोक के स्वामी की

---

54. निम्मलनहे विअणहे जिणाण चलणुप्पले पणमिऊणं।
    वीरमविरुद्धवयणं थुणामि स विरुद्धवयणमहं।।-ऋषभपंचाशिका, वीरस्तुति, पृ. 200

55. प्रेमी, नाथूराम; जैन साहित्य और इतिहास, पृ. 410

स्तुति की गई है।[56] हेमचन्द्रगणि के अनुसार यद्यपि भगवान की स्तुति में सर्वत्र नमस्कार प्रभाव होता है तथापि विशेष प्रकार का नमस्कार विघ्न के विनाश तथा भक्ति की अतिशयता के प्रतिपादनार्थ होता है।[57]

धनपाल ने गुरु सेवा की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा है कि गुरुजनों की सेवा कभी भी निष्फल नहीं होती।[58] भगवान के स्मरण से भय व दुःख का नाश होता है।[59]

ऋषभपंचाशिका पर प्रभानन्दाचार्य ने 'ललितोक्ति' नामक वृत्ति लिखि है तथा हेमचन्द्रगणि ने 'विवरण' नामक वृत्ति की रचना की है। ऋषभपंचाशिका पर 'अवचूरिचतुष्ट्यम्' भी प्राप्त होता है[60] जो इस प्रकार से है –

धर्मशेखररचित – संस्कृत–प्राकृत अवचूरि

नेमिचन्द्रमुनिकृत – अवचूरि

चिरन्तनमुनिरचित – अवचूर्णि

पूर्वमुनि रचित – अवचूरि

7. सत्यपुरीय-श्री-महावीर-उत्साह[61] :

धनपाल ने सत्यपुर के भगवान महावीर की स्तुति में इसकी रचना की। यह अपभ्रंश भाषा में लिखि गई है तथा इसमें 37 पद्य हैं। यह स्तुति ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यह महमूद गजनवी के उस मार्ग पर प्रकाश डालती है, जिस मार्ग का प्रयोग उसने सोमनाथ मन्दिर को खण्डित करने के समय किया था।

---

56. जयजंतुकप्पपायव! चंदायव। रागपंकयवणस्स।
सयलमुणिगामगामणि! तिलोअचूडामणि! णमो ते।। – ऋ. पं., पद्य 1

57. वही, पृ. 2

58. मुणिणो वि तुहल्लीणा, नमिविनमी खेअराहिवा जाया।
गुरुआण चलण सेवा, न निप्फला होइ कइआ वि।। – वही, पद्य 14

59. भमिओकालमणंतं, भवम्मि भीओ न नाह ! दुक्खाणं ।
संपई तुमम्मि दिट्ठे, जायं च भयं पलायं च ।। वही, पद्य 48

60. वही, पृ. 166–199

61. Yadav, Ganga Prasad; Dhanpal and his time, p. 22

8. वीरस्तुति[62] :

इसमें 11 पद्य हैं। धनपाल ने इसमें संस्कृत एवं प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है। प्रत्येक पद्य की प्रथम पंक्ति संस्कृत तथा दूसरी पंक्ति प्राकृत में है। इसका प्रथम पद्य 'सरभसनृत्यत्सुर.....'[63] तथा अन्तिम पद्य 'तं नमतनम्रशतमखमणि....'[64] है। धनपाल ने इसमें श्वेताम्बर सम्प्रदाय की परम्पराओं पर प्रकाश डाला है।

9. नाममाला :

यह संस्कृत भाषा का कोश है, जो वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं है।

धनपाल नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से सम्पन्न कवि थे। अपनी प्रतिभा के बल पर ही उन्होंने भोजराज की राजसभा में अन्यतम स्थान प्राप्त किया था। संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश में रचित उनकी प्रौढ़ रचनाएँ उनकी प्रतिभा को समुचित द्योतित करती हैं।

---

62. ऋषभपंचाशिका; वीरस्तुति, पृ. 269

63. सरभसनृत्यत्सुरयुवतिकुचतटत्रुटितहारतारकितम्।
जायं सिद्धत्थनरिंदमंदिरं जस्स जम्मम्मि।। – ऋषभपंचाशिका, वीरस्तुति, पद्य 1, पृ. 269

64. तं नमत नम्रतशतमखमणिमुकुटविटङ्कघृष्टचरणयुगम्।
भुवणस्स वि बंधणपालणक्खमं वद्धमाणजिणं।। – वही,पद्य 11, पृ. 270

तृतीय अध्याय

तिलकमञ्जरी का कथासार

- तिलकमञ्जरी का कथासार
- तिलकमञ्जरी के टीकाकार

तिलकमञ्जरी का कथासार

उत्तर कौशल में अपने सौन्दर्य से सभी लोकों को तिरस्कृत करने वाली, स्वर्ग से भी उत्कृष्ट, शत्रुओं के द्वारा न जीती जा सकने वाली अयोध्या नाम की नगरी है। यह नगरी देदीप्यमान चरित्रवाले ब्राह्मणादि वर्णों से सुशोभित थी। उस नगरी में मेघवाहन नामक चक्रवर्ती राजा था। जिसने ब्राह्मणादि वर्णों को यथाविध स्थापित कर दिया था। नीति निपुण होने के कारण उसने अनायास ही सभी राजाओं को अपने अधीन कर लिया था। इस राजा मेघवाहन का बाल्यावस्था में राज्याभिषेक हो गया था। उसने अपने पराक्रम व बाहुबल से सातों समुद्र पर्यन्त भूमि को जीतकर शत्रु रहित कर दिया था। वह नागरिकों की प्रसन्नता के लिए अपनी उपस्थिति से वसन्तादि विशेष उत्सवों की शोभा बढ़ता था। नगर वासियों के सुख-दुःख को जानने के लिए वेश बदलकर नगरी में भ्रमण किया करता था। इस प्रकार सब और शान्ति स्थापित करने के कारण वह यथार्थ प्रजापति था। इस चक्रवर्ती राजा मेघवाहन की द्वितीय शशिकला के समान, दयादाक्षिण्यादि गुणों की निधिभूत (खजाना), सौभाग्य की सम्पत्ति के समान मदिरावती नाम की रानी थी। मेघवाहन अपनी रानी में अत्यधिक प्रीति रखते हुए यौवनोचित सुखों का अनुभव करते थे।

इस प्रकार राजा मेघवाहन अपनी रानी के साथ रमण करते हुए हर प्रकार से जीवनानन्द का अनुभव करते रहे, परन्तु बहुत समय बीत जाने पर भी उन्हें सन्तान सुख की प्राप्ति नहीं हुई। यही चिन्ता रूपी ज्वर उनके हृदय को अग्नि के समान सन्तप्त करता था। इसी कारण सूर्य के समान तप्त सम्राट मेघवाहन का मन राजलक्ष्मी में भी नहीं रमता था।

एक बार सम्राट् मेघवाहन भद्रशाल नामक राजभवन के ऊर्ध्व भाग में बैठकर अपनी रानी मदिरावती से वार्तालाप कर रहे थे कि सहसा ही उन्होंने अपने तेज से सम्पूर्ण आकाश मार्ग को प्रकशित करते हुए, एक विद्याधर मुनि को आकाश मार्ग से आते हुए देखा। विद्याधर मुनि को देखकर व आश्चर्य चकित होकर तथा उस दिव्य मुनि के प्रति अत्यधिक आदरभाव से युक्त होकर वे दोनों खड़े हो गए। उन दोनों के श्राद्धाधिक्य को देखकर विद्याधर मुनि भी उनके भवन पर उतर आए। आनन्दपूरित चक्षुओं से उन दोनों ने मुनि की विधिवत् पूजा की तथा उन्हें स्वर्णासन पर बिठाया। राजा ने मुनि का यथोचित सत्कार करके व पृथ्वी

पर बैठकर, मीठे वचनों से कहा कि हे मुनिवृन्द में वन्दनीय भगवन् ! आपने यहाँ आकर इस भवन के महत्त्व को बढ़ा दिया है। आपके पवित्र व शीतल दृष्टिपात से मेरे नगरवासियों व परिजनों के सभी पाप नष्ट हो गए हैं। आपके चरणों में बैठने से मुझे सभी तीर्थों के स्नान का फल मिल गया है। अतः हम सभी आपके दर्शनों से धन्य हो गए हैं। अब मैं और अधिक कल्याण की प्राप्ति के लिए कुछ विशेष करना चाहता हूँ। यह पृथ्वी, यह राज्य, यह धन, यह शरीर, यह राजभवन अपने अथवा किसी अन्य के प्रयोजन की सिद्धि के लिए जो भी उपयोगी हो, उसे स्वीकार करें। विनय से परिपूर्ण इन वचनों को सुनकर गद्‌गद होते हुए मुनि ने कहा हे महानुभाव ! आपने अपने गुणों के अनुरूप ही कहा। परन्तु धन–लुब्ध जन ही सुख के लिए धन की कामना करते हैं, हम मुनिजनों को धन से क्या प्रयोजन? हम तो निर्जन वन में वास करते हुए धर्म का पालन करते हैं, क्योंकि धर्म मुक्ति का कारण है। अतः मुनि तुच्छ सांसारिक सुखों के लिए काम, क्रोधादि अनर्थों के जनक राज्यादि को कैसे ग्रहण करेंगे? परार्थ सम्पादन भी धर्मोपदेश के द्वारा ही हो जाता हैं अतः इनके विषय में आग्रह व्यर्थ है। अब आप मुझे यह बताएँ कि सौन्दर्य में देवलोक को तिरस्कृत करने वाली यह नगरी कौन सी है ?आप कौन हैं और आपके निकट बैठी हुई व दुःखी दिख रही यह देवी कौन है?

विद्याधर मुनि के ऐसा पूछने पर सम्राट् ने कहा–भगवन् ! आप लोगों का स्वभाव परोपकारोन्मुखी होता है। आप जैसे महात्माओं से कुछ भी गोपनीय नहीं होता। हे भगवन्! इस नगरी का नाम अयोध्या हैं और मैं इक्ष्वाकु वशोंत्पन्न मेघवाहन नाम का राजा हूँ। यह पार्श्ववर्तिनी मदिरावती मेरी प्रधान महिषी है। हमारे सन्ताप का एकमात्र कारण सन्तानहीनता है। मदिरावती के दुःख के कारण को भी बताता हूँ। रात्री के अन्तिम प्रहर में मैंने स्तुतिपाठक के द्वारा प्रभात काल में गाए जाने वाले मांगलिक गीत को सुना - ''सन्तानहीनता रूप विपत्तियों के समान रात्रि बीत गई है, आपके कुल के समान सूर्य का मण्डल जगत् के प्रकाश के लिए उदित हो रहा है। शान्तचित्त होकर इष्ट देव की आराधना करो।''[1] इस गीत को सुनकर व हर्षित होकर मैंने सोचा कि अनायास ही इस स्तुतिपाठक ने मुझे सन्तान प्राप्ति का उपाय सुझा दिया है। अतः अब मैं वन में जाकर देवता की आराधना करूँगा। अपना यह निश्चय मैंने अपनी प्रेमपात्रा रानी मदिरावती को बताया तथा

1. विपदिव विरता विभावरी नृप निरपायमुपास्स्व देवताः।
उदयति भुवनोदयाय ते कुलमिव मण्डलमुष्णदीधितेः ।। ति. म., पृ. 28

वापस आने तक यहीं रहकर गुरुजनों की सेवा करने को कहा। मेरे वन में जाने की बात को सुनकर यह मूर्छित हो गयी। चेतना आने पर प्रिय वियोग की कल्पना के दुःख से रूधें कण्ठ से बोली कि मैं भी अपके साथ वन में चलूँगी, आपके बिना मैं क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकती। बहुत समझाने पर भी यह मान नहीं रही है और चुपचाप रो रही है।

यह सुनकर मुनि ने नेत्र बन्द कर लिए और पुनः नेत्र खोलकर बोले- हे राजन् ! सन्तानोत्पत्ति में बाधक तुम्हारा अदृष्ट अब समाप्त ही होने वाला है। अतः धैर्य धारण करों और किञ्चित् भी चिन्ता मत करो। घर में ही रहकर मुनिजनोचित आचरण को धारण कर, अपनी राजलक्ष्मी की आराधना करो। वे शीघ्र प्रसन्न होकर तुम्हें पुत्ररूप वर प्रदान करेंगी। इसके साथ ही मुनि ने राजा को अपराजिता नामक विद्या भी दी, जिससे उसकी साधना शीघ्र पूर्ण हो जए। इसके पश्चात् मुनि ने राजा से कहा - हे राजन्! मैं अभी पुष्करद्वीप से आया हूँ और अब मुझे जम्बू द्वीप के प्रधान तीर्थों के लिए जाना है। इसलिए अब मैं जाता हूँ। यह सुनकर दोनों के द्वारा स्नेह से आर्द्र नेत्रों से प्रणाम किये जाने पर विद्याधर मुनि आकाश में चले गए।

सम्राट् मेघवाहन ने अपने पूज्यों, बन्धुओं व मंत्रियों को बुलाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया और उनके साथ विचार करके अन्तः पुर के क्रीड़ापर्वत के समीप प्रमदवन के मध्य में भव्य देवता मन्दिर का निर्माण कराया। शुभ मुहूर्त में देवी लक्ष्मी की प्रतिमा की प्रतिस्थापना करके राजा प्रतिदिन विधिपूर्वक पूजा करने लगा।

एक दिन सम्राट् मेघवाहन पुण्य तिथि में देवी लक्ष्मी की सांयकालीन पूजा को विशिष्ट विधि से सम्पादित कर, सेवकों से छिपकर आदि तीर्थंकर (ऋषभदेव) के शक्रावतार नामक मन्दिर में गए। मन्दिर में प्रवेश करते ही उन्होंने भगवान ऋषभदेव को प्रणाम करके आते हुए एक दिव्य वैमानिक को देखा। मेघवाहन ने उस दिव्य पुरुष के दर्शन करके स्वयं को धन्य माना और उसकी ओर कुछ चलकर नमस्कार किया। दिव्य वैमानिक भी उनके विनयभाव को देखकर उनके पास आ गया और जल से परिपूर्ण मेघ के समान गम्भीर व मृदु वचनों में बोला - हे नरेन्द्र ! चक्रवर्ती लक्षणों से युक्त आप निश्चय ही सम्राट् मेघवाहन है। मैनें देवराज इन्द्र की सभा में मृत्युलोक के वार्ताधिकारियों के मुख से आपके

पराक्रम, त्यागशीलता, प्रजापालन व धार्मिक वृत्ति के विषय में वार्ता सुनी है। आपके दर्शनों से मुझे भगवान ऋषभदेव के दर्शनों का फल तत्क्षण ही मिल गया है। मैं सौधर्म नामक देवलोक का निवासी ज्वनलप्रभ हूँ। स्वर्ग से नन्दीश्वर द्वीप जाते हुए मार्ग में इस परम पवित्र जिनेश्वर के मन्दिर को देखकर दर्शनार्थ रुक गया था। अब मुझे नन्दीश्वर द्वीप जाना है, जहाँ पर स्वर्ग लोक से जिन मन्दिर की शोभा को देखने के लिए मेरा परम मित्र सुमाली स्वर्गलोक से गया था। नन्दीश्वर द्वीप पर रतिविशाला नामक नगरी में उन देव दम्पत्तियों का निवास स्थान है। मुझे अपने अनुचरों से ज्ञात हुआ है कि रतिविशाला नगरी की पूर्व शोभा नष्ट हो गई है और वहाँ अनेक प्रकार के अनिष्ट हो रहे हैं। सुमाली का भवन भी वीरान सा हो गया है। यह सुनकर मैं चिन्तित होकर उसकी सहायता के लिए जा रहा हूँ, क्योंकि ये अशुभ शकुन उसकी अथवा उसकी पत्नी की मृत्यु को सूचित कर रहे है। वहाँ जाकर मैं उसे सद्कार्यों में प्रवृत्त करूँगा। मेरी दिव्य आयु भी समाप्त प्रायः है तथा मुझे भी दूसरे जन्म के सुधार के लिए शुभ कर्मों को करना है। यद्यपि आपको किसी भी वस्तु अथवा वर का लोभ नहीं है और आप किसी के भी समक्ष हाथ नहीं फैलाते, तथापि मेरे मन के सन्तोष के लिए आप स्वर्ग के सभी आभूषणों में श्रेष्ठ इस चन्द्रातप नामक हार को स्वीकार करें। इस हार के पवित्र मोतियों को क्षीर सागर ने स्वयं प्रेमपूर्वक पिरो कर अपनी पुत्री लक्ष्मी को दिया था। लक्ष्मी ने इन्द्र के पुत्र जयन्त के जन्म के अवसर पर प्रसन्न होकर यह हार इन्द्राणी को दे दिया था। इन्द्राणी ने सखी के स्नेहपाश में बंधकर यह हार अपनी सखी व मेरी पत्नी प्रियङ्गुसुन्दरी को दे दिया। मित्र सुमाली को मिलने जाते हुए प्रियतमा के विरहजन्य दुःख को दूर करने के लिए मैं उसके इस हार को कण्ठ में धारण करके आया हूँ। आप बिना किसी सोच-विचार के इस हार को ग्रहण करें। आपके ग्रहण न करने पर भी स्वर्गलोक को छोड़ते समय यह हार मुझसे दूर हो जाएगा और आपके ग्रहण करने पर, मेरे पृथ्वी पर जन्म लेने पर कदाचित् मेरे नेत्रों को आनन्दित करेगा। प्रियङ्गुसुन्दरी भी स्वर्गलोक से निकल कर पुनः पृथ्वी पर जन्म लेगी। वह भी कालक्रम के वशीभूत होकर कदाचित् इस हार को देखकर कल्याणकारी कार्यों में प्रवृत्त हो सकेगी। यह कहकर उस दिव्य वैमानिक ने वह हार सम्राट् मेघवाहन को दे दिया। राजा के हार ग्रहण करते ही वह वैमानिक अन्तर्ध्यान हो गया। राजा ने उस हार को उत्तरीय में बाँधकर भगवान आदिनाथ की पूजा की और अपने भवन में आकर भगवती लक्ष्मी की पूजा करके, देवी की प्रतिमा के समक्ष सम्पूर्ण वृतान्त कहा और बोला

कि दिव्य आभूषण दिव्य मूर्तियों पर ही शोभित होते हैं। यह कहकर सम्राट् ने वह हार देवी के चरणों में अर्पित कर दिया। उसी समय सम्राट ने देवी की प्रतिमा के समीप अट्टहास करते हुए एक वेताल को देखा। उस वेताल को सिर से पैर तक देखकर व कुछ हँसकर राजा ने कहा – भगवन् ! आपके अट्टहास से मुझे आश्चर्य हो रहा है। आप इस प्रकार विचित्रता से क्यों हंस रहे हैं?वेताल ने कहा – हे राजन। मैं आपकी चेष्टाओं पर ही हँस रहा हूँ। आप किसी फल की इच्छा से देवी लक्ष्मी की पूजा कर रहे हैं। संसार में ऐसा व्यवहार है कि फलाभिलाषी व्यक्ति अपनी सेवा से पहले देवता के सेवक को प्रसन्न करता है और उसके द्वारा देवता को प्रसन्न करता है। परन्तु आप तो सर्वथा विपरीत कार्य कर रहे हैं। आप अभिषेक, वस्त्र, माला आदि के द्वारा देवी की आराधना करते हैं, परन्तु सदा साथ रहने वाले मुझ सेवक को आहार ग्रहण करने के लिए भी आमन्त्रित नहीं करते। मुझसे मित्रता करके आप अभीष्ट की सिद्धि कर सकते हैं। यह सुनकर राजा ने मंद हंसकर उपहास पूर्वक कहा – अज्ञानता वश ही मैंने ऐसा किया है, क्योंकि जन्म से लेकर आज तक मैंने किसी देवता की आराधना नहीं की हैं। अब आप यह फल, लड्डू आदि ग्रहण करें। वेताल ने कहा – हे राजन्! हम तो निशाचर हैं, अतः फलादि से मुझे क्या प्रयोजन ?यदि आप मुझे प्रसन्न ही करना चाहते हैं, तो मुझे किसी ऐसे राजा का कपालकर्पर प्रदान करें, जिसने कभी अपने याचकों को निराश न किया हो और प्राणों का संकट उत्पन्न होने पर भी शत्रु के समक्ष घुटने न टेके हों। राजन ने कहा–हे प्रेतनाथ! मैंने युद्ध में ऐसे असंख्य राजाओं को मारा हैं, परन्तु उनके कपालों का संग्रह नहीं किया है। आपकी सेवा में मेरा सिर प्रस्तुत है। वेताल के स्वीकार करने पर राजा ने स्वयं सिर काटकर देने के लिए तलवार को अपनी गर्दन पर रखा। गर्दन के आधा कटने पर अचानक ही राजा का हाथ स्तम्भित हो गया और उसे स्त्रियों का हाहाकार सुनाई दिया। उसी समय सम्राट् ने देवाङ्गनाओं से घिरी हुई देवी लक्ष्मी को देखा।

ये देवी लक्ष्मी ही हैं, ऐसा निश्चय होने पर भी किसी विभिषिका की आशंका से राजा ने कुछ सन्देह करते हुए उनका परिचय पूछा। लक्ष्मी ने अपना परिचय देकर राजा का सन्देह दूर किया और कहा कि मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ?राजा ने कहा – हे देवी! आपके दर्शन मात्र से ही मैं कृतार्थ हो गया हूँ, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। परन्तु आप मुझे इतनी शक्ति दे दीजिए, जिससे मैं अपना सिर काटकर इस वेताल को देकर अपने वचन का पालन कर सकूँ। यह सुनकर गद्‌गद होते हुए देवी ने कहा– हे राजन्! तुमने मेरे स्वरूप को ठीक से नहीं जाना।

यह मेरा सेवक महोदर नामक यक्ष है। तुम्हारे पराक्रम की परीक्षा के लिए ही इसने इस मायाजाल की रचना की थी। अतः तुम खेद न करों और अपना मनोरथ बताओ। राजा ने श्रद्धा भाव से पूरित होकर देवी की पूजा की तथा पुत्र प्राप्ति रूप वर की याचना की। देवी लक्ष्मी ने सम्राट् की भक्ति से प्रसन्न होकर उसे वर प्रदान किया और बालारुण नामक अंगूठी भी प्रदान की और कहा कि यह चन्द्रातप नामक हार भी अपने पास ही रखो। जब तुम्हारा पुत्र युवा हो जाए तो उसे पहनाना। इस प्रकार वर प्रदान करके देवी अन्तर्ध्यान हो गई। उस अंगूठी में यह विशेषता थी कि उसे धारण करने वाला हर प्रकार के संकट से मुक्ति पा लेता था।

अगले दिन सम्राट् ने नित्य कर्मों से निवृत्त होकर, सभा में जाकर, मंत्रियों, गुरुजनों, मित्रों व नागरिकों को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। वृत्तान्त सुनकर सभी लोग हर्षित हुए। सम्राट् ने अपने प्रधान कोषाध्यक्ष महोदधि को बुलाकर हार को प्रमुख रत्नों के मध्य रखने के लिए दे दिया। अंगूठी को दुष्ट सामन्तों के दमनार्थ दक्षिणापथ गए हुए अपने सेनापति वज्रायुध के पास भिजवा दिया और उपसेनापति विजयवेग के लिए संदेश भी भिजवाया कि रात्रि-युद्धों में बलशाली शत्रु के द्वारा निरुद्ध होने पर यह अंगूठी सेनापति को अवश्य पहना दी जाए। इसके पश्चात् सम्राट् ने शक्रावतार मन्दिर में जाकर पूजा की और बाद में अन्य मन्दिरों में जाकर अर्चना की।

सन्ध्या के समय सम्राट् सन्ध्योपासनादि विधि से निवृत्त होकर सुन्दर वेष धारण करके सभागृह में गए। कुछ देर वहाँ पर ठहर कर अन्तःपुर में महारानी मदिरावती के पास गए। वहाँ उन्होंने पति के दर्शनाभाव से दुःखी और व्रतपालन के कारण कृश व अनलङ्कृत मदिरावती का अपने हाथों से शृङ्गार किया और सम्पूर्ण घटनाक्रम उसे सुनाया। तदनन्तर वे वहीं पर मदिरावती के साथ सो गए।

प्रभात होने से कुछ समय पहले ही सम्राट् ने स्वप्न में देखा कि शुभ्रवस्त्रों से शोभित मदिरावती कैलाश पर्वत के उन्नत शिखर पर विराजमान हैं तथा इन्द्र का वाहन ऐरावत हाथी आकाश से उतरकर उसके स्तनों से ऐसे दुग्ध-पान कर रहा है, जैसे गणेश जी माता पार्वती का स्तन-पान करते थे। निद्रा त्यागने पर सम्राट् महारानी को भी अपने स्वप्न के विषय में बताते हैं। कुछ दिनों के पश्चात् ही महारानी मदिरावती गर्भ धारण करती है और समय पूरा होने पर शुभ मुहूर्त में एक तेजस्वी पुत्र का जन्म देती है। सम्राट् स्वप्न में देवराज इन्द्र के हाथी ऐरावत के दर्शन होने के कारण उस बालक का नाम हरिवाहन रखते हैं। हरिवाहन के पाँच

वर्ष पूरे होने पर छठे वर्ष में सम्राट् मेघवाहन ने राजभवन में विद्याभवन का निर्माण करवाया और शिक्षा मर्मज्ञ व अनुभवी विद्वान् गुरुओं को बुलाकर शुभ मुहूर्त में हरिवाहन का उपनयन संस्कार करवा दिया।

राजकुमार हरिवाहन ने अपनी कुशाग्र बुद्धि और असाधारण प्रतिभा के कारण दस वर्षों में ही सभी विद्याओं में प्रवीणता प्राप्त कर ली। उसने चित्रकला व वीणा-वादन में विशेष कुशलता प्राप्त कर ली थी। हरिवाहन के सभी कलाओं में पारङ्गत होने पर सम्राट् ने नगर की बाह्य भूमि पर उसके लिए एक भवन बनवा दिया और हरिवाहन को युवराज बनाने की इच्छा से उसके सहायक राजकुमार की खोज में अनुचरों को लगा दिया।

एक दिन सम्राट् मेघवाहन सभागृह में बैठे हुए थे, तभी प्रतिहारी ने आकर विनयपूर्वक सम्राट् को सूचना दी कि दक्षिणापथ से सेनापति वज्रायुध का प्रियपात्र विजयवेग उनके दर्शनों का अभिलाषी है। सम्राट् ने उसे तुरन्त बुला लिया और वज्रायुध और सेना का कुशलक्षेम पूछा। इसके पश्चात् अंगूठी के विषय में पूछा कि अंगूठी ने युद्ध में कुछ उपकार किया अथवा नहीं?

एर्भविजयवेग ने कहा कि उस अंगूठी ने वह उपकार किया है, जो कोई और नहीं कर सकता। एक वर्ष पहले शरद् ऋतु के आरम्भ होने पर काञ्चीनरेश कुसुमशेखर का दमन करने के लिए सेनापति वज्रायुध सेना सहित कुण्डिन पुर से काञ्ची देश पहुँचे। काञ्ची नरेश ने पूर्ण तैयारी कर ली थी और सहायता के लिए मित्र राजाओं के पास दूत भेज दिए थे। दोनों सेनाओं में बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा। एक दिन वसन्त ऋतु के आने पर, कामदेव के उत्सव में मग्न होने पर रात्रि के द्वितीय प्रहर में तीव्र कोलाहल ध्वनि सुनाई पड़ी। उसी समय काचरक और काण्डरात नामक अश्वारोहियों ने आकर सूचना दी कि शत्रु सेना वेगपूर्वक निकट आ रही है। सेनापति ने हर्षित होकर दुन्दुभि बजाने का आदेश दे दिया। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध होने लगा। अचानक शत्रुसेना में से एक तेजस्वी राजकुमार वज्रायुध का नाम लेकर उसे युद्ध के लिए ललकारने लगा। दोनों में धनुर्युद्ध होने लगा। वज्रायुध को युद्ध में पराजित होता देख, मैं वज्रायुध की प्राणरक्षा के उपाय को खोजने लगा। तभी मुझे बालारुण नामक अंगूठी का ध्यान आया और मैंने वह अंगूठी वज्रायुध की अंगुली में डाल दी। उस अंगूठी को पहनते ही सेनापति अपराजेय हो गए। अंगूठी के अत्यधिक तेज से शत्रु सेना सूर्य की किरणों के स्पर्श से कुमुद वन के समान निद्रा में लीन हो गई। वह राजकुमार भी निद्रा के वेग से

रथ के मध्य में ही गिर पड़ा। इसी समय हमारी सेना के सैनिक 'चलो, पकड़ों, मारो' आदि कहते हुए दौड़ने लगे। इस पर वज्रायुध ने 'उसे कौशल नरेश सम्राट् मेघवाहन की कसम है जो इस पर क्रोध करेगा' ऐसा कहकर उन्हें रोका।उस राजकुमार के शौर्य से प्रभावित होकर वज्रायुध ने उसकी चामरग्राहिणी से राजकुमार का परिचय पूछा। उसने दुःख से पूर्ण मुख से अश्रुओं को पोंछ कर कहा – ''हे महाभाग! ये सिंहलद्वीप के राजा चन्द्रकेतु के पुत्र समरकेतु हैं। इन्होंने अपने पराक्रम के कारण बाल्यावस्था में ही युवराज पद प्राप्त कर लिया था। पिता की आज्ञा से काञ्ची नरेश की सहायता करने के लिए कुछ राजाओं के साथ पाँच–छः दिन पहले ही यहाँ आए थे। आज प्रातः काल में कुछ मित्रों के साथ किसी निमित्त से श्रृंगार वेश धारण करके कामदेव के मन्दिर गए थे और वहीं पर नगर की नारियों को देखते हुए पूरा दिन बिता दिया। कामदेव के मन्दिर में यात्रोत्सव समाप्त हो जाने पर, सभी मित्रों को वापस भेजकर रात्रि में वही कमल के पत्तों की शय्या पर सो गए। रात्रि के मध्य में अचानक ही शिविर में आकर युद्ध के लिए सेना को सज्जित किया। किसी के रोकने पर भी नही माने और काञ्ची से निकलकर इस दशा को प्राप्त हुए।'' धीरे–धीरे प्रातः काल हो गया और शत्रु सेना जागने लगी। राजकुमार ने भी निद्रा का त्याग किया परन्तु अपनी अवस्था को देखकर दुःख और लज्जा से पुनः मूर्छित हो गया। वज्रायुध ने अभय सूचक पटह बजवा दिया और समरकेतु को प्रेमपूर्वक अपने आवास पर ले आए। वहाँ स्वयं ही समरकेतु के व्रणों की पट्टी इत्यादि की। उसके स्वस्थ होने पर वज्रायुध ने उसके पराक्रम की प्रशंसा करते हुए कहा कि कोई भी आपसे जीत पाने में समर्थ नहीं हैं, आपकी पराजय का कारण मैं नहीं अपितु यह दिव्य अंगूठी है। यह कहकर वज्रायुध ने राजकुमार को वह अंगूठी दिखाई और उसकी प्राप्ति का समस्त वृत्तान्त भी सुनाया। इसके पश्चात् वज्रायुध ने कहा कि अब यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कौशल नरेश की सेना के अध्यक्ष पद को स्वीकार करें। सारा वृत्तान्त सुनकर समरकेतु का कुछ संताप दूर हो गया और वह आपके दर्शनों के लिए उत्सुक हो उठा। सेनापति ने प्रसन्न होकर राजकुमार को मेरे साथ आपके दर्शनार्थ भेज दिया।

वज्रायुध और समरकेतु के इस वृतान्त को सुनकर सभा में उपस्थित सभी राजगण आश्चर्यचकित हो गए। सम्राट् मेघवाहन ने हरदास नामक प्रधान प्रतिहारी को भेजकर आदरपूर्वक समरकेतु को बुलवा लिया। समरकेतु के आने पर सम्राट् ने उसे प्रेमपूर्वक अपने पास बुलाकर पुत्रवत् अपने अंक में ले लिया। तदनन्तर बेंत

का आसन मंगाकर अपने पास बिठा लिया और उसकी वीरता तथा शालीनता की प्रशंसा करते हुए कहा कि देवी लक्ष्मी ने मुझे दिव्य अंगूठी के माध्यम से दूसरे पुत्र के रूप में तुम्हें दे दिया है। यह कहकर मेघवाहन ने हरिवाहन से कहा कि सभी गुणों में उत्तम यह समरकेतु आज से आपका सहचर बना दिया गया है। अब अहर्निश आपको साथ रहना है। हरिवाहन पिता की आज्ञा के हृदयस्थ कर सहोदर भाई के समान प्रेमपूर्वक समरकेतु को अपनी माता मदिरावती के पास ले गया और उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाया।

मध्याह्न में सुदृष्ट नामक अक्षपटलिक ने आकर सूचना दी कि सम्राट् ने हरिवाहन को कश्मीरादि मुख्य ग्रामों से युक्त उत्तरापथ का राज्य व समरकेतु को सम्पूर्ण अंगादि जनपद का राज्य दे दिया है। यह सुनकर दोनों प्रसन्न हुए और आमोद-प्रमोद में आनन्दपूर्वक दिन बिताने लगे। एक दिन ग्रीष्म ऋतु में हरिवाहन प्रातः उठकर, नित्यकर्मो से निवृत्त होकर समरकेतु व अन्य विश्वस्त नृपकुमारों के साथ सरयू नदी के समीप स्थित मत्तकोकिल नामक उद्यान में गया। वहाँ इतस्ततः भ्रमण करते हुए वे सरयू तट पर स्थित कामदेव के मन्दिर के समीप अत्यन्त मनोहारी जलमण्डप में पहुंचे। वहाँ परिजनों द्वारा निर्मित पुष्प शैय्या पर बैठकर काव्य गोष्ठी प्रारम्भ कर मनोरंजन करने लगे। उसी समय मंजीर नामक वन्दिपुत्र ने आकर निवेदन किया कि "चैत्रमास की शुक्ल त्रयोदशी को इसी मन्दिर के प्राङ्गण में मुझे एक पत्र मिला था। मुझे इसमें लिखे आर्या वृत्तबद्ध श्लोक का अर्थ समझ में नहीं आ रहा है। कृपया आप इसका अर्थ कर दें। यह कह कर उसने वह श्लोक सुना दिया।"[2] हरिवाहन ने कहा कि यह किसी धनाढ्य की पुत्री का अपने प्रिय को भेजा गया प्रेम पत्र है। इस पत्र में उसने प्रेम-विवाह के लिए गुप्त रूप से विवाह-स्थल का संकेत किया है। इस प्रकार हरविाहन ने विस्तृत रूप से उस श्लोक का अर्थ कर दिया।

हरिवाहन के अर्थ कर देने पर वन्दिपुत्र मन्जीर और अन्य राजपुत्र हर्षित होकर हरिवाहन की प्रतिभा की प्रशंसा करते हैं, परन्तु श्लोक के अर्थ को हृदयङ्गम कर समरकेतु व्याकुल हो जाता है और उसके नेत्र आर्द्र हो जाते है। उसकी इस दशा को देखकर कलिंगदेश के राजकुमार कमलगुप्त ने उसकी

2. गुरुभिर्दत्तां वोढुं वाञ्छन्मामक्रमात्त्वमचिरेण ।
स्थातासि पत्रपादपगहने तत्रान्तिकस्थाग्निः ।। ति. म., पृ. 109

परेशानी के कारण को जानने का प्रयास किया, परन्तु सफल नहीं हुआ। जब हरिवाहन ने प्रेमपूर्वक उसकी व्याकुलता के विषय में पूछा, तब समरकेतु ने अपने अश्रुओं को पोंछकर कहा –

समरकेतु का वृत्तान्त

सिंहलद्वीप पर रंगशाला नामक नगरी हैं। वहाँ पर मेरे पिता चन्द्रकेतु राज्य करते हैं। एक बार उन्होंने सुवेल पर्वत के समीपवर्ती दुष्ट सामन्तों को दण्ड देने के लिए मुझे नौ सेना का नायक बनाकर, मुख्य राजाओं और मन्त्रियों के साथ दक्षिणापथ भेजा। मैं अमरवल्लभ नामक गन्धगज पर आरूढ़ होकर अपनी सेना के साथ प्रस्थानमन्त्र की ध्वनि से मुखरित नगर सीमा से निकलकर, विष और अमृत के उत्पत्ति स्थान, अति गम्भीर समुद्र के तट पर पहुँचा। प्रतिहारियों के द्वारा समुद्र यात्रा के लिए जलयानों की व्यवस्था को देखते हुए, दो-तीन दिन वहीं पर सेना सहित निवास किया। वहाँ पर मैंने अत्यन्त उज्जवल और मनोहारी आकृति वाले पच्चीस वर्षीय नाविक युवक को देखकर नौ सेना अध्यक्ष से उसके विषय में पूछा। उसने बताया कि यह स्वर्णद्वीप की मणिपुर नामक नगरी में प्रतिष्ठा प्राप्त वैश्रवण नामक पोत-वणिक् का पुत्र तारक है। यह अपने साथियों के साथ व्यापार के लिए इस रंगशाला नगरी में आया था। यहाँ नाविकों के सरदार जलकेतु की पुत्री प्रियदर्शना को देखकर काम-विकार से पीड़ित हो गया और उससे विवाह करके यहीं रह गया। सम्राट् चन्द्रकेतु ने इसके गुणों को जानकर, इसे समस्त नाविकों को नायक बना दिया। सभी प्रकार से योग्य इस नवयुवक की सहायता से आप इस विस्तृत समुद्र को अनायास ही पार कर लेंगे।

उसी समय उस नाविकों के नायक ने आकर मुझे प्रणाम किया और बताया कि यात्रा की तैयारियाँ पूर्ण हो गई हैं। मैं सेना सहित जलयानों में सवार हो गया। दुष्ट सामन्तों को अपने अधीन करते हुए हम सुवेल पर्वत पहुँचे। निरन्तर युद्धों से थकी हुई सेना के साथ मैंने उस रमणीय व मनोहर पर्वत की शोभा देखते हुए वहीं पर कुछ दिन बिताए। एक दिन दुर्गम दुर्ग व सेना के गर्व से मत्त भीलराज को बंदी बनाकर लाते हुए, अत्रि नामक भट्टपुत्र ने सेनाध्यक्ष की ओर से निवेदन किया कि यदि आपकी आज्ञा हो तो पञ्चशैल द्वीप के इस रमणीय पर्वत पर विश्राम कर लिया जाये। मैंने अनुमति प्रदान कर दी। वहाँ विश्राम करते हुए अचानक ही रात्रि के अन्तिम प्रहर में उस पर्वत की पश्चिमोत्तर दिशा से दिव्य मंगल गान की ध्वनि

सुनाई दी। उस ध्वनि को सुनकर मैंने तारक को उसके उत्पत्ति स्थल की ओर प्रयाण करने के आदेश दिया। पाँच-छः नाविकों को साथ लेकर बहुत दूर निकल आने पर अचानक वह ध्वनि सुनाई देनी बंद हो गई। तारक ने जलयान रोक कर मुझसे पूछा- ''हे युवराज ! हमारी मार्ग निर्देशक ध्वनि बन्द हो गई है। अब क्या करना है?यहीं से वापस लौटना है अथवा आगे जाना है?'' अभिलषित आनन्द की आशा खण्डित होने से मैं दु:खी हो गया और अवनत मस्तक होकर इस ऊहा-पोह में पड़ गया कि इसे आगे चलने को कहुँ या वापस चलने को। इसी चिन्तन में रात्रि बीत गई और लालिमा लिए सूर्य की किरणें धरती पर उतर आई। उसी समय मैंने पर्वत के पास ही अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रकाशपुंज में से आकाशमार्ग से उतरते हुए, विद्याधर समूह को निकलते हुए देखा। मैंने तुरन्त तारक को आगे चलने को कहा और शीघ्र ही पास जाकर हमने एक दिव्य मन्दिर को देखा। उस दिव्य मन्दिर को देखकर मैंने अपने जीवन को सार्थक माना और उसमें पूजा करने का विचार किया, परन्तु मन्दिर के प्रवेश द्वार को न पाकर वहीं रुक गया। उसी समय हमें नूपुरों की झङ्कार सुनाई दी और मन्दिर की दीवार पर अनेक कन्याओं के मध्य एक षोडषवर्षीय अत्यन्त सुन्दर कन्या दिखाई दी।

(यहाँ प्रतिहारी के प्रवेश करने से समरकेतु की कथा रुक जाती है)

प्रतिहारी प्रवेश करके तथा हरिवाहन के समीप जाकर निवेदन करती है कि नेत्रों के लिए अमृत तुल्य इस चित्र को आप एक क्षण देख लें। यह सुनकर हरिवाहन ने कामदेव की जय घोषणा के समान अत्यन्त रूपवती नवतरुणी के उस चित्र को देखा। उस में चित्रित तरुणी के सौन्दर्य से मुग्ध होकर हरिवाहन पुनः पुनः उस चित्र को देखने लगा। चित्र की प्राप्ति के विषय में पूछने पर प्रतिहारी ने बताया कि मैंने उद्यान की शोभा को देखते हुए माधवी लतामण्डप में कमलिनी समूह की शय्या पर सोये हुए अतिसुन्दर पन्द्रह वर्षीय बालक को देखा। उसके पूछने पर जब मैंने उसे आपका परिचय दिया, तो प्रसन्न होकर उसने आपको दिखाने के लिए मुझे यह चित्र देकर कहा कि मैं भी आपके पीछे-पीछे आ रहा हूँ। प्रतीहारी के इतना कहते ही वह बालक भी वहाँ आ गया। उसने हरिवाहन को नमस्कार करके कहा- ''हे कुमार ! मैं चित्रकला में अप्रौढ़ हूँ, यदि आपको इस चित्र में कहीं कोई दोष दिखाई दे रहा हो तो कृपया मुझे बताएँ।'' हरिवाहन ने कहा कि हर प्रकार से उत्कृष्ट इस चित्र में किसी पुरुष का चित्रण नहीं है, यही

एकमात्र दोष है। यह सुनकर बालक ने कहा कि चित्र में चित्रित कन्या पुरुषों से विद्वेष रखती है, इसी तथ्य को प्रकट करने के लिए मैंने पुरुष रहित चित्र बनाया है। अभी किसी कार्यवश मुझे शीघ्रता है, इसलिए इसका कारण मैं संक्षेप में कहता हूँ सुनिए -

वैताढ्य पर्वत पर समस्त भारत वर्ष के विलास स्थान के समान रथनूपुरचक्रवाल नामक विद्याधरों का नगर है। वहाँ पर अत्यन्त बुद्धिमान, बलशाली व नीतिनिपुण चक्रवर्ती सम्राट् चक्रसेन राज्य करते हैं। जिनकी महान विद्याधर वंशोत्पन्न महारानी पत्रलेखा ने सौन्दर्य में तीनों लोकों में उत्कृष्ट, तिलकमञ्जरी नामक कन्या को जन्म दिया।यह चित्र उसी विद्याधर कन्या का है। नम्रता, शीलता, सौन्दर्य व लज्जा आदि स्त्रीजनोचित गुणों से युक्त यह राजकुमारी स्वप्न में भी पुरुष सम्पर्क की इच्छा नहीं करती। पिता आदि गुरुजनों के द्वारा बहुत प्रकार से समझाए जाने पर भी यह विवाह नहीं करना चाहती। तिलकमञ्जरी की इस मनोवृत्ति से दुःखी महारानी पत्रलेखा के स्वप्न में आकर विद्याधरों की देवी ने कहा-हे पुत्रि! विषाद मत करो। समस्त राजाओं में उत्कृष्ट भूमिवासी सम्राट् का पुत्र ही तिलकमञ्जरी का पति होगा। तुम्हारे पुण्यों के प्रभाव से ही देवी लक्ष्मी की सखी तुम्हें पुत्री रत्न के रूप में प्राप्त हुई है। इस स्वप्न को देखकर पत्रलेखा ने अपनी सखी व मेरी माता चित्रलेखा को बुलाकर कहा- "सखि! तुम चित्रकला में प्रवीण हो और तिलकमञ्जरी चित्रदर्शनानुरागिनी है। तुम भूतलवर्ती सुन्दर राजकुमारों के चित्र बनाकर चित्रकौशल दर्शन के व्याज से उसे दिखाओं तथा उनके पराक्रम आदि का खूब वर्णन करो। ऐसा करने से सम्भवतः तिलकमञ्जरी किसी राजकुमार को पसन्द कर ले।" यह सुनकर चित्रलेखा ने भूतलवर्ती राजकुमारों के चित्र बनाने के लिए चित्रकला में निपुण दूतियों को सभी दिशाओं में भेज दिया और मुझे कहा कि पुत्र गन्धर्वक, तुम्हें भी यही कार्य करना है। परन्तु आज देवी पत्रलेखा किसी कार्यवश तुम्हे अपने पिता विद्याधरेन्द्र विचित्रवीर्य के पास भेज रही हैं। उनका कार्य करने के पश्चात् विद्याधरेन्द्र को मेरे ये वचन कहना कि काञ्चीनरेश कुसुमशेखर की महारानी गन्धर्वदत्ता उनकी ही पुत्री है। गन्धर्वदत्ता ने एकान्त में वैजयन्ती नगर की दुर्घटना के विषय में ठीक-ठीक बता दिया था। अतः आप गन्धर्वदत्ता के विषय में संदेह न करें। यह सूचना देकर तुम्हें काञ्चीनगर जाकर कुछ समय देवी गन्धर्वदत्ता की सेवा करनी है और शीघ्र ही यहाँ लौटना है। अनेक विद्याओं में निपुण यह

चित्रमाय नामक विद्याधर समय-समय पर तुम्हारी सहायता करेगा। यह कहकर गन्धर्वक ने कहा कि अब आप मुझे आवश्यक राजकार्यवश जाने के लिए अनुमति दें। मार्ग में कोई विघ्न न होने पर लौटते समय यहाँ आकर आपका चित्र बनाऊँगा, जो अवश्य ही राजकुमारी तिलकमञ्जरी के पुरुष विद्वेष को शान्त कर देगा। यह कहकर जाने को उत्सुक गन्धर्वक को हरिवाहन ने समरकेतु का लिखा हुआ एक पत्र दिया और कहा कि यह पत्र काञ्ची नरेश की पुत्री मलयसुन्दरी को आदरपूर्वक दे देना।

तिलकमञ्जरी के चित्र दर्शन से ही हरिवाहन काम विकार से पीड़ित हो गया और गन्धर्वक के जाने के पश्चात् सदा तिलकमञ्जरी के विषय में चिन्तन करते हुए, गन्धर्वक के आगमन की प्रतीक्षा में समय बिताने लगा। प्रतीक्षा करते हुए ग्रीष्म व वर्षा ऋतु बीत गई और शरद् ऋतु आ गई। पर गन्धर्वक नहीं आया। धीरे-धीरे गन्धर्वक के वापस आने की आशा क्षीण होती गई तिलकमञ्जरी के चित्र-दर्शन से जनित वेदना को कम करने के लिए हरिवाहन ने राज्य भ्रमण का निश्चय किया और पिता की आज्ञा प्राप्त कर समरकेतु व अन्य मित्रों के साथ निकल पड़ा। इधर-उधर भ्रमण करते हुए वे कामरूप नामक देश में पहुँचे। वहाँ के राजा के द्वारा प्रीतिपूर्वक रोक लिए जाने पर वहीं पर अपना शिविर बना लिया। हरिवाहन के विषय में जानकर उत्तरापथ के राजा श्रेष्ठ उपहारों के साथ उससे मिलने आने लगे।

एक दिन हरिवाहन अपने मित्रों और भृत्यों के साथ लौहित्य नदी के मृगवन में गया। वहां के मनोरम वातावरण में वे वीणावादन का आनन्द उठाने लगे, तभी पुष्कर नामक मुख्य महावत ने आकर बताया कि वैरियमदण्ड नामक प्रधान हाथी उन्मत्त हो गया है और किसी के भी वश में नहीं आ रहा है। यह सुनकर हरिवाहन समरकेतु आदि के साथ वहाँ गया। वहाँ हरिवाहन ने वीणा के मधुर स्वरों को फैलाना आरम्भ किया, जिसको सुनकर वह हाथी उग्र रूप को छोड़कर आनन्दित होकर, आनन्दाश्रु बहाने लगा। उसकी इस अवस्था को देखकर और यह वश में हो गया ऐसा समझकर हरिवाहन उस पर आरूढ़ हो गया। उसके पीठ पर बैठते ही वह हाथी द्रुत गति से वहाँ से दौड़ पड़ा और शीघ्र ही सभी की आँखों से ओझल हो गया। समरकेतु ने अन्य राजपुत्रों और सैनिकों के साथ उसको ढूँढ़ने का हर सम्भव प्रयास किया, परन्तु असफल रहे। तीसरे दिन कुछ महावतों ने आकर अत्यन्त दुःखपूर्वक राजकुमार समरकेतु को बताया कि वह दुष्ट हाथी तो मिल

गया है, परन्तु युवराज हरिवाहन का कुछ पता नहीं चला। हरिवाहन के साथ किसी अनिष्ट की आशंका से समरकेतु के हृदय पर वज्रपात हो गया और उसने आत्महत्या का निश्चय कर लिया। उसी समय हर्ष नामक द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि सेनापति कमलगुप्त का परितोष नामक पत्रवाहक कुमार हरिवाहन की कुशलता का समाचार लाया है। समरकेतु के पूछने पर परितोष ने बताया कि कुमार हरिवाहन की विरह-वेदना से सन्तप्त सेनापति कमलगुप्त ने अचानक ही अपने सामने रखे इस पत्र को देखा। इस पत्र के वाहक का पता न चलने पर उन्होंने मन्त्रियों से मन्त्रणा करके इस पत्र का उत्तर लिखा। तदन्तर सभी ने हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कहा – ''जो भी देवता, दानव या विद्याधर इस पत्र को यहाँ लाया है, वह इस पत्रोत्तर को हरिवाहन तक पहुँचाने की कृपा करे। ऐसा कहने पर एक शुक उस पत्रोत्तर को चोंच में दबाकर तीव्रता से अन्तरिक्ष में उड़ गया। इसके पश्चात् सेनापति ने मुझे बुलाकर आपको इस पत्र को देने के लिए यहाँ भेज दिया।

हरिवाहन की कुशलता सुनकर समरकेतु बहुत प्रसन्न हुआ और हरिवाहन के अन्वेषणार्थ बिना किसी को बताए रात्रि में उसी ओर चल पड़ा, जिस ओर वह उन्मत्त गज हरिवाहन को लेकर चला गया था। पर्वतों, नगरों आदि में ढूंढते हुए उसे छः माह बीत गए, पर हरिवाहन का कुछ पता नहीं चला। एक दिन अष्टापद पर्वत के पश्चिम में स्थित वैताढ्य पर्वत के समीप एकशृंग नामक पर्वत के उर्ध्व भाग में जाते हुए समरकेतु ने अत्यन्त विशाल और रमणीय अदृष्टपार नामक दिव्य सरोवर को देखा। उस दिव्य सरोवर को देखकर और प्रसन्न होकर उसने उसमें स्नान किया, जिससे उसके मार्ग का श्रम दूर हो गया। कुछ देर सरोवर के तट पर रुककर वह माधवी लतामण्डप में जाकर सो गया। स्वप्न में उसने पारिजात वृक्ष के दर्शन किए, जिससे उसे मित्र हरिवाहन से शीघ्र संगम का निश्चय हुआ। अभी वह कुछ ही सोच ही रहा था कि उसने वन को कम्पायमान करने वाली अश्वसमूह के हिनहिनाने की आवाज सुनी। उसने बहुत इधर-उधर देखा, पर कोई भी नजर नहीं आया। तत्पश्चात् वह सोच-विचार कर हरिवाहन की खोज में उत्तर की दिशा की ओर चला पड़ा। चलते-चलते वह एक अत्यन्त रमणीय उद्यान में पहुँचा। उस उद्यान में उसने कल्पतरु वन के मध्य भाग में सुदर्शन नामक दिव्य आयतन को देखा। उस आयतन में प्रवेश करके उसने पारिजात पुष्पमालाओं से अभ्यर्चित, तीनों लोकों के गुरु आदि जिनेन्द्र भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा के

दर्शन किए। भक्ति से परिपूर्ण होकर उसने वहाँ सिर झुकाकर प्रणाम करके पूजा की।[3] वहीं पर हरिवाहन के विषय में चिन्तन करते हुए अनायास ही 'हरिवाहन' शब्दोच्चारण सहित श्लोक की ध्वनि उसके कर्णविवर में पड़ी। उस ध्वनि के उद्गम स्थल का अन्वेषण करते हुए उसने **द्विपदिका**[4] का उच्चारण करते हुए गन्धर्वक को देखा और अत्यधिक सुख को प्राप्त किया। गन्धर्वक ने भी समरकेतु को पहचानकर तत्क्षण ही नमस्कार किया और बताया कि हरिवाहन अब विद्याधरेन्द्रों के चक्रवर्ती सम्राट हो गए हैं। आई मैं आपको आपके मित्र हरिवाहन के पास ले चलता हूँ। समरकेतु ने गन्धर्वक के साथ उत्तर दिशा की ओर चलते हुए एक कदली गृह को देखा। वहाँ समरकेतु ने अत्यन्त सुन्दर विद्याधरेन्द्र कन्या तिलकमञ्जरी के साथ पद्मराग मणिमय शिला पर बैठे हुए हरिवाहन को देखा। गन्धर्वक ने शीघ्रता से हरिवाहन के पास जाकर समरकेतु के आने की सूचना दी। यह सुनकर हर्षातिरेक से 'कहाँ है कहाँ है' कहते हुए हरिवाहन अपने आसन से खड़े हो गए। उसी समय उन्होंने दरवाजे से समरकेतु को आते हुए को आते हुए देखा और आगे बढ़कर प्रीतिपूर्वक उसका आलिंगन किया तथा उसे अपने पास ही बिठा लिया। तत्पश्चात् समरकेतु का परिचय देते हुए तिलकमञ्जरी से कहा - देवि! यह सिंहलद्वीप के अधिपति चन्द्रकेतु का आत्मज और समस्त वीरों में अग्रणी समरकेतु है, जिसे तुम्हारी भगिनी मलयसुन्दरी ने पति रूप में अङ्गीकृत किया है। यह सुनकर तिलकमञ्जरी बहुत ही प्रेम व आदर से उसे देखने लगी। उसी समय किसी गायक के द्वारा उच्च स्वर में गाए जा रहे **आर्या**[5] को सुनकर हरिवाहन ने हंसकर तिलकमञ्जरी से कहा कि राजधानी में प्रवेश करने का समय आ गया है। इसी कारणवश प्रमुख मन्त्रियों द्वारा प्रेषित विराध नामक यह मन्त्री मुझे हंस के व्याज से यहाँ से प्रस्थान करने के लिए प्रेरित कर रहा है। अतः आप मुझे जाने की आज्ञा दें। यह कहकर हरिवाहन समरकेतु के साथ हस्तिनी पर

3. शुष्क शिखरिणी कल्पशाखीव, निधिरधनग्राम इव
कमलखण्ड इव मारवेऽध्वनिभवभीमारण्य इह वीक्षितोऽसि - ति. म., पृ. 218

4. आकल्पान्तमर्थिकल्पद्रुम चन्द्रमरीचिसमरूचिप्रचुरयशोंशुभरित विश्वंभर भरतान्वयशिरोमणे। जनवन्द्यानवद्यविद्याधर विद्याधरमनस्विनीमानसहरिणहरण हरिवाहन वह धीरोचितां धुरम् ।। ति.म., पृ. 222

5. तव राजहंस हंसीदर्शनमुदितस्य विस्मृतो नूनम् ।
सरसिजवनप्रवेशः समयेऽपि विलम्बसे तेन ।। वही, पृ. 232

आरूढ़ होकर वैताढ्य पर्वत के मध्यवर्ती वन की शोभा को देखते हुए गगनवल्लभ नगर में गए। वहाँ राजभवन में उन्होंने स्वागतोत्सव का आनन्द लिया। भोजनादि के उपरान्त रात्रि में हरिवाहन ने समरकेतु के दुर्बल व म्लान शरीर को देखकर दुखी होते हुए मार्ग वृत्तान्त पूछा, तब समरकेतु ने सम्पूर्ण वृत्तान्त बताया। अगले दिन वे वैताढ्य पर्वत पर गए। वहाँ से उन्होंने दर्शनीय दृश्यों का अवलोकन किया। वहाँ समरकेतु के द्वारा पूछे जाने पर हरिवाहन ने अपना वृत्तान्त बताना आरम्भ किया –

हरिवाहन का वृत्तान्त :

मुझे लेकर भागते हुए वह मदान्ध हाथी अचानक ही उछलकर अन्तरिक्ष में चला गया और उत्तर दिशा की ओर उड़ने लगा। कुछ ही देर में वह एकशृंग नामक पर्वत के शिखर के ऊपर आकाशमार्ग में पहुंच गया। निकट ही वैताढ्य पर्वत को देखकर मैंने सोचा कि न जाने यह मुझे कहाँ ले जाएगा और उसे लौटाने का निश्चय कर मैंने अपने जघन स्थल से आबद्ध छुरिका का हाथ से स्पर्श किया। छुरिका को देखकर वह भीषण चीत्कार करता हुआ अदृष्टपार नामक सरोवर में गिर पड़ा। गिरने के बाद वह हाथी अन्तर्ध्यान हो गया और मैं किसी प्रकार तैरकर किनारे पर आया। कुछ देर वहीं चिन्तन कर किसी नगर, ग्राम अथवा आश्रम की तलाश में वहाँ से चल पड़ा। कुछ दूर चलने पर मैंने सरोवर-तट की बालू पर स्त्रियों के पद-चिह्नों को देखा। उनका अनुसरण करते हुए मैंने एक इलायची लतागृह में कोमल पुष्पों को तोड़ती हुए एक सुन्दर कन्या को देखा और पास जाकर उसका परिचय पूछा। परन्तु उसने उत्तर नहीं दिया और वहाँ से चली गई। गन्धर्वक के दिखाए चित्र का स्मरण करते हुए 'यह तिलकमञ्जरी ही थी' ऐसा निश्चय कर उसके पुनः दर्शन की अभिलाषा से मैंने उसे इधर-उधर ढूंढ़ा पर वह नहीं मिली। तदनन्तर उस रात मैं उस इलायची लतागृह के रक्ताशोक वृक्ष के समीप शय्या रचकर सो गया।

अगले दिन उत्तर दिशा में चलने पर मैंने एक मन्दिर देखा। उस मन्दिर में देवता को नमस्कार करने के पश्चात् मैंने एक अठारह वर्षीय तापस कन्या को देखा। मुझे देखकर उसने मेरा स्वागत किया और अपने निवास स्थल तपोमन्दिर में ले गई। वहाँ उसने मेरा परिचय पूछा। मैंने अपना सारा वृत्तान्त सुना दिया और उसके विषय में पूछा। उसने धीरे-धीरे कहना प्रारम्भ कर किया –

मलयसुन्दरी का वृत्तान्त :

दक्षिण समुद्र के पास अपनी शोभा से पृथ्वी के सभी नगरों को जीत लेने वाली काञ्ची नामक नगरी हैं। उसमें सौन्दर्य में कामदेव को भी तिरस्कृत करने वाले राजा कुसुमशेखर राज्य करते है। मैं उस कुसुमशेखर की पुत्री हूँ। गन्धर्वदत्ता नामक मेरी माता उनकी महारानी है। मेरे जन्म के समय समस्त दैवज्ञों में श्रेष्ठ वासुरात ने मेरा भविष्यफल बताया कि जिसका इस कन्या के साथ पाणिग्रहण होगा, वह परम पराक्रमी चक्रवर्ती सम्राट् के द्वारा प्रदत्त चारों समुद्रों से परिवेष्टित भूमि पर राज्य करेगा। दस दिन बीतने पर माङ्गलिक क्रियाओं के साथ मेरा नाम मलयसुन्दरी रख दिया गया। क्रमपूर्वक मैंने बाल्यावस्था को लांघ कर युवावस्था में प्रवेश किया। एक रात जब मैं अपने भवन में सो रही थी, तो पटह, वल्लरी व मृदंग आदि वाद्यों की कर्णप्रिय ध्वनि से मेरी निद्रा भङ्ग हो गई और मैंने स्वयं को जिन मन्दिर में राजकन्याओं से घिरा पाया। यह देखकर मुझे समझ नहीं आया कि यह क्या है?तब मैंने रत्नमण्डप में बैठी सौम्यवेषधारी वृद्ध स्त्री से आदर सहित उस स्थान के विषय में पूछा। उसने बताया - ''पुत्रि! यह दक्षिण दिशा के समुद्र में स्थित पञ्चशैल नामक द्वीप है और ये वैताढ्य पर्वत के नगरवासी आकाश विहारी विद्याधर है। इनके राजा विचित्रवीर्य है। भगवान जिन के अभिषेकोत्सव पर नृत्य के लिए ही तुमकों यहाँ लाया गया है।'' भगवान जिन के अभिषेक कर्म और पूजा की समाप्ति पर नृत्य आरम्भ हुआ। नृत्य के समाप्त होने पर मेरे नृत्य कौशल से प्रसन्न होकर विद्याधरेन्द्र विचित्रवीर्य ने मुझे पास बुलाकर अपने पास बिठा लिया और प्रेमपूर्वक मुझसे मेरे नृत्य-शिक्षक का नाम पूछा। मैंने बताया कि नृत्य की शिक्षा देने वाले मेरे अनेक गुरु थे परन्तु ये विशेष नृत्य प्रयोग मैंने अपनी माता गन्धर्वदत्ता से सीखें है। 'कहीं यह गन्धर्वदत्ता नगर उपद्रव में गुम हुई मेरी पुत्री तो नहीं' यह विचारकर उन्होंने मेरी जननी के माता, पिता के विषय में जानना चाहा। तब मैंने बताया कि मेरी माता ने कभी मुझे उनके विषय में नहीं बताया। तो भी उनके विषय में मुझे कुछ ज्ञान हैं, क्योंकि एक बार काञ्ची नगरी में एक त्रिकालदर्शी महामुनि आए थे। मेरी माता मुझे लेकर उनके दर्शनार्थ वहाँ गई और मुनि को नमस्कार करके कहा कि विद्याधर वंश में उत्पन्न मैं बाल्यावस्था में ही नगर-उपद्रव में अपने पिता से वियुक्त हो गई थी। बहुत समय से मैं यहाँ हूँ, परन्तु मुझे गुरुजनों (पितादि) का समागम लाभ नहीं मिला। इस पर महामुनि ने कहा कि

तुम्हारी इस पुत्री के विवाह के समय तुम्हारा अपने बन्धुओं से मिलन होगा। इस वृत्तान्त से ही मुझे अपनी माता के विषय में ज्ञात हुआ।

यह सुनकर विचित्रवीर्य ने वास्तविकता के ज्ञान के लिए चित्रलेखा को नियुक्त कर दिया। तत्पश्चात् तपनवेग नामक विश्वस्त पुरुष को बुलाकर कहा कि सभी दर्शनीय स्थल दिखाकर इसे व सभी राजकुमारियों को छिपे रूप से उनके भवनों में पहुँचा दो। वहाँ घूमते हुए मैनें भगवान महावीर के दर्शन किए और समुद्र को देखने की इच्छा से मन्दिर की दीवार पर चढ़ गई। वहाँ मैनें नौका पर आरूढ़ अतिसुन्दर राजकुमार को देखा। उसे देखते ही मेरे मन में उसके लिए अनुराग उत्पन्न हो गया। वह भी मुझे देखकर स्मर-विकार से पीड़ित हो गया। कुछ क्षणों पश्चात् उसके सुन्दर आकृति वाले नाविक ने आकर प्रणाम करके मुझसे कहा - ये सिंहल द्वीप के अधिपति चन्द्रकेतु के पुत्र समरकेतु है। सागरान्तर द्वीप विजय के प्रसंगवश यहाँ आ गए हैं। दुष्प्रवेश्य इस मन्दिर में प्रवेश के लिए मार्ग दर्शन की कृपा करें। मेरे संकेत करने पर राजकुमारी वसन्तसेना ने कहा - भद्र! हम अलग-अलग देश की राजकुमारियाँ है और इस स्थान से अपरिचित हैं, अतः आपका मार्गदर्शन नहीं कर सकती। यह सुनकर नाविक ने अलपक दृष्टि से मुझे देखते हुए राजकुमार को सारी बात बता दी और उसे वापस ले जाने लगा। यह देखकर मैंने वसन्तसेना से उन्हे रोकने को कहा। वसन्तसेना ने उन्हें रोक लिया। रुकने पर वह नाविक नौका की स्तुति के व्याज से मुझसे अपने स्वामी की अर्द्धांगिनी बनने की प्रार्थना करने लगा। मैं उसके विषय में सोचने लगी। उसी समय तपनवेग ने पुजारी के पुत्र के साथ आकर कहा कि सभी लोगों की दृष्टि से ओझल कर देने वाले इस हरिचन्दन को ग्रहण कीजिए और पूजा के लिए लाए गऐ दिव्य पुष्पों के इस हार को सिर पर धारण कर लीजिए। पुजारी पुत्र ने कहा कि तेजी से नृत्य करने के कारण करघनी से गिरी हुई इस पद्मराग मणि को भी ग्रहण कीजिए। तब मैंने समरकेतु को लक्ष्य कर कहा **अङ्गीकृतश्चायं नायकः**[6] नायक (मणि, अन्यत्र समरकेतु) को स्वीकार कर लिया गया है, परन्तु स्थान (करघनी, अन्यत्र काञ्ची) आने पर उसे ग्रहण किया जाएगा। यह कहकर मैंने समुद्र पूजा के व्याज से वह पुष्पमाला राजकुमार के गले में डाल दी। तदनन्तर हरिचन्दन का तिलक लगाने से मेरे अदृश्य होने पर, मेरे वियोग से दुःखी होकर वह समुद्र में कूद पड़ा। मैं भी उसी के साथ प्राणों को त्यागने का निश्चय कर समुद्र में कूद

6. अङ्गीकृतश्चायं नायकः। किंतु तिष्ठतु तादद्यावदहमिहस्था। स्वस्थानमुपगता तुकाञ्चीमध्यमागतं ग्रहीष्याम्येनम् ....। ति. म., पृ. 288

पड़ी। आँख खुलने पर मैंने स्वयं को अपने भवन के शयन कक्ष में पाया। अपनी प्रिय सखी बन्धुसुन्दरी को मैंने सारा वृत्तान्त बता दिया। तत्पश्चात् बन्धुसुन्दरी के साथ उसी विषय में बातें करते हुए दिन बिताने लगी।

एक बार वसन्त समय में जब बन्धुसुन्दरी मेरी विरह वेदना को कम करने के लिए प्रिय समागम की आश्चर्यचकित करने वाली कथाओं से मेरा मनोरंजन कर रही थी, उसी समय कात्यायनिका नामक परचिारिका ने आकर मेरी माता का संदेश दिया कि आज मदन त्रयोदशी है और आपको कामदेव के मन्दिर में पूजार्थ जाना है। कल अयोध्या के सेनापति वज्रायुध से आपका विवाह होगा। युद्ध के उपशमनार्थ केवल यही एक उपाय है। यह सुनकर अत्यधिक दुःखी होकर मैंने आत्महत्या का निश्चय कर लिया और परिचारिका को कहा कि माता से कहना मैं सांयकाल में चली जाऊँगी। तत्पश्चात मैं स्नानादि करके माता-पिता से मिलकर गृहोद्यान में गई। वहाँ प्रिय वृक्षों, पक्षियों, कलहंसों से विदा सम्बन्धी वचनों को कहती हुई अपने भवन में गई और बन्धुसुन्दरी को भी अपने घर भेज दिया। तत्पश्चात् मैं उसी कामदेव मन्दिर में पहुँची, जिसमें माता ने पूजा करने का आदेश दिया था। कामदेव के मन्दिर में द्वार देश से ही कामदेव को प्रणाम किया और आत्महत्या करने के लिए अपने आवरण वस्त्र से मृत्यु पाश बनाया। तदनन्तर 'अगले जनम में उसी राजकुमार से संगम हो' यह कहकर गले में मृत्यु पाश को बांधकर उस कामदेव के मन्दिर के उद्यान के अशोक वृक्ष की शाखा से झूल गई। उसी समय मैंने अपने पीछे आती हुई व मेरी दशा को देखकर विलाप करती हुई बन्धुसुन्दरी को देखा। वह मेरे जीवन को बचाने के लिए सहायतार्थ मन्दिर में ठहरे एक राजकुमार को बुला लाई, जिसने मेरे मृत्यु पाश को काटकर मुझे बचा लिया। मैं यह देखकर बहुत आनन्दित हुई कि यह वही राजकुमार है, जिसका मैंने पतिरूप में वरण किया था। मैंने बन्धुसुन्दरी को उसका परिचय दिया। परिचय जानकर वह आश्चर्यचकित हो गयी और मेरा हाथ उसके हाथ में देकर बोली - 'अब मैं कृतार्थ हो गई और मेरी सारी चिन्ताएं भी दूर हो गई।' मैंने राजकुमार से पूछा कि पाताल के समान गहन उस समुद्र से आपको किसने बचाया। उसने उत्तर दिया कि मैंने किसी की आवाज तो सुनी थी, पर मैं उस दिव्य आत्मा को देख नहीं पाया, जिसने मुझे डूबने से बचाया। बाद में तारक ने तुम्हारे वचनों[7] को याद दिलाकर तुम्हें खोजने के लिए काञ्ची चलने को कहा। उसी समय एक

7. किं च चिन्त्यते कोऽपि तदवाप्त्युपाय: किं च काञ्चीनगरगमनाय गृह्यतेऽद्यापि नोद्यमः। किं विस्मृतं तद्युवराजस्य यत्तदा समुद्रोदरे छद्मना त्वदर्थे कृतप्रार्थनस्यविज्ञाय मे..। ति.म., पृ., 320

लेखहारक पिता चन्द्रकेतु का आदेश लेकर आया कि काञ्ची नरेश कुसुमशेखर की सहायता के लिए सैन्य बल सहित काञ्ची नगरी की ओर कूच करो। मैं अपनी सेना लेकर काञ्ची आ गया और आपको सर्वत्र खोजने लगा। आज कुसुमाकर नामक इस उद्यान के कामदेव के मन्दिर में आया और आपके दर्शनों की अभिलाषा से दरवाजे के पास ही मत्तवारणक में बैठकर प्रत्येक नारी को देखने लगा। आपके दर्शन न होने से दुःखी होकर मैंने सांयकाल में परिजनों को वापस भेज दिया और स्वयं मन्दिर में बैठ गया। यहाँ बन्धुसुन्दरी की आक्रन्दन ध्वनि सुनकर आपकी सहायतार्थ आपके पास आ गया।

सारी वार्ता सुनकर बन्धुसुन्दरी बोली कि आप किसी को देखे जाने से पूर्व रात्रि में ही इसे अपने देश ले जाएँ अन्यथा महाराज कुसुमशेखर सन्धि करने के लिए प्रातःकाल में मलयसुन्दरी को वज्रायुध को सौंप देगें। परन्तु समरकेतु ने इसे अनुचित बताया और कहा कि मुझे तुम्हारे पिता की सहायता करनी है। यह कहकर वह अपने शिविर में चला गया।

तदनन्तर बन्धुसुन्दरी ने विद्याधरों के द्वारा अपहरण से लेकर मेरा सारा वृत्तान्त मेरी माता को बता दिया। मेरी माता ने सारा वृत्तान्त मेरे पिता को बता दिया। यह सुनकर मेरे पिता ने मुझे मेरी माता की बाल सखी तरंगलेखा के साथ ऋषि शांतातप के आश्रम में भेज दिया। उस आश्रम में मैं हारादि समस्त आभूषणों को त्यागकर मुनिजनोचित वेष को धारण कर समय बिताने लगी। एक दिन काञ्ची से आए एक ब्राह्मण ने काञ्ची युद्ध के विषय में बताया कि न जाने कैसे काञ्ची के शत्रुओं ने काञ्चीपक्ष के राजाओं और सेना को दीर्घ निद्रा में सुला दिया। यह सुनते ही मैं मूर्छित हो गई। चेतना आने पर आत्महत्या का निश्चय कर तपोवन से निकलकर समुद्र की ओर चल पड़ी। उसी समय मैंने तरंगलेखा को अपनी ओर आते देखा। उसे देखकर मैंने किंपाक नामक वृक्ष का विषैला फल खा लिया। उसके खाते ही मेरा शरीर शिथिल हो गया और मैं मूर्छित हो गई। विष का प्रभाव कम होने पर मैं होश में आई और मैंने स्वयं को दिव्य काष्ठमय भवन में नलिनी पत्र शय्या पर पाया। उस भवन की खिड़की से मैंने इस अदृष्टपार सरोवर के मध्य भाग में मन्दिर को देखा। प्रिय के वियोग से दुःखी मैंने इसी सरोवर में प्राण त्यागने का निश्चय कर लिया, तभी उस भवन में एक ओर पड़े एक ताड़पत्र को देखकर उसे पढ़ा। वह पत्र समरकेतु का था। जिसमें उसने अपनी कुशलता के विषय में लिखा था। उसकी कुशलता का समाचार पाकर मैं प्रसन्न हो गई और उस

काष्ठमय भवन से उतर आई। इस दिव्य सरोवर में स्नान करके मैंने देवार्चना की और तट के समीप एक वृक्ष के नीचे बैठ गयी। उसी समय दो तीन परिचारिकाओं के साथ चित्रलेखा फूल चुनने के लिए वहाँ आई। उसने मुझे पहचान कर गले लगा लिया। कुछ समय पश्चात् विद्याधरों के चक्रवर्ती सम्राट् चक्रसेन की महारानी पत्रलेखा ने वहाँ आकर पूछा कि यह काष्ठ भवन किसका हैं। तब मुक्तावली नामक पालिका ने उसमें पड़े वस्त्रों व आभूषणों को देखकर बताया कि यह सुवेल पर्वत पर गए हुए गन्धर्वक का विमान है। यह सुनकर महारानी ने खेद सहित कहा कि न जाने गन्धर्वक का क्या हुआ?इसके पश्चात् महारानी ने चित्रलेखा से मेरे विषय में पूछा, तो उसने कहा कि यह तो आप जानती है कि आपकी छोटी बहिन गन्धर्वदत्ता जब दस वर्ष की थी तब वैताढ्य पर्वत निवासी आपके नाना उसकी नृत्य में रुचि होने के कारण, उसे अपनी नगरी वैजयन्ती ले गए थे। उस समय जितशत्रु नामक शत्रु सामन्त ने नगरी में बहुत उत्पात मचाया और सभी लोगों को भयभीत कर दिया। उस समय समरकेली नामक अन्तःपुर का रक्षक गन्धर्वदत्ता को उसके पिता के पास पहुँचाने के लिए उसे लेकर आकाश में उड़ गया। परन्तु घायल होने के कारण अतिकृश होकर प्रशान्त वैर नामक तपस्वी के आश्रम में पहुँचा। वहाँ गन्धर्वदत्ता को कुलपति को सौंपकर वह दीर्घनिद्रा में लीन हो गया। उस कुलपति ने उसे पुत्री के समान पाला और काञ्ची नरेश कुसुमशेखर से उसका विवाह कर दिया। यह मलयसुन्दरी उन्हीं की पुत्री है। भगवान महावीर के अभिषेकोत्सव के अवसर पर मैंने इसे नृत्य करते हुए देखा था। यह सुनकर पत्रलेखा ने स्नेह पूर्वक मुझे अपने निवास पर चलने को कहा, पर मैंने मुनि व्रत का पालन करने के लिए यहीं रहने की इच्छा प्रकट की। यह सुनकर उन्होंने इस त्रिभूमिका मठ की रम्यतर मध्यभूमिका मुझे रहने के लिए प्रदान कर दी और मेरी परिचर्या के लिए चतुरिका नामक परिचारिका को छोड़कर उसी विमान में बैठकर चली गई। उसी समय से मैं प्रिय दर्शन की आशा में यही समय बिता रही हूँ। यह कहकर वह चुप हो गई।

(यहाँ मलयसुन्दरी द्वारा वर्णित वृत्तान्त समाप्त होता है।)

उसका वृत्तान्त सुनकर मैंने मलयसुन्दरी को तुम्हारी कुशलता के विषय में आश्वस्त किया और वज्रायुध से युद्ध के बाद का सारा वृत्तान्त सुना दिया। तुम्हारी कुशलता के समाचार को सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई और बोली कि दुष्ट गज के द्वारा आपके अपहरण के बाद से न जाने समरकेतु की कैसी दशा होगी। समझ

नहीं आता कि आपकी कुशलता के समाचार को किस माध्यम से प्रेषित किया जाए?तभी एक शुक ने आकर मनुष्य की वाणी में कहा – 'आप दुःखी न हों और जो कार्य करना हो, वह मुझे बताएँ।' मैंने एक पत्र लिखकर उसे अपने सेनापति के पास पहुँचाने के लिए दे दिया, जिसे वह चोंच में दबाकर चला गया। धीरे-धीरे संध्या समय हो गया। उसी समय चतुरिका ने आकर मलयसुन्दरी को बताया कि अस्वस्थ तिलकमञ्जरी ने आपको बुलाने के लिए चारायण नामक कञ्चुकी को भेजा है। जब मलयसुन्दरी ने तिलकमञ्जरी की अस्वस्थता का कारण पूछा तो उसने बताया कि कल प्रातःकाल में तिलकमञ्जरी अदृष्टपार सरोवर के तटवर्ती वन में पुष्पवाचयन कर रही थी, तभी नीचे की ओर मुख किए हुए एक हाथी भीषण गर्जना करते हुए आकाश से इस सरोवर में आकर गिरा। यह देखकर तिलकमञ्जरी व पार्श्ववर्ती परिचारिकाएँ उर कर इधर-उधर छिप गई। कुछ देर बाद तिलकमञ्जरी लज्जा से अवनतमुखी होकर इलायची लतामण्डप से निकली और तमाल वृक्षों के झुण्ड के नीचे जाकर रुक गई। उसकी इस दशा को देखकर मुझे लगा कि अवश्य ही इलाइची लतामण्डप में गए हुए किसी अतिशय रूप लावण्य से युक्त दिव्य पुरुष के दर्शनों से ही इसकी यह दशा हुई है। उसी समय से वह अस्वस्थ हैं। यह सुनकर मलयसुन्दरी ने कहा – तुम जाकर तिलकमञ्जरी से कहो कि सकल भारतवर्ष के सम्राट् मेघवाहन के पुत्र हरिवाहन मेरे निवास स्थान पर आए हैं तथा मैं आदरणीय अतिथि को छोड़कर आने में असमर्थ हूँ। यह सन्देश लेकर चतुरिका चली गई। अगले दिन नित्यकर्मों से निवृत्त होकर मैं मलयसुन्दरी के पास बैठा ही था कि चतुरिका ने आकर धीमे से मुझे बताया कि आज प्रातःकाल में ही तिलकमञ्जरी यहाँ आएगी। कुछ समय पश्चात् तिलकमञ्जरी वहाँ आ गई और मुझे प्रेमपूर्वक देखती हुई मलयसुन्दरी के पास बैठ गयी। मलयसुन्दरी ने उससे मेरा परिचय कराया, तो स्नेह पूरित दृष्टि से देखते हुए उसने मुझे अपने हाथों से पान दिया। कुछ समय आयतन मण्डप में घूमकर तिलकमञ्जरी अपने आवास की ओर चल पड़ी। उसके कुछ दूर जाने पर ही उसकी द्वारपाली मन्दुरा ने तिलकमञ्जरी की ओर से मुझे व मलयसुन्दरी को रथनूपुरचक्रवाल नगर चलने का निमन्त्रण दिया। मुनिजनोचित परिचर्या धारण करने के कारण मलयसुन्दरी ने वहाँ जाने के लिए मना कर दिया। परन्तु तिलकमञ्जरी की प्रिय सखी मृगाङ्कलेखा ने उसको प्रेमपूर्वक हाथ से खींचते हुए विमान में लाकर बिठा दिया। तदनन्तर हम सब विमान में आरूढ़ होकर नगर की शोभा देखते हुए विद्याधराधिपति की राजधानी रथनूपुरचक्रवाल नगर पहुँचे।

वहाँ मैंने तिलकमञ्जरी के भवन में भोज का आनन्द लिया। भोजन के उपरान्त विस्मित प्रतिहारी मन्दुरा ने आकर बताया कि लौहित्य तटवर्ती शिविर से आया हुआ एक शुक आपसे मिला चाहता है। मैंने तुरन्त उसे अन्दर बुला लिया और उस पर स्नेह की वर्षा करते हुए उसे अपने उत्संग में बिठा लिया। उसी समय तिलकमञ्जरी की कुन्तला नामक शयनपाली ने आकर कहा कि आपने मृगाङ्कलेखा से कहा था कि मैं पुरवासियों से अनुपलक्षित होकर नगर देखना चाहता हूँ। इसलिए देवी तिलकमञ्जरी ने निशीथ नामक यह दिव्य वस्त्र आपके लिए भिजवाया है। इसे धारण करने वाले को कोई नहीं देख सकता और इसके स्पर्श मात्र से ही दीर्घ शाप तक नष्ट हो जाते हैं। यह कहकर उसने वह वस्त्र मुझे ओढ़ा दिया। उसको धारण करते ही मेरे उत्संग से गन्धर्वक निकला और उसने मुझे प्रणाम किया। गन्धर्वक के समाचार को सुनते ही मलयसुन्दरी और तिलकमञ्जरी भी वहीं आ गई। गन्धर्वक ने उनको भी प्रणाम किया। मेरे पूछने पर गन्धर्वक ने दु:खी होते हुए अपना पूर्व वृत्तान्त कहना आरम्भ किया –

गन्धर्वक का वृत्तान्त

अयोध्या से निकलकर मैं सायंकाल में त्रिकूट पर्वत पर स्थित विद्याधर राजधानी पहुँचा। प्रात:काल मैंने सम्राट् विचित्रवीर्य को देवी पत्रलेखा का सन्देश दिया और उनके द्वारा प्रार्थित हरिचन्दन विमान को प्राप्त करके देवी गन्धर्वदत्ता के दर्शनों की इच्छा से काञ्ची की ओर चला। मार्ग में मैंने मलयपर्वत के किनारे की ओर, प्रशान्त वैराश्रम के समीप किसी स्त्री का करुण आक्रन्दन सुना। आकाश से उतर कर मैंने मूर्छित युवती के पास विलाप करती हुई एक स्त्री को देखा। पूछने पर उसने बताया कि यह राजा कुसुमशेखर की पुत्री मलयसुन्दरी है। शत्रु विग्रह (युद्ध) के कारण इसके पिता ने कुछ सोचकर इसे मेरे साथ आश्रम में रहने के लिए भेज दिया। आज ये इधर–उधर घूमते हुए यहाँ आ गई। इसको ढूंढते हुए मैंने यहाँ आकर इसे मूर्छित पाया। यह सुनकर मैंने मलयसुन्दरी की निरीक्षण कर उसकी मूर्च्छा का हेतु विष विकार पाया। मैंने विमान के मध्य में नलिनीदल के मृणालों की शय्या रचकर मलयसुन्दरी को उस पर लिटा दिया और अपने सहचर चित्रमाय से कहा कि मैं विषोपशमन औषधि खोजने जा रहा हूँ। आप इस दु:खी स्त्री को सान्त्वना देने के लिए एक दिन रुक जाओ। अगर मुझे आने में विलम्ब हो जाए तो आप किसी भी रूप में जाकर आदरपूर्वक कुमार हरिवाहन को रथनूपुरचक्रवाल नगर ले आना। यह कहकर मैं शीघ्रता से विमान द्वारा वैताढ्य पर्वत की रत्नराल नामक अटवी की ओर चल पड़ा। मार्ग में एकश्रृंग पर्वत के

शिखर पर एक अत्युग्र व तेजस्वी यक्ष ने विमान की गति को स्तम्भित कर दिया। बार-बार विनयपूर्वक प्रार्थना किए जाने पर भी जब वह मेरे मार्ग से नहीं हटा तो मैंने उसे अपशब्द कहे, जिससे वह रुष्ट होकर बोला – "रे दुरात्मन्! मैं प्रभुजन (लक्ष्मी) द्वारा नियुक्त मन्दिर में निवास करने वाला महोदर नामक यक्षसेनाधिपति हूँ। तुम मेरा स्वरूप नहीं जानते। मैंने ही आत्महत्या करने के लिए समुद्र में गिरी इस कन्या (मलयसुन्दरी) और समरकेतु को बचाया था और तुम मुझे क्रूर हृदय कह रहे हो। इतना विस्तृत आकाश मार्ग होने पर भी तुम उसे छोड़कर आदि देवता के मन्दिर के शिखाग्र भाग में निबद्ध उत्तम पताका के ऊपर से यान में बैठकर जाना चाहते हो। इसके दण्डस्वरूप तुम अब अपने पूर्व जन्म के रूप में प्राप्त करोगे और बिना हमारी स्वामिनी के कृपा की पुनः इस रूप में नहीं आओगे।" यह कहकर उसने विमान को अदृष्टपार सरोवर में फैंक दिया। क्षण-भर में ही मैं शुक बन गया। मैं ही शुक के रूप में आपका पत्र सेनापति कमलगुप्त के पास लेकर गया था और वहाँ से पत्रोत्तर लेकर आया था। यहाँ आने पर आपने प्रेमपूर्वक मुझे अपने अङ्क में बिठा लिया।

(गन्धर्वक का वृत्तान्त समाप्त)

गन्धर्वक का वृत्तान्त सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गए। मैंने गन्धर्वक से पत्र लेकर पढ़ा। उसमें कमलगुप्त ने अपनी कुशलता का समाचार दिया था और शङ्का व्यक्त की थी कि आपके वियोग में युवराज समरकेतु न जाने क्या कर लें।

यह सुनकर मलयसुन्दरी दुःखी हो गई। मैं भी तुम्हारे लिए चिन्तित होकर चित्रमाय को साथ लेकर विमान से शिविर की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर मैंने तुम्हारे विषय में पूछा तो ज्ञात हुआ कि तुम मेरी कुशलता के समाचार को पाने के बाद से ही कहीं चले गए हो। यह सुनकर मैं सेना सहित तुम्हारी खोज में चल पड़ा और मलयसुन्दरी को सान्त्वना देने के लिए चित्रमाय को वापस भेज दिया। इसके पश्चात् मैं लगातार तुम्हें खोजता रहा।

एक दिन मैंने गन्धर्वक को अपनी ओर आते हुए देखा। मैंने जब उससे मलयसुन्दरी और तिलकमञ्जरी के विषय में पूछा तो वह बोला- "कुमार! आज प्रातः चित्रमाय ने आकर बताया कि मित्र समरकेतु के स्नेह के कारण उन्हें ढूंढने के लिए कुमार हरिवाहन भी उसी वन में प्रवेश कर गए जिस वन में कुमार समरकेतु गए थे। यह सुनकर मलयसुन्दरी विलाप करने लगी। तिलकमञ्जरी ने

उसे सान्त्वना दी और समरकेतु की खोज में विद्याधरों को नियुक्त कर दिया और मुझे आदेश दिया कि आपको लेकर मैं आश्रम में आ जाऊँ।'' यह सुनकर मैं अनुचरों के साथ मलयसुन्दरी के दिव्य आश्रम में आ गया।

एक दिन सांयकाल में शङ्खपाणि नामक कोषाध्यक्ष ने आकर पिताजी के द्वारा भिजवाए हुए चन्द्रातप हार और अंगुलीयक मुझे दिए। मुझे वे परिचित से लगे। मैंने गन्धर्वक के हाथों वह हार तिलकमञ्जरी के लिए और अंगुलीयक मलयसुन्दरी के लिए भिजवा दिया। अगले दिन अस्वस्थ चित्त सी मलयसुन्दरी की परिचारिका चतुरिका मेरे पास आई और मुझे तिलकमञ्जरी का पत्र दिया। उसमें लिखा था - इस मुक्ताहार के कण्ठालिङ्गन ने मेरा आपसे मिलन असम्भव कर दिया है। तथापि जब तक जीवित हूँ तब तक मैं विस्मृत करने योग्य नहीं हूँ।[8]

मैं उसके इस वियोग को सहन नहीं कर पाया और आत्महत्या करने के लिए विजयार्ध पर्वत के शिखर पर चढ़ गया। वहाँ मैंने पन्द्रह वर्षीय राजपुत्री को एक राजकुमार को मनाने के लिए बार-बार उसके चरणों में गिरते देखा। मेरे पूछने पर उसने बताया कि यह चण्डगह्वर की संहार नामक सर्वकामिक चट्टान-शिखर है। मैं अनङ्गरति नामक विद्याधर कुमार हूँ। बाल्यावस्था में ही दुष्ट बन्धुओं ने आकर मेरी सम्पत्ति आदि को हड़प लिया। इसलिए मैं दुखी होकर इस शिखर से गिरकर मरना चाहता हूँ, परन्तु यह मुझे रोक रही है। यह सुनकर मैंने उस कुमार को कहा कि यदि भोग की इच्छा है तो मेरा राज्य ले लो। परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया और कहा- ''यदि आप मुझ पर अनुकम्पा करना चाहते हैं तो असाधारण पुरुष द्वारा साध्य, समस्त मन्त्रों में श्रेष्ठ इस मन्त्र की आराधना करके उसके प्रभाव से राज्य अर्जित करके मुझे दें।'' मैंने विधिवत् मन्त्र ग्रहण करके साधना आरम्भ की। छः मास बाद देवी ने दर्शन देकर वर माँगने के लिए कहा। मैंने देवी से अनङ्गरति के मनोरथ को पूर्ण करने का वर माँगा तब देवी ने कहा - ''अनङ्गरति के स्वार्थ में भी परार्थ ही प्रेरित है। विजयार्ध पर्वत के उत्तर शिखर श्रेणी में गगनवल्लभ नगर में विक्रमबाहु नामक चक्रवर्ती सम्राट् था, जिन्हे विषयों से विरक्ति हो गई थी। राज्य के उत्तराधिकारी के अनुरूप व्यक्ति को न पाकर, प्रधान सचिव शाक्यबुद्धि ने अपने पुत्र अनङ्गरति को बुलाकर सम्राट् बनने के सभी

8. आश्लिष्य कण्ठममुना मुक्ताहारेण हृदि निविष्टेन।
सरुषेव वारितो मे त्वदुरःपरिम्भणारम्भः।। ति. म., पृ. 396

गुणों से युक्त आपकों मन्त्र साधना के कार्य में प्रवृत्त कराने का आदेश दिया। अब तुम जाकर विद्याधरेन्द्रों के चक्रवर्तित्व को स्वीकार करो। यह कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गई। देवी के अन्तर्ध्यान होते ही दिव्य-भेरी बज उठी। उसे सुनकर सभी दिशाओं से विद्याधरेन्द्र आ गए और मुझे विमान में बैठा कर विजयार्ध पर्वत के शिखर पर ले गए और मेरा राज्याभिषेक कर दिया। उसी समय प्रधान द्वारपाल गन्धर्वक को लेकर आया। उसने मुझे विद्याधर सम्राट् के पद पर देखकर आश्चर्यचकित होकर मुझे प्रणाम किया। मैंने उससे तिलकमञ्जरी के विषय में पूछा तो वह बोला-हे देव! मैंने आपके द्वारा भिजवाए हुए आभूषण दोनों देवियों को दे दिये थे। दिव्य अंगुलीयक को धारण करते ही मलयसुन्दरी को मानों अपने पूर्वजन्म की याद आ गई और उनकी आँखों से अश्रुपात होने लगा। हार को धारण करने पर तिलकमञ्जरी की मुख कान्ति भी मलिन हो गई और गद्गद स्वर में मुझसे पूछा कि कुमार को यह हार कैसे प्राप्त हुआ। मैंने हार प्राप्ति का वृत्तान्त सुनाया तो वह मूर्छित हो गई।

अगले दिन तिलकमञ्जरी मलयसुन्दरी को साथ लेकर तीर्थयात्रा के व्यपदेश से घर से निकल पड़ी। भिन्न-भिन्न स्थानों के आयतनों में जाकर पूजादि करते हुए, घूमते हुए उन्होंने एक सिद्धायतन में एक महर्षि को देखा। महर्षि के दर्शनों से शान्तचित्त होकर, उन्हें नमस्कार करके वे उनके पास बैठ गई। सर्वद्रष्टा महर्षि ने उनकी मनः स्थिति को जान लिया और उनकी शंङ्काओं का समाधान करने के लिए कहना प्रारम्भ किया -

सौधर्म नामक लोक में ज्वलनप्रभ नामक वैमानिक रहता था। बहुत वर्षों बाद अपनी दिव्य आयु को कम जानकर, अपने अगले जन्म को सुधारने व बोधि लाभ के लिए वह स्वर्ग से निकल गया। उसके जाने पर उसके विरह से विकल उसकी प्रिय पत्नी प्रियङ्गुसुन्दरी उसे ढूढ़ते हुए जम्बु द्वीप गई। वहाँ पर उसे ज्ञात हुआ कि उसके पति का मित्र सुमाली भी अपनी प्रिय पत्नी प्रियंवदा को छोड़कर कहीं चला गया है। तब प्रियङ्गुसुन्दरी अपनी सखी प्रियंवदा को साथ लेकर मेरूपर्वत के पुष्करावती नाम तीर्थ गई। वहाँ प्रियङ्गुसुन्दरी ने जयन्तस्वामी नामक महात्मा से पूछा कि - हे भगवन्! हमारा अपने पतियों से मिलन कब होगा?उन्होनें बताया कि एकशृंग नामक पर्वत पर तुम्हारा अपने प्रिय से मिलन होगा और प्रियंवदा का सुमाली से मिलन रत्नकूट पर्वत पर होगा । आपको मिलाने में दिव्य आभूषण निमित्त बनेंगे। यह सुनकर प्रियङ्गुसुन्दरी एकशृंग पर्वत और प्रियंवदा रत्नकूट पर्वत

पर चली गई। वहाँ उन्होंने जिनायतन का निर्माण किया और पति के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी।

एक दिन अदृष्टपार सरोवर के तट पर बैठे हुए प्रियङ्गुसुन्दरी ने देवी लक्ष्मी को दक्षिण दिशा से आते हुए देखा। देवी लक्ष्मी ने उसे बताया कि मैं आज प्रातः ही तुम्हारी सखी प्रियंवदा से मिली थी। उसने तुम्हारे लिए सन्देश दिया है कि बहुत समय प्रतीक्षा करने पर भी प्रिय से समागम नहीं हुआ। अब मेरी आयु समाप्तप्रायः है। मेरे पश्चात् मन्दिर की रक्षा करना। प्रियंवदा के आयतन की रक्षा कौन करेगा तथा मेरी मृत्यु के पश्चात् इस मन्दिर की रक्षा कौन करेगा। प्रियङ्गुसुन्दरी के इस चिन्ता से दुःखी होने पर लक्ष्मी ने अपने महोदर नामक सेवक को बुलाकर मन्दिरों का दायित्व उसे सौंप दिया और विदा लेकर चली गई।

जन्मान्तर में वहीं प्रियङ्गुसुन्दरी तिलकमञ्जरी के रूप में विद्यारेन्द्र चक्रसेन की पुत्री बनी। अतिशय सौन्दर्य और गुणों से युक्त होने पर भी पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण, अन्य पुरुषों में प्रीति नहीं रखती। यह वृत्तान्त सुनकर पार्श्ववर्ती सुरासुर व नभश्चर आश्चर्यचकित हो गए। ज्वलनप्रभ के विषय में पूछने पर महर्षि ने बताया कि ज्वनलप्रभ भी स्वर्ग से निकलकर राजा मेघवाहन को प्रियङ्गुसुन्दरी का चन्द्रातप नामक हार देकर नन्दीश्वर द्वीप गया। वहाँ उसने भोगों में आसक्त अपने मित्र सुमाली को जिनमतानुसार जीव, आत्मा व परमात्मा आदि के प्रभेदों का ज्ञान देकर धर्म के कार्यों में प्रवृत्त किया। दिव्य आयु समाप्त होने पर उसने अयोध्या नरेश सम्राट् मेघवाहन के घर में जन्म लिया। सुमाली ने भी दिव्य आयु समाप्त होने पर सिंहलेन्द्र चन्द्रकेतु के घर जन्म लिया। इस जन्म में उसका नाम समरकेतु है।

इस सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर मलयसुन्दरी ने तिलकमञ्जरी से पूछा कि अब क्या करना है?तिलकमञ्जरी ने कहा – हे सखि! मैं भी नहीं जानती, क्या कहूँ। मेरा मन व्याकुल हो रहा है और अशुभ सूचक दायी आँख भी फड़क रही है। न जाने क्या होने वाला है। तभी चित्रमाय ने आकर सूचना दी कि एकशृंग पर्वत पर गए हुए हरिवाहन नहीं मिले। मैं उन्हें ढूढ़ने के लिए विद्याधरों को लगाकर यहाँ आया हूँ। यह सुनकर तिलकमञ्जरी का मुख मलीन हो गया। तिलकमञ्जरी को सान्त्वना देते हुए मलयसुन्दरी उसे विमान में साथ लेकर आपको खोजने चल पड़ी। दिन भर खोजने के पश्चात् निराश होकर आयतन में आ गयी। अगले दिन संदीपन नामक विद्याधर ने आकर सूचना दी कि लोगों से

ज्ञात हुआ है कि कुमार विजयार्घ पर्वत के सार्वकामिक प्रपात शिखर पर चढ़े थे, इसके पश्चात् क्या हुआ कुछ ज्ञात नहीं। यह सुनकर तिलकमञ्जरी अत्यधिक दुखी हो गई और जल समाधि का निश्चय कर अदृष्टपार सरोवर की ओर चली पड़ी। उसी समय महाप्रतिहारी ने आकर तिलकमञ्जरी को बताया कि आपके पिता ने कहा है अवितथों व शुभ निमित्तों से यह ज्ञात हुआ है कि कुमार हरिवाहन सकुशल हैं। अपने अथवा किसी अन्य के प्रयोजन से ही कही गए हैं। उन्हें खोजने के लिए छः मास का समय देकर विद्याधर भेज दिये गए है। अतः तब तक आप धैर्य धारण करें। यह सुनकर तिलकमञ्जरी ने किसी प्रकार समय बितायां आज छठे मास को समाप्त होने में एक दिन शेष है। निराश तिलकमञ्जरी के शरीर त्याग के निश्चय को देखकर दुःखी होकर मैं उससे पहले प्राण त्यागने का संकल्प करके इस सार्वकामिक प्रपात पर आया था। वहाँ चढ़ते ही विद्याधर मुझे पकड़कर आपके सामने ले आए।

गन्धर्वक का सारा वृत्तान्त सुनकर मुझे पूर्व जन्म में अनुभूत स्वर्ग निवास के सभी सुख याद आ गए और कुछ क्षणों के लिए मोह में पड़ गया। तुरन्त ही तिलकमञ्जरी के मरण वार्त्ता को स्मरण कर मैं अभिषेक पीठ से उठ गया और समीपवर्ती विद्याधर कुमारों के साथ शीघ्रता से एकशृंग पर्वत के जिनायतन में गया। वहाँ पर मुझे देखकर आनन्दित मलयसुन्दरी को अपनी वार्ता सुनाने के लिए गन्धर्वक को उसके पास छोड़कर मैं तिलकमञ्जरी के पास गया और विरहाग्नि से सन्तप्त तिलकमञ्जरी का सन्ताप दूर किया। उसके पश्चात् मैं उसके साथ बैठा ही था कि तुम गन्धर्वक के साथ आ गए।

(यहाँ हरिवाहन द्वारा वर्णित वृत्तान्त समाप्त होता है)

इस वृत्तान्त को सुनकर समरकेतु को छोड़कर पाश्वर्ती सभी नभश्चर आनन्दित हुए। समरकेतु अपने पूर्वजन्म को याद कर शोक से व्याकुल हो गया। हरिवाहन उसे सान्त्वना देने लगा। उसी समय विद्याधर सम्राट् विचित्रवीर्य के कल्याणक नामक सेवक ने आकर हरिवाहन को एक पत्र दिया। उसमें लिखा था कि मलयसुन्दरी का विवाह आपके भ्राता समरकेतु के साथ निश्चित किया गया है। मित्रों आदि को निमन्त्रित किया जा चुका है तथा विवाह सम्बन्धी अन्य सभी कार्यों को कर लिया गया है। अतः आप समरकेतु को शीघ्रता पूर्वक सुवेल पर्वत भेज दें। हरिवाहन ने आश्चर्यचकित होकर कल्याणक से पूछा कि अन्य द्वीपा वासी विचित्रवीर्य को समरकेतु के आगमन का ज्ञान कैसे हुआ। कल्याणक ने

उत्तर दिया कि कल अभिषेक के लिए जिनायतन से आपके राजधानी की ओर प्रस्थान करने पर जब देवी तिलकमञ्जरी अपने भवन में चली गई, तब उनकी सहचरी मृगाङ्कलेखा ने राजमहिषी पत्रलेखा के पास जाकर आपके और समरकेतु के आगमन का समाचार सुना दिया। यह सुनकर पास में बैठी देवी लक्ष्मी ने चित्रलेखा को कहा कि शीघ्रता से मलयसुन्दरी को एकशृंग पर्वत से ले आओ। चित्रलेखा ने वैसा ही किया और इस विषय में विचित्रवीर्य को भी सूचित कर दिया। यह सुनकर हरिवाहन ने समरकेतु को विद्याधरों के साथ सुवेल पर्वत की ओर भेज दिया। एक बार हरिवाहन चक्रसेन से मिलने गए और उनके अनुरोध करने पर वे कुछ दिन वहीं रुक गए। तदनन्तर शुभ दिन व मुहूर्त देखकर चक्रसेन ने तिलकमञ्जरी का विवाह हरिवाहन से कर दिया। कुछ दिन वहाँ ठहरकर हरिवाहन तिलकमञ्जरी के साथ अपनी राजधानी वापस आ गए।

कुछ दिनों के पश्चात् हरिवाहन ने समरकेतु को बुलाकर अपना आधा राज्य उसे सौंप दिया। राजा मेघवाहन ने भी समरकेतु, कमलगुप्त व सभी राजाओं को बुलाकर शुभ दिन में हरिवाहन को सारा राज्य सौंप दिया और परलोक साधनोन्मुख हो गया। हरिवाहन भी एक छत्र शासन करते हुए जीवनानन्द का उपभोग करने लगे।

तिलकमञ्जरी के टीकाकार

तिलकमञ्जरी अपने समय में ही सहृदयों के मध्य लोकप्रिय हो गई थी। इसी से प्रभावित होकर अनेक विद्वानों ने इस पर टीकाओं की रचना की। अद्यावधि तिलकमञ्जरी पर चार टीकाएँ प्रकाश में आई हैं - (क) शान्तिसूरि विरचित टिप्पनक, (ख) विजयलावण्यसूरि द्वारा रचित पराग टीका, (ग) पण्यास पद्मसागर द्वारा रचित वृत्ति तथा (घ) अज्ञात आचार्य विरचित ताड़पत्रीय टिप्पणी।[9]

(क) **शान्तिसूरि :** श्री शान्तिसूरि का समय 12वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। जैन शासन काल में अनेक शान्तिसूरि हुए हैं। परन्तु जिन शान्तिसूरि आचार्य ने तिलकमञ्जरी पर टिप्पनक रचना की, वे पूर्णतल्लगच्छ से सम्बन्धित थे।[10] शान्तिसूरि,श्री वर्धमान सूरि के शिष्य थे। आचार्य शान्तिसूरि ने तिलकमञ्जरी पर

9. तिलकमञ्जरी, (सं) एन. एम. कन्सारा, भूमिका, पृ. 25
10. (क) तिलकमञ्जरी, विजयलावण्यसूरीश्वरज्ञानमन्दिर, बोटाद, भाग-1, भूमिका, पृ. 17
(ख) वही, पृ. 29

1050 श्लोक टिप्पनक रूप वृत्ति की रचना की। यह टिप्पणक तिलकमञ्जरी के पाठकों को कठिन शब्दों का अर्थ समझने में सहायता करता है। शान्तिसूरि ने चन्द्रदूत काव्य, मेघाभ्युदयकाव्य, वृन्दावनयमकम्, राक्षसमहाकाव्य और घटखर्परकाव्य नामक पाँच यमक काव्यों पर भी वृत्ति की रचना की है।[11]

(ख) **विजयलावण्यसूरि :** विजयलावण्यसूरि का समय 19वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। श्री विजयलावण्यसूरि का जन्म वि. सं. 1953 (सन् 1897) में सौराष्ट्र के एक ग्राम बोटाद में हुआ। इनके पिता का नाम जीवन लाल व माता का नाम अमृत था। इन्होंने अठारह वर्ष की आयु में श्री विजयनेमिसूरि से दीक्षा प्राप्त कर मुनि 'श्री लावण्यविजय' के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त किया। इन्होंने तिलकमञ्जरी पर 'पराग' नामक विस्तृत टीका लिखी है। यह टीका तिलकमञ्जरी को हर प्रकार से समझने में अत्यधिक सहायक है, परन्तु यह टीका तीन भागों में अपूर्ण रूप से प्रकाशित है।[12] इस टीका में श्री विजयलावण्यसूरि ने लगभग सभी शब्दों पर टीका की है।

विजयलावण्यसूरि एक उच्च कोटि के विद्वान् थे। उन्होंने न केवल तिलकमञ्जरी पर समृद्ध टीका की रचना की, अपितु आचार्य हेमचन्द्र द्वारा सूचीकृत सभी 1974 धातुओं की सभी कालों तथा भावों में विस्तृत व्याख्या की हैं।[13] पराग टीका के अतिरिक्त उनकी नौ और रचनाएँ हैं[14] –

1. धातुरत्नाकर, 4,50,000 श्लोकों से युक्त यह सात भागों में हैं तथा इसमें समस्त धातुओं के प्रक्रिया सम्बन्धि रूपों का विवेचन किया गया है।
2. हेमचन्द्रसूरि के शब्दानुशासन की स्वोपज्ञ वृहत्–न्यास की अशुद्धि संशोधन की 20,000 श्लोकों में विस्तृत व्याख्या।
3. तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पर 4,000 श्लोकों से युक्त त्रिसूत्रिप्रकाशिका विवृत्ति।
4. यशोविजयगणि के 'नयरहस्य' नामक ग्रन्थ पर 3,000 श्लोक प्रमित

---

11. ति.म., भाग–1, भूमिका, पृ. 19
12. तिलकमञ्जरी, विजयलावण्यसूरीश्वरज्ञानमन्दिर, बोटाद, सौराष्ट्र, भाग–1, 2, 3, वि. सं. 2008, 2010, 2014
13. तिलकमञ्जरी, (सं) एन. एम. कन्सारा, भूमिका, पृ. 29
14. तिलकमञ्जरी, विजयलावण्यसूरीश्वरज्ञानमन्दिर, भाग–1, भूमिका, पृ. 21–22

'प्रमोद' विवृत्ति।

5. सप्तभङ्गी–नयप्रदीपप्रकरण पर 2,000 श्लोकात्मिका बालावबोधिनी वृत्ति।
6. जैनतर्कपरिभाषा पर 14,000 श्लोकात्मिका 'तत्त्वबोधिनी' विवृत्ति।
7. नयामृततरङ्गिणी ग्रन्थ पर 'नयोपदेश' नामक टीका।
8. श्री हरिभद्रसूरि कृत शास्त्रवार्त्तासमुच्चय ग्रन्थ पर 25,000 श्लोक प्रमित विवृत्ति।
9. हेमचन्द्राचार्य के 'काव्यानुशासन' पर 30,000 श्लोकात्मिका वृत्ति।

उनके इन सभी कार्यों से ज्ञात होता है, कि श्री विजयलावण्यसूरि न्यायशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, साहित्यशास्त्र, और ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे।

(ग) **पण्यास पद्मसागर**[15] : पद्मसागर का समय 16 वीं. शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। ये धर्मसागरगणि के शिष्य थे। पण्यास पद्मसागर ने तिलकमञ्जरी पर वृत्ति की रचना की। श्री विजयसेनसूरि ने उन्हें इस पर कार्य करने के लिए प्रेरित किया। तिलकमञ्जरी पर वृत्ति के अतिरिक्त उनके अन्य कार्य इस प्रकार से हैं –

1. न्याय प्रकाश टीका
2. शील प्रकाश
3. धर्म परीक्षा
4. जगद् गुरु काव्य
5. उत्तराध्यन कथा संग्रह
6. युक्ति प्रकाश टीका सहित
7. प्रमाण प्रकाश वृत्ति सहित
8. यशोधरा चरित
9. स्थूलिभद्र चरित

---

15. तिलकमञ्जरी, (सं) एन. एम. कन्सारा, भूमिका, पृ. 27-28

(घ) **ताड़ पत्रीय टिप्पणी :** इस ताड़पत्रीय टिप्पणी का लेखक अभी तक अज्ञात है। यह ताड़पत्रीय टिप्पणी शोधार्थियों व अन्य पाठकों को तिलकमञ्जरी के कठिन स्थलों को समझने में सहायता करती है। तिलकमञ्जरी के भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के संस्करण में संपादक एन. एम. कन्सारा ने इस ताड़पत्रीय टिप्पणी को प्रकाशित किया है।[16]

इस प्रकार तिलकमञ्जरी पर ये चार टीकाएँ प्राप्त होती हैं। इनमें से पराग टीका तिलकमञ्जरी के लगभग प्रत्येक पद की व्याख्या करती है और इसी कारण वह प्रत्येक पाठक के लिए अत्यधिक उपयोगी भी है। परन्तु खेद की बात यह है कि यह टीका अपूर्ण रूप से प्रकाशित हैं। अन्य टीकाएँ भी तिलकमञ्जरी के कठिन स्थलों की व्याख्या कर शोधार्थी की सहायता करती हैं अतः ये भी उपयोगी टीकाएँ है।

16. वही, पृ. 255–347

चतुर्थ अध्याय

तिलकमञ्जरी के पात्रों का चारित्रिक सौन्दर्य

- पात्र
- दिव्य पात्र
- अदिव्य पात्र
- दिव्यादिव्य पात्र
- पुरुष पात्र
- स्त्री पात्र

पात्र

काव्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। इससे तत्कालीन समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक व नैतिक मूल्यों का ज्ञान होता है। कवि पात्रों के आचार, व्यवहार, विचारों आदि के माध्यम से ही समाज के विभिन्न वर्गों की विशेषताओं को प्रतिबिम्बित करता है। इसलिए काव्य की सभी विधाओं में पात्रों को महत्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है। किसी काव्य रचना की सफलता उसके पात्रों के सफल चित्रण पर आश्रित होती है। पात्रों का अवलम्बन करके ही कथावस्तु पल्लवित व पुष्पित होती है। इसलिए पात्रों को कथानक का मेरूदण्ड भी कहा जाता है। कवि पात्रों के माध्यम से उस युग के जीवन व समाज का जीवन्त चित्रण करता है। विभिन्न पात्रों की विभिन्न प्रकार की वेशभूषा, क्रियाकलापों व वार्त्ता से उनकी वैयक्तिक व वर्ग विशेषगत विशेषताओं का ज्ञान होता है।

कवि अपने पात्रों का चुनाव बड़ी कुशलता से करता है। क्योंकि सफल कवि वही होता है, जिसके पात्र से पाठक का तादात्म्य स्थापित हो जाए और वह पात्र विशेष के सुख–दुख का स्वयं भी अनुभव करे।

धनपाल ने भी बड़ी कुशलता से तिलकमञ्जरी के पात्रों का चयन कर, उनकी चारित्रिक विशेषताओं को सफलता पूर्वक उभारा है। इन पात्रों में कुछ पात्र देवलोक से संबंध रखते है और कुछ भूलोक से। कुछ पात्रों में देवताओं और मानवों दोनों के गुण विद्यमान है। अतः इसी आधार पर दिव्य पात्रों, अदिव्यपात्रों तथा दिव्यादिव्य पात्रों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है।

दिव्य पात्र

कवि अपनी कल्पना के विषय में स्वतंत्र होता है। इसकी कल्पना पंख लगाकर इसे न केवल इस चराचर संसार में विचरण कराती है, अपितु इसे देवलोक में भ्रमण करवाकर देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, विद्याधरों आदि से भी परिचित कराती है। इस सन्दर्भ में एक उक्ति प्रसिद्ध है – **जहाँ न पहुंचे रवि, वहाँ पहुंचे कवि।**

धनपाल की कल्पना शक्ति भी उसे उड़ाकर विद्याधरों के पास ले गई। धनपाल ने तिलकमञ्जरी में अनेक विद्याधरों का वर्णन किया है। ये विद्याधर अनेक विद्याओं और दिव्य शक्तियों के स्वामी है। अलौकिक शक्तियों से युक्त होने के कारण इन्हें दिव्य पात्र कहा जाता है। ये दिव्यपात्र है – विद्याधर

राजकुमारी तिलकमञ्जरी, विद्याधरराज विचित्रवीर्य, विद्याधर चक्रवर्ती सम्राट् चक्रसेन, पत्रलेखा, चित्रलेखा, मृगाङ्कलेखा, गन्धर्वदत्ता चित्रमाय, गन्धर्वक, अनङ्गरति, वैमानिक, ज्वलनप्रभ आदि।

इन पात्रों में से कुछ पात्रों की अलौकिक शक्तियों को प्रकट भी किया गया हैं। जैसे चित्रमाय रूप बदलने में कुशल है। यही उन्मत्त हाथी का रूप धारण करके हरिवाहन का अपहरण करता है।[1] दिव्य पुरुष ज्वलनप्रभ मेघवाहन को हार प्रदान कर तत्क्षण अदृश्य हो जाते हैं। सभी विद्याधर आकाश में विचरण करने की विद्या जानते है। महावीर जिन के अभिषेकोत्सव के लिए सभी विद्याधर आकाशमार्ग से आते है।[2]

अदिव्य पात्र

आदिव्य पात्र वे पात्र हैं, जिनका जन्म इस पृथ्वी पर हुआ है और जो मानवोचित गुणों तथा शक्तियों से युक्त हैं। मेघवाहन, हरिवाहन, मदिरावती, मलयसुन्दरी, बन्धुसुन्दरी, समरकेतु, कमलगुप्त, तारक, वज्रायुध, विजयवेग आदि आदिव्य पात्र है।

मेघवाहन जैसे सम्राट् समरकेतु व वज्रायुध जैसे योद्धा, जो अपने बाहुबल से सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय करने की सामर्थ्य रखते हैं। तारक जैसे वीर, जो समुद्र पर भी विजय पाने का साहस रखते है, उन्हें दिव्य शक्तियों से क्या प्रयोजन।

दिव्यादिव्य पात्र

जिस पात्र में दिव्य और मानवीय दोनों प्रकार के गुणों का समावेश हो, उसे दिव्यादिव्य पात्र कहा जाता है। हरिवाहन, समरकेतु तथा मलयसुन्दरी दिव्यादिव्य पात्रों की श्रेणी में आते है। हरिवाहन पूर्व जन्म में ज्वलनप्रभ नामक दिव्य वैमानिक था। समरकेतु और मलयसुन्दरी भी पूर्वजन्म में सुमाली और स्वयंप्रभा नामक देव विशेष थे। ये पूर्वजन्म में देवलोक वासी होने के कारण दिव्य गुणों से तथा वर्तमान जन्म में मर्त्यलोक में जन्म लेने के कारण मानवीय गुणों से युक्त हैं। दिव्य एवं मानवीय गुणों के संगम के कारण इन्हें दिव्यादिव्य पात्रों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

---

1. ति. म., पृ. 387
2. वही, पृ. 153

पात्रों के चारित्रगत सौन्दर्य की विवेचना के क्रम में सर्वप्रथम पुरुष पात्रों का वर्णन किया जा रहा है।

पुरुष पात्र

सभी कथा काव्यों का अंतिम परिणाम फल की प्राप्ति होता है। फल की प्राप्ति अधिकारी अर्थात् नायक को होती है।[3] कथा में नायक ही सम्पूर्ण क्रियाओं का केन्द्र होता है। हरिवाहन 'तिलकमञ्जरी' कथा का नायक है। अतः पुरुष पात्रों में सर्वप्रथम हरिवाहन का विवेचन युक्तियुक्त एवं तर्कसंगत है।

हरिवाहन :

कवियों ने सदैव अपने नायकों को सर्वगुणसम्पन्न प्रदर्शित किया है, जिससे उसे लोगों के समक्ष आदर्श रूप में प्रदर्शित किया जा सके। धनपाल ने भी हरिवाहन को उन सभी गुणों से युक्त किया है जो एक आदर्श नायक में होने चाहिए।[4] हरिवाहन धीरोदात्त कोटि का नायक है। यह मेघवाहन का इकलौता पुत्र हैं, जिसे उसने दीर्घ साधना के पश्चात् देवी लक्ष्मी से वर रूप में प्राप्त किया है। एक ओर यह देवी लक्ष्मी के वरदान से उत्पन्न हुआ है तथा दूसरी ओर यह पूर्व जन्म में ज्वनलप्रभ नामक दिव्य वैमानिक था अतः वर्तमान जन्म में इसमें सभी स्पृहणीय गुणों का वास होना स्वाभाविक ही है।

आकर्षक व्यक्तित्व : हरिवाहन एक आकर्षक व्यक्तित्व का स्वामी है। वह अत्यन्त सुन्दर व सजीला है। जो इसे एक बार देख ले तो उसे देखता ही रह जाता है। इसके शारीरिक सौष्ठव व सौन्दर्य के विषय में क्या कहा जाए ? तिलकमञ्जरी जिसे जन्म से ही पुरुषों से विद्वेष था वह भी इलाइची लता मण्डप में हरिवाहन को देखकर, अपना पुरुष विद्वेषी स्वभाव छोड़कर अपना हृदय उसे दे

3. अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः। द. रू., 1/12
4. नेता विनीतो मुधरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
   रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढ़वंश स्थिरो युवा ।।
   बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
   शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ।। वही, 2/1,2

बैठती हैं।[5] और काम से पीड़ित होकर हरिवाहन के पुनः दर्शन हेतु वह मलयसुन्दरी के आश्रम में आती है।[6] गन्धर्वक, जो राजकुमारी मलयसुन्दरी के पाणिग्रहण योग्य राजकुमार की खोज में लगा हुआ है, वह भी रूप, यौवन व गुणों से युक्त हरिवाहन को ही तिलकमञ्जरी के योग्य पाता है।

सभ्य और शिष्ट : हरिवाहन अत्यंत सभ्य और शिष्ट पुरुष है। जब वह प्रथम बार तिलकमञ्जरी से मिलता है, तो वह बहुत शिष्टता से अपना परिचय उसे देता है तथा उसके और उस देश के बारे में पूछता है।[7] निर्जन वन में मलयसुन्दरी से मुलाकात होने पर वह अत्यन्त शालीनता व सज्जनता से उसके वनवास के कारण पूछता है।[8] उस निर्जन वन में भी मलयसुन्दरी के सामीप्य से भी उसके मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता।

भ्रमणशील : राजकुमार हरिवाहन को घूमने फिरने का बहुत शौक है। इसे वनों, उपवनों व नदी के किनारों पर घूमना बहुत पंसद हैं। मनोरंजन के लिए समरकेतु व अन्य साथी राजकुमारों के साथ सरयू नदी के समीप स्थित मत्तकोकिल नामक मनोहारी उद्यान में समय व्यतीत करना इसे पसंद है। कामज्वर से पीड़ित होने पर भ्रमणशीलता ही इसके हृदय की पीड़ा को कुछ कम करती है। तिलकमञ्जरी के चित्र दर्शन मात्र से ही हरिवाहन के हृदय में काम प्रवेश कर जाता है। गन्धर्वक के वापस न आने से निराश हरिवाहन को जब कामोत्कंठा पीड़ित करती है, तो वह काम के वेग को कम करने के लिए भ्रमण का ही आश्रय लेता है और साम्राज्य निरीक्षण के बहाने से देशाटन के लिए निकल पड़ता है।

काव्यमर्मज्ञ : हरिवाहन एक उच्च कोटि का कवि भी है। हरिवाहन ने सोलह वर्ष की आयु में ही सभी विद्याओं और शास्त्रों को हृदयङ्गम कर लिया था। शास्त्राध्ययन से उसकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण हो गई है कि वह कविता के मर्म को

5. ति. म., पृ. 289-90
6. सलिलपरिवर्तितमुखी तत्क्षणमेव सा ..... तीक्ष्णतरङ्गमालामिव शृंगारजलधेः, धवलीकृतदिगन्तां ज्योत्स्नामिव लावण्यचन्द्रोदयस्य ...... मुकुलितां मदेन विस्तारितां विस्मयेन, प्रेरितामभिलाषेण, विषमितां व्रीडया, वृष्टिमिवामृतस्य, सृष्टिमिवासौख्यस्य, प्रकृष्टान्तःप्रीतिशंसिनीं वपुषि मे दृष्टिमसृजत्। वही;, पृ. 362
7. वही, पृ. 249
8. वही, पृ. 258

तत्क्षण हृदयङ्गम कर लेता है। काव्यमर्मज्ञता का बोध उस समय होता है, जब मत्तकोकिल उद्यान में मंजीर नामक वन्दिपुत्र आर्या छन्दोबद्ध[9] श्लोक सुनाकर उसका अर्थ करने को कहता है। राजकुमार हरिवाहन अपनी कुशाग्र बुद्धि से संदर्भ सहित उस आर्या का भावार्थ समझा देते है। इस पर सभी राजकुमार इसकी काव्य प्रतिभा की प्रशंसा करते है।

हरिवहन काव्य रचना भी उत्तम कोटि की है। एलालता-मण्डप में तिलकमञ्जरी को देखकर उसके सौन्दर्य की प्रशंसा में दो पद्यों में अनायास ही उसके भाव प्रकट हो जाते है। जो उसकी काव्य प्रतिभा को प्रदर्शित करते है। हरिवाहन को तिलकमञ्जरी कभी तो राहु के ग्रस लेने से गिरी हुई चन्द्रमा को शोभा के समान लगती है, कभी समुद्र मन्थन से घबराकर निकली हुई अमृत की देवी लगती है, और कभी शिव की नेत्राग्नि से जले हुए कामदेव रूपी वृक्ष से उत्पन्न हुई नवकंदली लगती है।[10]

तिलकमञ्जरी के अतिशय सौन्दर्य के लिए कितनी सुन्दर कल्पनाएँ की गई है। हरिवाहन, तिलकमञ्जरी की बड़ी-बड़ी आँखों को देखकर सोचता कि उसकी भोली-भाली आँखें सभी प्रकार के वृतान्तों को सुनने के कारण विद्वान् कानों के पास तक इसलिए चली गई है, मानों वे कानों से यह पूछना चाहती हैं कि तीनों लोकों में तिलकमञ्जरी से अधिक सुन्दर शरीर किसी अन्य युवती का हो सकता है?[11] तिलकमञ्जरी की बड़ी-बड़ी आँखों के लिए कितनी सुन्दर कल्पना की गई है। आँखों ने अब तक ऐसा रूप कहीं नहीं देखा है जैसा तिलकमञ्जरी का है, परन्तु हो सकता है कि कानों ने कभी किसी युवती के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी हो। इसी कारण यही पूछने के लिए आँखें कानों तक लंबी होती चली गई हैं।

इसी प्रकार जब वह अदृष्टपार सरोवर के समीप जिन मंदिर में मलयसुन्दरी

---

9. गुरुभिरदत्तां वोढुं वाञ्छन्मामक्रमात्त्वमचिरेण ।
स्थातासि पत्रपादपगहने तत्रान्तिकस्थाग्निः ।। ति. म., पृ. 109

10. ग्रहकवलनाद्भ्रष्टाः लक्ष्मीः किमृक्षपतेरियं ...सुभ्रूरियं नवकन्दली ।। वही, पृ. 248

11. जानीथ श्रुतशालीनौ युवामावां प्रकृत्युर्जुनी ... मृगदशः कर्णान्तिकं लोचने।। वही, पृ. 248

को देखता है, तो उसका कवि हृदय पुनः मुखरित हो उठता है और दो पद्यों में बहुत ही स्वाभाविक ढंग से उसके रूप की प्रशंसा करता है।[12]

एक अन्य स्थल पर जब कोई यह आर्या गाता है -

तवराजहंस ! हंसीदर्शनमुदितस्य विस्मृतो नूनम् ।
सरसिजवनप्रवेशः समयेऽपि विलम्बसे तेन ॥[13]

तब हरिवाहन तत्क्षण ही उसका अर्थ समझ लेता हैं कि हंस के व्याज से उसे ही विद्याधरों की राजधानी में प्रवेश के लिए प्रेरित किया जा रहा है।

वीणावादन कला व चित्रकला में निपुणता : वीणा के तारों से मधुर स्वर लहरियाँ निकालना हरिवाहन का शौक है। वह वीणा वादन में सिद्धहस्त है।[14] वह अपनी वीणा की मधुर स्वर तरंगों से न केवल साधारण मनुष्यों, अपितु जंगली जानवरों को भी अपने वश में करने की सामर्थ्य रखता है। उसने वैरियमदण्ड नामक हाथी जो किसी कारणवश उन्मत्त हो गया था और किसी भी महावत के वश में नहीं आ रहा था, को भी अपनी वीणा के मधुर स्वर प्रवाह से वशीभूत कर लिया था। वीणा के मधुर स्वरों से आनन्दित होकर उस हाथी ने अपना उग्र रूप त्याग दिया और आनन्दाश्रु बहाने लगा।[15]

हरिवाहन ने वीणावादन के समान ही चित्रकला में भी विशेष कुशलता प्राप्त की थी।[16] यह चित्रकला का सूक्ष्म अवलोकन कर उसके गुण और दोषों को बताने में भी निपुण था। गन्धर्वक के द्वारा बनया हुआ तिलकमञ्जरी का अति सुन्दर चित्र

12. दत्तं पत्रं कुवलयततेरायतं चक्षुरस्याः कुम्भावैभौ कुचपरिकरः पूर्वपक्षीकरोति । दन्तच्छेदच्छविमनुवदत्यच्छता गण्डभित्तेश्चान्द्रं बिम्बं द्युतिविलसितैर्दुषयत्यास्यलक्ष्मीः ॥ अस्या नेत्रयुगेन नीरजदलस्रग्दामदैर्ध्यद्रुहाचञ्चत्पार्वणचन्द्रमण्डलरुचा वक्त्रारविन्देन च। स्वामालोक्य दृशं रुचं च विजितां तुल्यं त्रपाबाधितैर्बद्धा निर्जनसंचरेषु कमलैर्मन्ये वनेषु स्थितिः ॥ ति. म., पृ. 255-56,
13. वही, पृ. 232
14. वही, पृ. 79
15. उच्चारचतारतममस्यास्तत्क्षणक्षोभितसकलजवनदेवतावृन्दमानन्दमुकुलितदृष्टिभिर्गलित-निजगीतस्मयैः .... अतिशयित सूरतप्रगल्भकेरलीकण्ठमणितं रणितम्। आगतं च तच्छ्रवणगोचरमाकर्णयन्नेकाग्रेण चेतसा स्वल्पमप्यकृतवारणः कर्णतालैः कपोलमद-परिमलाकृष्टानामलिगणानां स वारणः श्रान्त इव सुप्त इव कीलितश्चगलितचैतन्य इव क्षणमात्रमभवत्। वही. पृ. 186
16. विशेषतश्चित्रकर्माणि वीणावाद्ये च प्रवीणतां प्राप-वही, पृ. 79

देखकर उसने गन्धर्वक के चित्रकला कौशल की प्रशंसा करते हुए कहा कि हर प्रकार से उत्कृष्ट इस चित्र में तरुणी के साथ किसी पुरुष का चित्रण नहीं है, यही एक मात्र वैगुण्य है। यदि किसी पुरुष का चित्रण इसके साथ होता, तो इस चित्र की शोभा अत्यधिक बढ़ जाती।[17]

परम उदार : हरिवाहन स्वभाव से ही दयालु और परोपकारी है। यह न तो किसी को कष्ट दे सकता है और न ही किसी को कष्ट में देख सकता है। निरपराध पशुओं को मारना इसे पसन्द नहीं है। लौहित्य नदी के समीप के वनों में भ्रमण करते हुए वह विभिन्न प्रकार के जंगली जानवरों को देखता है। साथी राजकुमारों के द्वारा प्रेरित किये जाने पर भी यह किसी भी जानवर को नहीं मारता, अपितु वीणा की मधुर तान से जानवरों के बच्चों तक को भी अपने वश में कर लेता है।[18] परोपकार के लिए भी यह सदा आगे रहता है। किसी को भी कष्ट में देखकर यह इतना द्रवीभूत हो जाता है कि अपना सर्वस्व देकर भी उसका कष्ट दूर करने का प्रयास करता है। जब यह अनङ्गरति को दुःखी देखता है तो उस के लिए छः माह तक कठोर तपस्या करके देवी को प्रसन्न करता हैं और जब देवी उससे वर मांगने को कहती है तो वह अनङ्गरति के लिए ही वर मांगता है।[19]

सच्चा मित्र : इसके हृदय में अपने मित्रों के लिए अत्युच्च स्थान है। यह अपने मित्रों को अपने से अभिन्न मानता है। जब इसके पिता मेघवाहन समरकेतु को इसका सहचर बनाते है तो यह उसे अपने सहोदर के समान सम्मान व प्रेम देते है। मत्तकोकिल उद्यान में आर्या का अर्थोद्घाटन कर देने पर जब समरकेतु दुखी होता है तो यह बड़े प्रेम से उसकी व्याकुलता का कारण पूछता है।[20] अपने मित्रों के

---

17. यद्यदवलोक्यते तत्तत्सर्वमपि रूपमस्य चित्रपटस्य चारुताप्रकर्षहेतुः। एक एव दोषो यदत्र पुरुषरूपमेकमपि न प्रकाशितम्। अनेन च मनागसमग्रशोभोऽयम्। तदधुनाप्यस्य शोभातिशयमाधातुं प्रेक्षकजनस्य च कौतुकातिरेकमुत्पादयितुमात्मनश्च सर्ववस्तुविषयं चित्रकर्मकौशलमाविष्कर्तुं युज्यन्ते कतिचिदस्याः नरेन्द्रदुहितुः प्रकृतिसुन्दराणि पुरुषरूपाणि परिवारतां नेतुम्। ति. म., पृ. 166-167
18. जातकौतुकैश्च मृगयाव्यसनिभिः क्षितिपतिकुमारैः क्षपणाय तेषामनुक्षणं व्यापार्यत, न च प्रकृतिसानुक्रोशतया शस्त्रगोचरगतानपि ताञ्जधान। केवलं कुतूहलोत्पादनाय प्रधाननृपतीनामनवरततन्त्रीताडनाभ्यासलघुतरांगुलि- व्यापारेण सव्येतरपाणिना स्फुटतरास्फालिततरलवीणस्तद्ध्वनिश्रवणनिश्चलनिमीलितेक्षणानर्भकानामपि विधेयांश्चकार। वही, पृ. 183
19. वही, पृ. 398-400
20. वही, पृ. 113

लिए इसके हृदय में कितना प्रेम है, इसका ज्ञान उस समय होता है, जब उसे गन्धर्वक द्वारा लाए गए पत्र से यह ज्ञात होता है कि हाथी के द्वारा उसके अपहरण के बाद से समरकेतु उसके वियोग में अत्यधिक व्यथित है। यह पढ़ते ही वह अपनी प्रेयसी तिलकमञ्जरी का सानिध्य त्याग कर अपने मित्र समरकेतु को देखने के लिए तत्क्षण शिविर की ओर चल पड़ता है। शिविर पहुंचने पर जब यह ज्ञात होता है कि समरकेतु रात में ही उसे खोजने के लिए निकल गया है तो वह भी व्याकुल होकर समरकेतु को खोजने के लिए निकल पड़ता है।[21] जब छः माह पश्चात् इसे समरकेतु के मिलने की सूचना मिलती है तो वह तुरन्त ही हर्षातिरेक से आगे बढ़कर उसका गाढ़ आलिंगन करता है।[22]

आदर्श प्रेमी : धनपाल ने हरिवाहन को आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित किया है। तिलकमञ्जरी उसके पूर्वजन्म की प्रेमिका व पत्नी है। इस जन्म में भी वही प्रेम उसके मन में सुप्तावस्था में विद्यमान है। गन्धर्वक के द्वारा बनाये तिलकमञ्जरी के चित्र दर्शन मात्र से ही इसके हृदय में प्रेमाङ्कुर फूट पड़ता है। गन्धर्वक के जाने के बाद भी वह सदा उसी का चिन्तन करता है।[23] समय भी उसकी प्रेमाग्नि को मन्द नहीं करता। एलालता मण्डप में जब वह प्रथम बार तिलकमञ्जरी को देखता है, तो उसकी प्रेमाग्नि तीव्र हो उठती है। तिलकमञ्जरी के भावों से वह समझ जाता है कि उसके दर्शन से तिलकमञ्जरी के हृदय में भी काम प्रवेश पा गया है। जिससे वह अत्यधिक प्रसन्न हो उठता है। और उसे प्राप्त करने के लिए बेचैन हो जाता है। यह सच्चा प्रेमी है और स्वप्न में भी कभी किसी और कन्या का चिन्तन नहीं करता।

वह तिलकमञ्जरी से इतना प्रेम करता है, कि उसके वियोग की कल्पना भी नहीं कर सकता। जब तिलकमञ्जरी को अपना पूर्वजन्म याद आ जाता है और वह

21. ति. म., पृ. 383–388
22. (क) 'देव, दिष्ट्या वर्धसे। परागतो युवराजः समरकेतुः' इत्यावेदिते गन्धर्वकेण संभ्रान्तचेताः सहसैव हरिवाहनः परित्यज्यमानतया राजकन्यया सहप्रवृतां कथां 'कथय, कथय क्व वर्तते क्व वर्तते' इति सगद्गदं गदन्नासनादुत्तस्थौ। ... सरभसप्रसारितबाहुयुगलः प्रवेशयन्निव हृदयमेकतां नयन्निव शरीरेण निर्दयाश्लेषनिःपिष्टक्षः स्थलपुलक जालमानिलिङ्ग। वही, पृ. 230–231
(ख) आचारः कुलामाख्याति, देशमाख्याति भाषणम् ।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति, वपुराख्याति भोजनम् ।। चाणक्य नीति (शीघ्रता या घबराहट स्नेह का परिचय देती है।)
23. ति. म., पृ. 175–79

इसके विवाह प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देती है, तो यह आत्मघात करने चल पड़ता है।[24]

आज्ञाकारी पुत्र : हरिवाहन शिष्ट और आज्ञाकारी पुत्र है। वह अपने माता-पिता को सर्वोपरि मानता है। जब मेघवाहन समरकेतु के गुणों पर प्रसन्न होकर उसे हरिवाहन का सदा साथ रहने वाला मित्र (सहचर) बना देते हैं तो हरिवाहन भी उसे परम मित्र का ही सम्मान देता है। साम्राज्य निरीक्षण के बहाने घूमने जाने के लिए भी हरिवाहन अपने पिता से आज्ञा प्राप्त करता है।

धार्मिक : यह ईश वन्दना में भी विश्वास करता है। इसी कारण जब अनंगरति उसे देवी के मन्त्र को साधने के लिए कहता है, तो यह पूर्ण श्रद्धा से छः माह तक तप करके देवी को प्रसन्न करता है। कठिन परिस्थितियों में भी वह निराश नहीं होता और भगवान को दोष नहीं देता। अदृष्टपार सरोवर के निकट जिनायतन में भी यह श्रद्धापूर्वक नमस्कार करता है।

धीर, गम्भीर और चिन्तनशील : यह अत्यधिक वीर और धैर्यवान है। यह एकाग्रचित रहता है। वरियमदण्ड नाम हस्ती जब इसे लेकर आकाश में उड़ जाता है तो वह परेशान नहीं होता, और इस आपत्ति से निकलने का उपाय सोचता है। अदृष्टपार सरोवर में डूबने पर भी वह धैर्य के दामन को नहीं छोड़ता और तैरकर किनारे पर आ जाता हैं। अपरिचित प्रदेश के विचरण करते हुए भी यह वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को ही निहारता है। यह इतना वीर है कि अपने मित्र समरकेतु की खोज में जंगलों में निकल जाता है और आकाश पाताल एक कर देता है। सभी शास्त्रों में पारङ्गत होने के कारण इसमें किसी भी परिस्थिति का विश्लेषण करने की अद्‌भुत क्षमता है। कठिन परिस्थितियों का यह गंभीरता से अनुशीलन करता है। अदृष्टपार सरोवर से बाहर आकर यह जिस प्रकार से इस जगत् की क्षण-भङ्गुरता के विषय में सोचता है, वह निश्चय ही विचारणीय है -

अहो! इस सांसारिक स्थिति की अतात्त्विकता, अहो! कर्म वैदग्ध्यों (परिपक्वों) की विचित्रता, अहो! धनसंपदाओं की क्षणभङ्गुरता। आज ही मैं सौन्दर्य और सम्पत्ति में इन्द्र के विमान को तिरस्कृत करने वाले अपने गृह में मित्रों सहित वीणावादनादि क्रीड़ा से उत्पन्न आनन्द का आस्वादन कर रहा था और आज ही मैं दुर्गम पर्वत के वन के मध्य सैकड़ों जंगली जानवरों से घिरा हुआ,

24. ति.म., पृ. 397

अन्य देश के यात्री के समान दुरवस्था को प्राप्त हुआ हूँ। अब न वह राज्य है, न वे राजा हैं, न हजारों मदान्ध गज समुहों से पूर्ण वह शिविर है, न वे छत्रचामर आदि राजाओं के आभूषण हैं, न वे कर्णप्रिय बन्दिजनों के स्तुति वचन है। सब कुछ स्वप्नकालिक दृश्यों (मिथक) के समान हो गया है। ...सम्पूर्ण संसार ऐसा ही है (अर्थात् दु:ख से परिपूर्ण है) आश्चर्य है कि इस जगत् की इस प्रकार की अवस्थाओं (दु:खसे युक्त) का अनुभव करते हुए भी जीवों को चित्त विरक्त नहीं होता, उनकी विषयासक्ति निवृत्त नहीं होती, विषय भोग की इच्छा नष्ट नही होती।[25]

इसकी चिंतनशीलता का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है। जब यह तिलकमञ्जरी के चित्र को देखकर उससे विवाह करने के लिए आतुर हो जाता है पर बाद में अपने चित्त को स्थिर करके सोचता है कि – कहाँ मैं अयोध्या नगरी में रहने वाला भूतलवासी और कहाँ देवो के निवास योग्य पर्वत पर स्थित रथनूपुरचक्रवाल नामक विद्याधर नगरी की राजकुमारी?दोनों में अत्यधिक अन्तर है। अपनी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए, मन को अपथ पर नहीं जाने देना चाहिए, इन्द्रियों को मुख्यतया नहीं देनी चाहिए।[26]

ये दोनों उदाहरण इसकी गहन चिन्तनशीलता के परिचायक हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हरिवाहन वीरता, धैर्य, सदाचार, आज्ञाकारिता, प्रेम, दया, परोपकारिता आदि स्पृहणीय गुणों का निवास स्थान है।

---

25. अहो विरसता संसारस्थितेः, अहोविचित्रता कर्मपरिणतीनाम्, अहो यदृच्छाकारितायामभिनिवेशो विधिः, अहो भङ्गुरस्वभावता विभवानाम्। ....स मदान्धगजघटासहस्रसंकुलः स्कन्धावारः, नते छत्रचामरादयो नरेन्द्रालंकाराः, न तानि श्रवणहारीणि चारणस्तुतिवचनानि। सर्वमेव स्वप्नविज्ञानोपमं संपन्नम्। .... सर्व एवायमेवंप्रकारः संसारः। इदं तु चित्रं यदीदृशमप्येनमवगच्छतामीदृशीमपि भावनामनित्यतां विभावयतामीदृशानपि दशाविशेषाननुभवतां न जातुचिज्जन्तूनां विरज्यते चित्तम्, न विशीर्यते विषयाभिलाषः, न भङ्गुरीभवति भोगवाञ्छा, ...। ति. म., पृ. 244
26. क्वाऽहं क्व सा ?क्व भूमिगोचरस्य निकेतनं साकेतनगरं क्व दिव्यसङ्गसमुचिताचलप्रस्थसंस्थं रथनूपुरचक्रवालम् ?अपि चविवेकिना विचारणीयं वस्तुतत्त्वम्, नोज्झितव्यो निजावष्टम्भः, स्तम्भनीयं मनः प्रसरदपथे, न देयमग्रणीत्वमिन्द्रियगणस्य। वही, पृ. 176

समरकेतु

यह सिंहल द्वीप के सम्राट् चन्द्रकेतु का पुत्र है। यह अत्यधिक वीर और पराक्रमी है। इसके शत्रु भी इसके पराक्रम का लोहा मानते हैं। इसका शारीरिक सौष्ठव और व्यक्तित्व इतना आकर्षक है कि मलयसुन्दरी इसे देखते ही काम के वशीभूत हो जाती है। पूर्वजन्म में यह देवलोक वासी था। इसका नाम सुमाली था और यह ज्वलनप्रभ (वर्तमान जन्म में हरिवाहन) का सच्चा सुहद् था। इस जन्म में भी परिस्थितियाँ इन्हें पुनः मित्र बना देती है। इस कथा में इसे पताका नायक का स्थान प्राप्त है क्योंकि इसका प्रसङ्ग प्रधान इतिवृत्त अर्थात् हरिवाहन के प्रसङ्ग के साथ दूर तक चलता है और अन्त में हरिवाहन को फल की प्राप्ति के साथ ही इसके प्रयोजन की सिद्धि भी हो जाती है।[27]

अद्वितीय योद्धा : समरकेतु पराक्रमी युवक है। इसने बाल्यवस्था में ही बाण, खड्ग, गदा, चक्र, माला आदि अस्त्रों को चलाने में प्रवीणता प्राप्त कर ली थी।[28] इसके इसी पराक्रम के कारण इसे तरुणावस्था में ही युवराज बना दिया गया था।[29] इसके पिता चंद्रकेतु सुवेल पर्वतवासी दुष्ट सामन्तों का दमन करने हेतु इसे दक्षिणापथ भेजते है। वहाँ यह बड़े पराक्रम दुष्ट सामंतों का दमन करता है। इसने अपने अतुलनीय शौर्य और पराक्रम से वज्रायुध जैसे वीर सेनापति को भी असहाय कर दिया था। यह धनुर्विद्या में भी सिद्धहस्त है। इसकी बाण-वर्षा से वज्रायुध जैसे धनुर्विद्या विशेषज्ञ के प्राण भी संकट में पड़ गए थे।[30] इसके रणकौशल और शौर्य को देखकर व्रजायुध का अभिमान नष्ट हो जाता है और वह भी समरकेतु के पराक्रम की उन्मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता है[31] तथा कौशल नरेश की सेना का अध्यक्ष पद स्वीकार करने की प्रार्थना करता है। यह यश को प्राणों से अधिक महत्त्व देता है। यह पराजय को सहन नहीं कर सकता। अंगुलियक के चमत्कार से

---

27. प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः ।
    सानुबन्धं पताकाख्य प्रकरी च प्रदेशभाक् ।। द. रू., 1/13
28. असिगदाचक्रकुन्तप्रासादिषु प्रहरणविशेषेषु कृतश्रमम् – ति. म., पृ. 114
29. महाबलतया बाल एवाधिगतयौवराज्याभिषेकः – वही, पृ. 95
30. वही, पृ. 89-91
31. वही, पृ. 97-98

उत्पन्न मूर्छा समाप्त होने पर जब वह स्वयं को शत्रुओं से घिरा पाता है, तो लज्जा व ग्लानि से पुनः मूर्छित हो जाता है।[32] इसके लिए पराजय मृत्यु से बढ़कर है। इसी कारण व्रजायुध भी इसकी वीरता का सम्मान करते हुए, इसके पराजय के विषाद को दूर करने के लिए कहता है कि मैं आपके पराक्रम से पराजित हो चुका हूँ। इस जगत् में कोई भी आपको पराजित नहीं कर सकता। आपकी पराजय का कारण मैं नहीं, अपितु दिव्य अंगुलीयक हैं जिसके प्रभाव से आप मूर्छित हो गए।[33] मैं समझता हूँ कि जिसके शौर्य के समक्ष शत्रु भी नतमस्तक हो जाए, उससे अधिक पराक्रमी कोई नहीं हो सकता।

आत्मविश्वासी : यह आत्मविश्वास से भरपूर तरुण है। इसे अपने कार्यों में सफलता का पूरा विश्वास है। पिता से दक्षिणापथ के दुष्ट सामंतों का दमन करने *की आज्ञा प्राप्त करने पर यह पूर्ण उत्साह और विश्वास के साथ दक्षिणापथ की* ओर कूच करता है। तथा शत्रुओं का दमन करता है।[34] यह व्रजायुध पर भी विजय प्राप्त करने के पूर्ण विश्वास के साथ इस प्रकार से आक्रमण करता है कि व्रजायुध का युद्ध-विजय-दर्प खण्डित हो जाता है। जब मदान्ध गज हरिवाहन का अपहरण कर लेता है, तो यह इसकी खोज में अकेला ही निकल पड़ता है और उसे खोजकर ही दम लेता है।

सच्चा सुहृत् : यह एक सच्चा सुहृत् है। जब सम्राट् मेघवाहन इसे हरिवाहन का परम विश्वसनीय सहचर बनाते है तो यह भी उसी क्षण से हरिवाहन को अपना परम मित्र मान लेता है और उससे सहोदर के समान व्यवहार करता है। हरिवाहन के वियोग में यह उसे खोजने के लिए आकाश पाताल एक कर देता है। छः माह तक दुर्गम वनों व पर्वतों पर अनेक कष्टों व शीतोष्णादि द्वन्द्वों को सहकर उसको खोजता है। इस बीच यह अपनी प्रेमिका मलयसुन्दरी को भी याद नहीं करता। निस्संदेह इसका यह मित्र प्रेम अनुपम है जो इसे विशिष्ट मित्रों की श्रेणी में भी उत्युच्च पद पर प्रतिष्ठित करता है।

---

32. अवलोक्य च पुरः परिवेष्टितरथमरातिलोकमात्मानं च तदवस्थमुपजातगुरुविषादो लज्जया पुनर्मोहान्धकारमविक्षत्। ति.म., पृ. 96
33. वही; , पृ. 97-98
34. वही; पृ. 133-134

आदर्श प्रेमी : यह एक आदर्श प्रेमी भी है। यह सागरान्तर द्वीप-विजय प्रसङ्ग में यात्रा करते हुए पञ्चशैल द्वीपवर्ती जिन मंदिर की दीवार पर खड़ी षोडश वर्षीय राजकुमारी मलयसुन्दरी को देखकर प्रेमासक्त हो जाता है और तारक के माध्यम से मलयसुन्दरी को अपना प्रणय निवेदन स्वीकार करने को कहता है।[35] यह मलयसुन्दरी के लिए इतना व्याकुल हो जाता है कि उसके अकस्मात् अदृश्य हो जाने पर अपने प्राणान्त के लिए समुद्र में कूद पड़ता है।[36] प्रिया से दूरी भी इसके प्रेम को कम नहीं करती। काञ्ची में कामदेव के मंदिर में पुनः भेंट होने पर यह जानकर इसका प्रेम द्विगुणित हो जाता है कि मलयसुन्दरी भी उसी कामबाण से पीड़ित है, जिसका स्वयं यह भी शिकार है।

जब इसे यह ज्ञात होता है कि युद्ध को रोकने के लिए तथा शत्रु से संधि करने के लिए मलयसुन्दरी का विवाह वज्रायुध से किया जाएगा से यह अपने प्रेम की रक्षा के लिए रात्रि मे ही वज्रायुध पर आक्रमण कर देता है।[37]

आज्ञाकारी पुत्र : यह अपने पिता का आज्ञाकारी पुत्र है। अपने पिता की आज्ञा का पालने करने के लिए यह अविनीत सामन्तों से युद्ध करने के लिए समुद्रीय द्वीपों की यात्रा करता है[38] और उन्हे विनय का पाठ पढ़ाता है। अपने पिता की आज्ञा मिलने पर यह युद्ध में काञ्ची नरेश की सहायता करने के लिए काञ्ची नगर जाता है[39] और अपने पराक्रम से वज्रायुध के दर्प को खण्डित कर देता है।

विनम्र और नीतिवान : यह अत्याधिक विनम्र और नीतिवान है। यह अपने गुरुजनों का आदर करता है और उन्हें विशेष सम्मान देता है। वज्रायुध जैसे पराक्रमी योद्धा के नतमस्तक हो जाने पर भी इसे अपनी शक्ति का अभिमान नहीं होता। मेघवाहन के दर्शन करने पर श्रद्धापूर्वक उनके चरणों में नमस्कार करता है।[40] यह मदिरावती को अपनी माता के समान आदर देता है।

---

35. ति.म., पृ. 281-286
36. वही, पृ. 291
37. वही, पृ. 86-90
38. वही, पृ. 114
39. सकलसागरान्तरालद्वीपविजिगीषया गतोऽपि दुरमतिसत्वरः पितुराज्ञया राज्ञेऽस्य कुसुमशेखरस्य साहायकं कर्तुमासन्नवर्तिभिः कतिपयैरेव नृपतिभिरनुप्रयातः काञ्चीमनुप्राप्तः। वही, पृ. 95
40. वही, पृ. 101

यह हरिवाहन को भी अपने ज्येष्ठ भ्राता के समान सम्मान देता है। इसका नैतिक चरित्र उच्च कोटि का है। जब बन्धुसुन्दरी वज्रायुद्ध के डर से मलयसुन्दरी को रात्रि में ही अपने देश में ले जाने को कहती है तो यह इस अनैतिक कार्य को यह कहकर करने से मना कर देता है कि इस अनुचित कार्य को करने से अपयश होगा।[41]

शकुनों पर विश्वास : यह शकुनों पर विश्वास करता है। हरिवाहन का अन्वेषण करते समय, जब यह अदृश्यपार सरोवर के तटवर्ती माधवी लता मण्डप में विश्राम करते हुए स्वप्न में पारिजात वृक्ष को देखता है, तब यह शीघ्र ही मित्र संगम को निश्चित मानता है।[42] दक्षिण नेत्र तथा भुजा के फड़कने से इसे अपने कार्य में सफलता प्राप्त होने का विश्वास होता है।[43]

धार्मिक : यह ईशोपासक भी है। द्वीपान्तर-विजय यात्रा पर निकलने से पहले यह अपने इष्टदेव की अराधना करता है। समुद्र में यात्रा करने से पहले यह समुद्र की भी पूजा करता है।[44] हरिवाहन की खोज करते हुए अदृष्टपार सरोवर के समीप स्थित जिनेन्द्र आयतन में ऋषभदेव को अत्यधिक श्रद्धा के साथ स्तुति करता है।[45] यह सभी देवों के प्रति श्रद्धा व भक्ति का भाव रखता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समरकेतु वीर, धीर और स्वामिभक्त युवक है। मित्रता के लिए तो यह एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

---

41. सूक्तवादिनी मुक्तवादिनी युक्तमभिहितम्। किंतु दुष्करमिदं मादृशानाम्। अहं हि वारंवारमभ्यर्थितेन प्रतिपद्य मित्रतां शत्रुगृहीतस्य राज्ञतावकस्य सहाय्यकाय पित्रा समादिष्ट। ...... यदा तु छलेन रात्रावुपेत्य प्राणभूतामस्य दुहितरमपहरामि, तदा तदपकारकृत्येषु नित्यमेव निषष्णबुद्धेवज्रायुधस्य मम च न व्यतिरिच्यते किंचित्। किं च हत्वा गत इमामनवनिर्दोषगीतचरितस्य तस्यापि पितुरात्मीयस्य दर्शयिष्यामि कथमात्मानम्।- ति. म., पृ. 326
42. निद्रया मुदितनयनयुगल स्वप्ने रसातलात्तत्कालमेवोद्गतम्.... ईषत्प्रौढिमायातं पारिजातद्रुममद्राक्षीत्। दर्शनानुपदमेव च प्रबुद्धः प्रवृद्धविभवेन सख्या सह समागमप्राप्तिमचिरभाविनीं निरचैषीत्। वही, पृ. 207-208
43. वही, पृ. 210
44. वही, पृ. 123
45. वही, पृ. 218

मेघवाहन

मेघवाहन, चक्रवर्ती सम्राट् व हरिवाहन के जनक है। इसकी राजधानी अयोध्या स्वर्ग से भी सुन्दर है। सम्राट् मेघवाहन सभी स्पृहणीय गुणों से युक्त है। यह बलशाली, पराक्रमी तथा दानवीर है। राजलक्ष्मी सदैव इसके वश में रहती है। इनके पराक्रम व दयादाक्षिण्यादि का वर्णन देवराज इन्द्र की सभा में भी बड़े आदर के साथ होता है।

पराक्रमी : यह अत्यधिक पराक्रमी है। बाल्यवस्था में ही इसका राज्याभिषेक हो गया था। बाल्यकाल में ही इसने अपने बाहुबल से सातों समुद्र पर्यन्त पृथ्वी को जीतकर अपने अधीन कर लिया था। यह इतने पराक्रमी हैं कि इससे शत्रुता के परिणाम को देखकर शत्रुओं ने अपने अस्त्रों को भी छोड़ दिया।[46]

प्रजावत्सल : यह अपनी प्रजा के सुख दु:ख को जानने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। अपनी प्रजा के विचारों को जानने के लिए यह वेष बदलकर नगरी में घूमते है।[47] प्रजा की प्रसन्नता के लिए विशेष उत्सवों में भी भाग लेते है।[48] अपनी अच्छी व्यवस्था और नीतियों से इसने सब ओर शान्ति का साम्राज्य स्थापित कर दिया था। इसके राज्य में प्रजाजन सुखी और खुशहाल थे।

दानवीर और निडर : यह याचकों को निराशा नहीं करते। जीवन का संकट उत्पन्न होने पर भी इन्होंने कभी किसी याचक को निराश नहीं किया। यह अत्यन्त निडर और वीर है। वेताल के याचना करने पर यह अपना शीश भी दान करने को उद्धत हो जाते है और तलवार से अपनी ग्रीवा काटने भी लगते हैं।[49] इन्होंने जीवन में कभी किसी के समक्ष हाथों को नहीं फैलाया। इनके हाथ सदैव दान करने के लिए ही तत्पर रहते हैं। इसीलिए ज्वलनप्रभ को भी अपना दिव्य हार इन्हें देने के लिए प्रार्थना करनी पड़ती है।[50] विद्याधर मुनि के दर्शन करके व उनका सत्कार

46. दृष्ट्वा वैरस्य वैरस्यमुज्झितास्त्रों रिपुव्रजः ।
यस्मिन्विश्वस्य विश्वस्य कुलस्य कुशलं व्यधात् ।। ति.म., पृ. 16
47. निसर्गत एवास्य पूर्वपार्थिवातिशायिनी प्रजासु पक्षपातस्य परवशा वृतिरासीत। यतः स ..... तासां प्रजानां सुस्थासुस्थोपलम्भाय केनाप्यनुपलक्ष्यमाणविग्रहः कुसुमायुध इवायुध द्वितीयः स्वयमेव निर्गत्य निशामुखेषु प्रतिगृहं नगर्यां बभ्राम। वही, पृ. 19
48. पौरलोकपरितोषहेतोश्च वसन्तादिषु सविशेषप्रवृत्तोवसवां निर्गत्य नगरीमपश्यत्। वही; पृ. 19
49. वही, पृ. 51-53
50. वही, पृ. 43-45

करके कहते हैं कि मेरा यह शरीर, धन अथवा राज्य जो कुछ भी आपके अथवा अन्य के प्रयोजन के लिए उपयोगी हो, उसे स्वीकार करें।[51]

यह अत्यन्त निडर और वीर भी है। भय नामक शब्द तो इनके शब्दकोश में ही नहीं है। वेताल की भीषण आकृति को देखकर और उसके भयङ्कर अट्टहास को सुनकर भी इन्हें किञ्चित भी भय का अनुभव नहीं होता, अपितु वेताल की विचित्र आकृति को देखकर वे हँस देते हैं।[52]

गुणग्राही : यह गुणी व्यक्ति का सम्मान करते हैं, चाहे वह शत्रु ही क्यों न हो। समरकेतु की वीरता व युद्ध कौशल के विषय में सुनकर आश्चर्यचकित हो जाते है।[53] उसे प्रतिहारी के द्वारा आदरपूर्वक बुलाकर पुत्रवत् स्नेह देते है तथा हरिवाहन का प्रमुख सहचर बना देते है।[54]

पुत्र स्नेह : अपने पुत्र हरिवाहन के लिए इनके हृदय में अगाध प्रेम है। बहुत से दुःख सहने और अनेक प्रार्थनाओं के पश्चात् ही मेघवाहन ने देवी लक्ष्मी से वरदान में हरिवाहन को पुत्र रूप में प्राप्त किया। पुत्र पर अत्यधिक स्नेह होने के कारण यह मास पर्यन्त प्रतिदिन इसका जन्मोत्सव मनाते हैं। हरिवाहन को आदर्श राजा के गुणों से युक्त करने के लिए उचित समय पर एक विद्यागृह का निर्माण करवाकर उसकी उत्तम शिक्षा का प्रबन्ध करते है।[55]

धर्मनिष्ठ : यह धर्मपारायण हैं। यौवनावस्था का अत्यधिक समय व्यतीत हो जाने पर भी सन्तान प्राप्ति न होने पर वन में जाकर देवोपासना करने का निश्चय करते

51. इदं राज्यम्, एषा में पृथिवी, एतानि वसुनि, असौ हस्त्यश्वरथपदातिप्रायोबाह्यः परिच्छदः, इदं शरीरं एतद्गृहं गृह्यतां स्वार्थसिद्धये परार्थसंपादनाय वा यदत्रोपयोगार्हम्। ति.म., पृ. 26
52. ते च क्रमानुसारिण्या दृशा चरणयुगलादामस्तकं प्रत्यवयवमलोक्य किंचित्कृतस्मितो नरपतिरुवाच-महात्मन् अनेन ते .... प्रकरितभुवनत्रयत्रासकारिणा हर्षाट्टहासेनजनितमतिमहकुतूहलं मे। वही, पृ. 49
53. वही, पृ. 88-99
54. वही, पृ. 102
55. अवतीर्णे च षष्ठे किंचिदुपजातदेहसौष्ठवस्य व्यक्तवर्णवचनप्रवृत्तेर्विनयारोपणाय राजा राजकुलाभ्यन्तर एव कारितानवद्यविद्यागृहः समयगावेशितगुरुकुलानामवगताखिलशास्त्र मर्मनिर्मलोक्तियुक्तीनामाम्नायलब्धजन्मनामसन्मार्गगतिनिसर्गविद्विषां विद्यागुरूणामहरहः संग्रहमकरोत्। वही, पृ. 78-79

हैं।[56] विद्याधर मुनि के कहने पर देवी लक्ष्मी की पूर्ण श्रद्धा व भक्ति से प्रतिदिन विधिपूर्वक उपासना करते हैं।[57]

यह ऋषि-मुनियों को पूर्ण आदर व सम्मान देते हैं। विद्याधर मुनि को आकाश मार्ग से आते देखकर उनके प्रति श्रद्धा से युक्त होकर उठकर खड़े हो जाते हैं और पास आने पर उनका यथोचित सत्कार करते है। शक्रावतार नामक जैन मंदिर में भी दिव्य वैमानिक को देखकर आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हैं।[58]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सम्राट् मेघवाहन का एक आदर्श राजा थे। उन्हें प्रजा भी उतना ही चाहती थी जितना यह अपनी प्रजा से प्रेम करते थे।

वज्रायुध

यह कौशलधिपति सम्राट् मेघवाहन की चतुरङ्गिणि सेना का सेनानायक है।[59] यह अत्यन्त वीर, निडर व पराक्रमी है। अपने पराक्रम से यह शत्रु सेनाओं को भयभीत कर देता है। सम्राट् मेघवाहन इसे दक्षिणापथ के सामन्तों को विजय करने के लिए भेजते हैं। यह दक्षिण दिशा के जनपदों पर कौशल नरेश की विजय पताका फहराते हुए[60] अपने विजय रथ को आगे बढ़ाते हुए, काञ्ची नरेश को विजय का पाठ पढ़ाने के लिए काञ्ची नगरी पहुंचता है। युद्ध का इसे व्यसन सा है। निरन्तर अनेक युद्ध करने पर भी इसे विश्रान्ति का अनुभव नहीं होता। युद्धनाद इसे कर्णामृत के समान लगता है।[61] काञ्ची में जब काचरक और काण्डरात नामक अश्वारोही आकर सूचित करते हैं कि शत्रु सेना आक्रमण करने के लिए आ रही है, तो यह अत्यधिक प्रसन्न हो जाता है तथा उत्साहित होकर रणभेरी बजाने का आदेश दे देता है।[62] यह अनुपम योद्धा होने के साथ-साथ श्रेष्ठ धनुर्धर भी है। इसके

56. ति.म., पृ. 29
57. वही, पृ. 25
58. वही, पृ. 38
59. वही; पृ. 81
60. ससंभ्रममवनताश्चार्चन्ति देवस्य चरणनखचिन्तामणिपरंपरापुरःप्रकीर्णचूड़ामणि-किरणचक्रवालबालपल्लवैर्मूर्द्धनि मूर्द्धाभिषिक्तपार्थिवकुलोद्भवाभवदत्तभीम-भानुवेगप्रभृतयः सपरिजनाः राजानः। वही; पृ. 81
61. सेनापतिस्तु तत्तयोराकर्ण्य कर्णामृतकल्पम् ..... । वही, पृ. 86
62. वही; पृ. 85-86

धनुर्विद्या कौशल का ज्ञान उस समय होता है जब इसका समरकेतु के साथ बाण युद्ध होता है।[63] समरकेतु भी इसके धनुर्विद्या कौशल की प्रशंसा करता है।[64]

यह आदर्श योद्धा है। वीरों के लिए इसके हृदय में सम्मान जनक स्थान है। युद्ध भूमि में शत्रुसेना नायक समरकेतु के अद्वितीय पराक्रम को देखकर उसका प्रशंसक हो जाता है[65] तथा समस्त वीरोचित गुणों से युक्त स्वयं से अधिक पराक्रमी समरकेतु को उसके समक्ष बद्धांजलि होकर, बड़ी नम्रता से सम्राट् मेघवाहन की सेना का सेनापति पद स्वीकार करने की प्रार्थना करता है।[66] यह सम्राट् मेघवाहन के प्रति इसकी सच्ची निष्ठा व स्वामिभक्ति की पराकाष्ठा है।

वीर होने के साथ-साथ यह सहृदय भी है। दिव्य अंगुलीयक के प्रभाव से समरकेतु के मूर्च्छित होने पर यह अपनी सेना से इसकी रक्षा करता है।[67] शत्रु सेना के घायल सैनिकों के उपचार का आदेश देता है।[68] समरकेतु के व्रणों का उपचार तो यह परिचायक के समान स्वयं अपने हाथों से करता हैं।[69] इस प्रकार यह सच्चा वीर, आदर्श योद्धा तथा आदर्श स्वामिभक्त है।

कुसुमशेखर

कुसुमशेखर सम्पूर्ण दक्षिणापथ के अधिपति है।[70] इनकी राजधानी काञ्ची नगरी है। यह गन्धर्वदत्ता के पति तथा मलयसुन्दरी के पिता है।[71] यह यशस्वी, वीर ओर नीतिनिपुण हैं। वज्रायुध की अपेक्षा कम सैन्य शक्ति होने पर भी बड़े धैर्य से काम

63. ति.म., पृ. 89
64. वज्रायुध ! तवानेन सकललोकविस्मयकारिणा भुजबलेन धनुरिवावजितं मम निसर्गस्तब्धमपि हृदयम्, आशैशवादपरपौरुषमदोन्मादपरवस्य मे शतशः संगरेषु संवृत्तः प्रवेशः जातश्च सहस्रसंख्यैर्धन्विभिः सह समागमः, न तु जनितमेवंविधं केनाप्यपरेण कौतुकम् । वही; पृ. 90
65. उपजातविस्मयश्च निश्चलस्निग्धतारकेण चक्षुषा सुचिरमवलोक्य तदवलोकनप्रीतमनसा समीपवर्तिना सामन्तलोकेन सह बहुप्रकारमारब्धतद्वीर्यगुणस्तुतिस्तस्मिन्नेव प्रदेशे मुहुर्तमात्रमतिष्ठत्। ति.म., पृ. 94
66. यद्यनुग्रहबुद्धिरस्मासु तदेतदङ्गीकुरु सततमादेशकारिणा समीपदेशस्थितेन मया प्रतिपन्नसकलपृथ्वी- व्यापारभारनिराकुलो मदीयमाधिपत्यपदम्। वही; पृ. 98
67. वही; पृ. 93
68. आदिश्य चायुधप्रहारक्षतमर्मणामरातियोधानामौषधकर्मण्याप्तजनम् ...। वहीं, पृ. 97
69. अधिशयिततल्पस्य च परिचारक इव स्वयं व्रणपट्टबन्धनादि क्रियामन्वतिष्ठत्। वही, पृ. 97
70. वही; पृ. 343
71. वही; पृ. 262-63

लेते हैं और अच्छी सामरिक नीति बनाकर बहुत दिनों तक वज्रायुध से लोहा लेते हैं। इस बीच युद्ध में सहायतार्थ मित्र राजाओं के पास दूत भेजते है।[72]

यह प्रजावत्सल है। अपनी प्रजा की रक्षा के लिए वज्रायुध से सन्धि करने के लिए, अपनी पुत्री मलयसुन्दरी का विवाह उसके साथ करने के लिए तैयार हो जाते है।[73]

यह अति बुद्धिमान भी हैं। जब इन्हें यह ज्ञात होता हैं कि मलयसुन्दरी इनके मित्र सिहंलेश्वर चन्द्रकेतु के पुत्र समरकेतु से प्रेम करती है और उसे ही अपने पति रूप में वरण करने का निश्चय कर चुकी है। तब अपनी पुत्री पर अगाध स्नेह के कारण अत्यधिक चतुरता से यह योजना बनाते हैं कि मलयसुन्दरी को प्रशान्तवैर नामक तपस्वी के आश्रम में भेज दिया जाए और प्रजा में यह प्रकाशित कर दिया जए कि स्मरायतन में जागरण के कारण अकस्मात् उठी तीव्र शूलवेदना से मलयसुन्दरी ने प्राण त्याग दिए। इससे जहाँ एक ओर प्रजा में जनापवाद रक्षा करेगा, वहीं दूसरी ओर विपक्ष भी रुष्ट नहीं होगा।[74]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कुसुमशेखर बुद्धिमान, नीतिनिपुण और योग्य राजा है।

तारक

यह स्वर्णद्वीप के मणिपुर नगर के वैश्रवण नामक पोत-वणिक् (नौका द्वारा व्यापार करने वाला) का पुत्र है। इसकी माता का नाम वसुदत्ता है।[75] शिक्षाध्ययन के पश्चात् यह भी अपने पैतृक व्यवसाय में संलग्न हो जाता है। यह व्यापार के लिए रंगशाला नगरी में जाता है[76] और वहाँ नाविकों के सरदार जलकेतु की पुत्री प्रियदर्शना से इसका प्रेम हो जाता है। उसके प्रगाढ़ स्नेह में यह व्यापार छोड़कर नाविक बन जाता है।

---

72. ति.म., पृ. 82
73. वही; पृ. 298
74. प्रजासु च 'आयुष्मति स्मरायतनजागरणसमुत्थया झटित्येव तीव्रया शूलव्यथया विसंस्थुलीकृतशरीरा संस्थिता' इति प्रकाशयते। अत्र हि कृते जनापवादः परिरक्षितः, विपक्षश्च न विरूक्षितो भवति। वही, पृ. 328
75. वही; पृ. 127
76. वही; पृ. 127

यह अत्यधिक गुणी युवक है। इसने कुमारावस्था में ही शास्त्रों और कलाओं का अध्ययन कर लिया था। अपने पैतृक व्यवसाय में भी इसने दक्षता प्राप्त कर ली थी। इसके गुणों से आकृष्ट होकर सम्राट् चन्द्रकेतु इसे नाविकों का सरदार नियुक्त करते हैं, तो यह शीघ्र ही अपने पद के अनुरूप नौ संचालन में प्रवीण हो जाता है।[77] इसकी योग्यता व स्वामिभक्ति के कारण ही इसे समरकेतु की विजययात्रा में समुद्रयात्रा के अवसर पर समरकेतु की नौका का कर्णधार बनया जाता है। यह अपने कर्त्तव्य पालन में सदैव सजग रहता है। अति कठिन परिस्थितियाँ भी इसे अपने कार्य से विचलित नहीं करती। समरकेतु के कहने पर यह समुद्र के अति दुर्गम मार्ग पर भी मांगलिक गीत ध्वनि के उद्गम स्थल को खोजने के लिए चल पड़ता है।[78] अपने स्वामी समरकेतु को समुद्र में कूदता देखकर यह भी उसे पीछे ही समुद्र में कूद पड़ता है।[79]

यह अत्यधिक बुद्धिमान भी है। जब समरकेतु मलयसुन्दरी को देखकर अपने हृदय से नियंत्रण खो बैठता है तो यह नौका के व्याज से मलयसुन्दरी को अपने स्वामी का प्रणय-निवेदन करता है। जब मलयसुन्दरी उसका प्रणय निवेदन स्वीकार करते हुए कहती है-**अङ्गीकृतश्चार्य नायकः। किंतु तिष्ठतु तावद्यावदहमिहस्था। स्वस्थानमुपगता तु काञ्चीमध्यमागतं ग्रहीष्याम्येनम्।**[80] तब यह ही 'काञ्ची' शब्द से काञ्ची नगरी विषयक संकेत की ओर समरकेतु का ध्यान आकृष्ट करता है।[81]

यह एक आदर्श प्रेमी भी है। निम्नजाति की कन्या के प्रेमपाश में बँधकर उससे विवाह कर लेता है। अपने प्रकृष्ट प्रेम में यह अपने परिवार, अपने देश, यहाँ तक कि अपने पैतृक व्यवसाय को भी छोड़ देता है। यह निश्चय ही आदर्श प्रेमी है जो प्रेम के विषय में जाति भेद को भी गौण मानता है।

इस प्रकार तारक एक बुद्धिमान, आत्मविश्वासी व स्वामिभक्त नवयुवक के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होता है।

---

77. ति.म., पृ. 129-130
78. वही; पृ. 141-147
79. वही; पृ. 291-292
80. वही; पृ. 288
81. वही; पृ. 320-21

गन्धर्वक

यह चित्रलेखा का पुत्र है।[82] यह चित्रकला में निपुण हैं। यही तिलकमञ्जरी का चित्र बनाकर तथा उसे हरिवाहन को दिखाकर उसके मन में तिलकमञ्जरी के प्रति अनुराग उत्पन्न करता है। इसका बनाया गया त्रुटि रहित चित्र इसके चित्रकला कौशल को प्रदर्शित करता है। हरिवाहन भी इसके चित्रकला कौशल की प्रशंसा करता है।[83]

पन्द्रह वर्षीय यह तरुण शील, सदाचार व दयालुता आदि गुणों से भरपूर है। तरङ्गलेखा के करुण आक्रन्दन को सुनकर सहायता करने के लिए उसके पास जाता है और मलयसुन्दरी के विष-विकार को दूर करने के लिए औषधि खोजने का पूरा प्रयत्न करता है।[84]

यह बुद्धिमान भी है। हरिवाहन को देखकर व उसका परिचय पाकर यह सब प्रकार से उसे ही तिलकमञ्जरी के योग्य मानता है।[85] यह हरिवाहन और तिलकमञ्जरी को मिलाने का पूरा प्रयत्न करता है। चित्रमाय को भी यह आज्ञा देता है कि मेरे शीघ्र वापस न आने पर तुम किसी भी प्रकार हरिवाहन को रथनूपुरचक्रवालनगर ले जाना।[86] अन्त में यही हरिवाहन को तिलकमञ्जरी से मिलाता है। इस प्रकार यह अपनी स्वामिभक्ति का आदर्श प्रस्तुत करता है।

ज्वलनप्रभ

ज्वनलप्रभ एक दिव्य वैमानिक है। पुण्य क्षीण होने पर यह धार्मिक कार्यों के द्वारा अपना दूसरा जन्म सुधारने के लिए स्वर्गलोक से निकल पड़ता हे। यह रतिविशाला नगरी में जाकर अपने मित्र सुमाली को भी शुभ कर्मों में प्रवृत करता है। इसे अपनी पत्नी प्रियङ्गुसुन्दरी से अगाध प्रेम है। शक्रावतार नाम जिनायतन आदि के दर्शन करके लौटते समय यह सम्राट् मेघवाहन से मिलता है। वहाँ यह

82. ति.म., पृ. 170
83. वही; 166
84. वही; पृ. 380
85. वही; पृ. 164
86. वही; पृ. 380

अपनी पत्नी प्रियङ्गुसुन्दरी का चंद्रातप नामक दिव्यहार यह कहकर मेघवाहन को दे देता है कि कदाचित् प्रियङ्गुसुन्दरी को भी इस हार को देखने का अवसर प्राप्त हो जाए और वह अपने पूर्वजन्म को याद करके शुभ कर्मों में प्रवृत्त हो सके। इस से यह भी ध्वनित होता है कि दूसरे जन्म में यह हार ही ज्वलनप्रभ व प्रियङ्गुसुन्दरी के पुनर्मिलन का कारण बनेगा।

विद्याधर मुनि

मुनि स्वभाव से ही दयालु व परोपकारी होते है। वे कभी किसी को दु:खी नहीं देख सकते। सदैव परार्थ सम्पादन में ही रत रहते है। विद्याधर मुनि भी स्वभाव से कोमल हैं। मेघवाहन को दु:खी देखकर ये उसे पुत्र प्राप्ति का उपाय बताते है।

अन्य पुरुष पात्र : इन पात्रों के अतिरिक्त भी अनेक गौण पुरुष पात्र है, जो कथावस्तु में अपने-अपने स्थानों पर अपना महत्व रखते हैं जैसे कमलगुप्त, विजयवेग, चित्रमाय, अनङ्गरति, चक्रसेन, महोदर, विराध, शाक्यबुद्धि, मित्रधर आदि।

इन पात्रों का अपने स्थान पर महत्व अवश्य है, परन्तु ये कथावस्तु की गतिशीलता में कोई विशेष योगदान नहीं देते। कमलगुप्त कलिङ्ग देश का राजकुमार है और हरिवाहण का मित्र व उसका विश्वासपात्र हैं। हरिवाहन समरकेतु के साथ निकलते समय छावनी का भार इस पर ही छोड़ते है। विजयवेग वज्रायुध का परम विश्वासपात्र सेवक है। यह व्रजायुध को दिव्य अंगुलीयक पहनाकर उसकी रक्षा करता है। यह मेघवाहन के समक्ष सम्पूर्ण युद्ध वृत्तान्त को प्रस्तुत करता है। चित्रमाय गन्धर्वक का सहचर है। यह रूप बदलने में निपुण है। यह हाथी का रूप धारण करके हरिवाहन को तिलकमञ्जरी के पास ले जाता है। अनङ्गरति एक विद्याधर है। विद्याधरों के सम्राट् विक्रमबाहु को विरक्त देखकर प्रधानसचिव शाक्यबुद्धि की योजना अनुसार यह हरिवाहन को मन्त्र सिद्धि के कार्य में प्रवृत्त करता है, जिससे वह विद्याधर सम्राट् बनने की योग्यता प्राप्त कर ले। चक्रसेन विद्याधरों के सम्राट् है और तिलकमञ्जरी के पिता है इन्हें अपनी पुत्री से अगाध प्रेम है। यह पुत्री द्वारा वरण किये गए हरिवहन को सहर्ष अपना जामाता स्वीकार कर लेते है। यह एक आदर्श पिता के उत्तम उदाहरण है। महोदर देवी

लक्ष्मी का परम कृपापात्र यक्ष है, जो सम्राट् मेघवाहन की परीक्षा लेता है। यही समरकेतु, तारक व मलयसुन्दरी को समुद्र में डूबने से बचाता है। इसी प्रकार अन्य पात्र भी अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार कार्य करने में संलग्न रहते है।

स्त्री-पात्र

तिलकमञ्जरी

तिलकमञ्जरी इस कथा की नायिका है। यह विद्याधर चक्रवर्ती सम्राट् चक्रसेन की पुत्री है। पूर्वजन्म में यह ज्वलनप्रभ नामक वैमानिक की पत्नी थी और देवी लक्ष्मी की सखी थी। इसका नाम प्रियङ्गुसुन्दरी था। यह एक अद्वितीय व अनिन्द्य सुन्दरी है। इस जन्म में यह विद्याधर कन्या है। इसलिए भी इसका व्यक्तित्व अत्यधिक आकर्षक है।

तिलकमञ्जरी पाणिग्रहण से पूर्व मुग्धा[87] परकीया नायिका है।[88] मुग्धा परकीया वह नायिका होती है, जिसमें यौवन अवतरित हो चुका है। जिसमें लज्जा की अधिकता व काम की अल्पता हो तथा जो कन्या[89] पितादि के वश में रहती हो। तिलकमञ्जरी अपने पिता को नियंत्रण में रहती है। हरिवाहन को देखकर काम-विकार से पीड़ित होने पर भी अत्यधिक लज्जा के कारण अपना प्रेम प्रकट नहीं करती। यह पाणिग्रहण के पश्चात् मध्या स्वकीया नायिका है।[90] जिस नायिका में यौवन और काम का उदय हो रहा हो, जो मोह पर्यन्त रति करने में समर्थ हो तथा जो विनय सरलता आदि गुणों से युक्त गृहकार्य में दक्ष पतिव्रता स्त्री हो वह 'मध्या स्वकीया' नायिका कहलाती है।[91]

सौन्दर्य की प्रतिमा : तिलकमञ्जरी अद्वितीय सुन्दरी है। विद्याधर कन्या होने के कारण यह अपार सौन्दर्य की स्वामिनी है। जिसके चित्रदर्शन मात्र से ही हरिवाहन

87. (क) मुग्धा नवयवः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि । द. रू., 2/16
(ख) प्रथमावतीर्णयौवनमदविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा । सा. द., 3/58
88. परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा । वही, 3/66
89. कन्या त्वजातोपमा सलज्जा नवयौवना । वही, 3/67
90. मध्योद्यद्यौवनानङ्गा मोहान्तसुरतक्षमा - द. रू., 2/16
91. विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया। वही 3/57

जैसा स्थिर चित्तवाला राजकुमार अपने हृदय पर नियन्त्रण खो बैठता है, वह स्वयं कितनी रूपवती होगी। इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। हरिवाहन उसका चित्र देखकर उसमें खो जाता है। कभी उसके केश-विन्यास को देखता है। कभी चंद्रमा के समान सुन्दर मुख को, कभी कोमल अधरों को, कभी कटिप्रदेश को, कभी नाभि के मण्डल विस्तार को, कभी उरुभाग को कभी कमल के समान चरणों को देखता है। बार-बार देखने पर भी उसके नेत्र तृप्त नहीं होते।[92] गन्धर्वक के जाने के पश्चात् भी वह तिलकमञ्जरी के चित्रस्थ सौन्दर्य को ही निहारता रहता है। रात्रि में भी उसी का चिन्तन करता है। यह इतनी सुन्दर है कि हरिवाहन स्वयं को भी इसके उपयुक्त नहीं समझता।[93]

हरिवाहन जब प्रथम बार तिलकमञ्जरी के साक्षात् देखता है, तो अनायास ही इसके मनोहारी सौन्दर्य के विषय में दो पद्य कह उठता है।[94]

पुरुष विद्वेषिणी : यह स्वभाव से पुरुष विद्वेषिणी है। यौवनवस्था में पदार्पण करने पर भी कभी किसी पुरुष सम्पर्क की इच्छा नहीं की। तिलकमञ्जरी के इसी स्वभाव को प्रकट करने के लिए गन्धर्वक ने इसका चित्र भी पुरुषरहित बनाया था। इसे विवाह से भी अरुचि है। गुरुजनों के बहुत समझाने पर भी यह विवाह की स्वीकृति नहीं देती।[95]

स्त्र्योचित गुणों से युक्त : विनम्रता, सदाचार, लज्जा और सुकुमारता स्त्रियों के स्वाभाविक गुण है। तिलकमञ्जरी सभी स्त्र्योचित गुणों से युक्त है। जब हरिवाहन

92. विममर्शचादृष्टपूर्वाकृतिविशेषदर्शनदूरविकसत्तारया दृशा त्रिभुवनातिशायिनीमस्याः शरीरवयवसमुदायचारुता- मतिचिरम्। अनुपरतकौतुकश्च मुहुः कण्ठकन्दले, मुहुः स्तनमण्डले, मुहुर्मध्यभागे, मुहुः नाभिचक्राभोगे, मुहुर्जधनभारे, मुहुरूरुस्तम्भयोः, मुहुश्चरणवारिरुहयोः, कृतारोहावरोहया दृष्ट्या तां व्यभावयत्। ति.म., पृ. 162
93. अहो में मूढ़ता यछसावायतेक्षणा भूमिगोचरनृपाधिपात्मजप्रणयिनी भविष्यतीति वार्तयापि श्रुतया हर्षमुदद्वहामि। .... क्वाहम्, क्व सा, क्व भूमिगोचरस्यनिकेतनं साकेतनगरम्, क्वदिव्यसङ्गसमुचिताचल- प्रस्थसंस्थं रथनुपुरचक्रवालम्। अपि च विवेकिना विचारणीयं वस्तुतत्त्वम्। वही, पृ. 175-76
94. ग्रहकवलनाद्भ्रष्टा लक्ष्मीः किमृक्षपतेरियं मथनचकितापक्रान्ताब्धे रुतामृतदेवता। गिरिशनयनोदर्चिर्दग्धान्मनोभवपादपाद्विदितमथवा जाता सुभ्रूरियं नवकन्दली।। जानीथ श्रुतशलिनौ खलु युवामावां प्रकृत्यर्जुनी त्रैलोक्ये वपुरीदृगन्ययुवतेः संभाव्यते किं क्वचित्। एतत्प्रष्टुमपास्तनीलनलिनश्रेणीविकाशश्रिणी शङ्केऽस्याः समुपागते मृगदृशः कर्णान्तिकं लोचने।। वही, पृ. 248
95. वही, पृ. 169

एलालतामण्डप में अपना परिचय देकर अत्यन्त शिष्टता से इसके तथा नगरी के विषय में पूछता है, तो वह लज्जा के कारण उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं देती।[96] इसने लज्जा के विषय मे तो सभी स्त्रियों को पीछे छोड़ दिया है। एलालमण्डप में यह हरिवाहन पर मोहित तो हो जाती है, पर लाज के कारण इस विषय में वह किसी को कुछ भी नहीं बताती। जब इसे ज्ञात होता है, कि हरिवाहन मलयसुन्दरी के आश्रम में है, तो वह इससे मिलने आश्रम जाती है।[97] पर वहाँ भी कोई बात नहीं करती। यह हरिवाहन को रथनूपुरचक्रवाल नगर चलने का निमंत्रण भी अपनी परिचारिका के माध्यम से देती है। इसकी प्रेमाभिव्यक्ति भी मलयसुन्दरी आदि सखियों के माध्यम से ही हुई है।

ललित कलाओं में पारंगत : तिलकमञ्जरी ललित कलाओं जैसे चित्रकला, नृत्यकला, गायन, वीणावादन, पुस्तककर्म, विदग्धजनों के मनोरंजन योग्य वस्तुविज्ञान आदि में निपुण थी। इसी कारण उसे सभी कलाओं में लब्धपताका कहा गया है।[98] मलयसुन्दरी तिलकमञ्जरी का हरिवाहन से परिचय करवाते हुए उसकी इन विशेषताओं का विशेष रूप से वर्णन करती है और उसे तिलकमञ्जरी के साथ इन विषयों पर चर्चा करने के लिए कहती है।[99] तिलकमञ्जरी को वीणावादन बहुत प्रिय है। हरिवाहन के वियोग से व्याकुल होकर वह कृत्रिमाद्रि के शिखर पर स्मायतन में देवपूजन के व्याज से रत्नवीणा बजाती थी।[100] तिलकमञ्जरी ने चित्रकला में भी प्रवीणता प्राप्त की थी। हरिवाहन के प्रत्यागम की प्रतीक्षा में वह उसका चित्र बनाकर समय व्यतीत करती थी।[101]

96. ति.म., पृ. 249-250
97. वही, पृ. 360-361
98. कृत्स्ने विद्याधरलोक इह लब्धपताका कलासु सकलास्वपि कौशलेन वत्सा। वही, पृ. 363
99. चित्रकर्मणि, वीणादिवाद्ये लास्यताण्डवगतेषु नाट्यप्रयोगेषु षड्जादिस्वरविभागनिर्णयेषु पुस्तककर्मणि द्रविड़ादिषु पत्रच्छेदभेदष्वन्येषु च विदग्धजनविनोदयोग्येषु वस्तुविज्ञानेषु पृच्छैनाम्। वही, पृ. 363
100. कदाचित्कृत्रिमाद्रिशिखरवर्तिनी स्मरायतने देवतार्चनव्यपदेशेन द्रुतगृहीतमुक्तग्राम रागामनुरागनिगडितगमनसिद्धाध्वन्यगणवितीर्णकर्णां रत्नवीणां वादयन्ती। वही, पृ. 391
101. कदाचिदन्तिकन्यस्तविविधवर्तिकासमुद्रा प्रगुणीकृत्य पृथुनि चित्रफलके निमुणमालोच्यालोच्य मकरेतुबाणव्रातविद्धा देवस्यैव रूपं विद्धमभिलिखन्ति। वहीं, पृ. 391

आदर्श प्रेमिका : हरिवाहन के दर्शन होने तक यौवनावस्था में पदार्पण करने पर भी इसे पुरुष संपर्क से अरुचि थी। हरिवाहन को देखने के पश्चात् उसी पल से उसके हृदय में काम ने वास कर लिया। इस कामज्वर ने इसको इतना पीड़ित कर दिया कि वह मलयसुन्दरी के आश्रम में उससे मिलने जाती है। इसके हृदय में एकमात्र हरिवाहन का ही वास है। यह सदा उसका ही चिन्तन करती है। हरिवाहन के समरकेतु की खोज में जाने पर यह उसकी यादों में ही समय व्यतीत करती है। हरिवाहन से मिलने की आशा समाप्त होने पर यह अदृष्टपार सरोवर में जलसमाधि लेने के लिए चल पड़ती है।[102] इस प्रकार यह स्पष्ट है, कि तिलकमञ्जरी एक आदर्श प्रेमिका है, जो स्वप्न में भी हरिवाहन के अतिरिक्त किसी अन्य का विचार नहीं करती।

पतिव्रता : तिलकमञ्जरी एक सच्चरित्रा व पतिव्रता नारी है। धनपाल ने इसके पातिवर्त्य धर्म के उज्जवल पक्ष को सफलता पूर्वक प्रकाशित किया है। पूर्वजन्म में इसका प्रियङ्गुसुन्दरी था, जो अपने पति ज्वलनप्रभ को अगाध प्रेम करती थी। ज्वलनप्रभ के स्वर्ग से निकलने के पश्चात् प्रिय वियोग में उसे खोजने जम्बुद्वीप जाती है। उसको वहां न पाकर शेष आयु उसकी प्रतीक्षा में व्यतीत कर देती है। वर्तमान जन्म में भी तिलकमञ्जरी पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण ही ज्वलनप्रभ के अतिरिक्त सभी पुरुषों से द्वेष रखती है। हरिवाहन को देखकर इसका अन्तःकरण उसे इसलिए स्वीकार कर लेता है क्योंकि पूर्वजन्म में वह इसका पति था। अभिज्ञानशाकुन्तल में भी जब दुष्यन्त आश्रमवासिनी शकुन्तला के पाणिग्रहण के विषय में चिन्तन करता है तो उसका अन्तःकरण ही इसे उचित ठहराता है।[103] हरिवाहन के द्वारा भेजे गए हार को पहनते ही इसे अपने पूर्वजन्म के पति ज्वलनप्रभ का स्मरण हो आता है। अत्यधिक व्याकुल होकर यह मलयसुन्दरी के साथ लेकर तीर्थयात्रा के बहाने से घर से निकल पड़ती है। जब एक महर्षि उसके पूर्वजन्म के विषय में बताते हुए कहते हैं कि हरिवाहन ही उसके पूर्वजन्म का पति ज्वलनप्रभ है तभी इसके हृदय की आकुलता कम होती है।[104]

---

102. ति.म., पृ. 416-417
103. असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्थमस्यामभिलाषि मे मनः ।
 सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु, प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तय ।। अभि. शा., 1/19
104. ति. म., पृ. 406-413

कोमल-स्वभावा : इसका व्यवहार अत्यन्त कोमल और मृदु है। यह अपनी सखियों के प्रति स्नेह रखती है। उनके साथ ही अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करती है तथा उन्हीं के साथ वनों ओर पर्वतों पर घूमने जाती है। राजकुमारी होने पर भी इसमें अभिमान नही है। अपनी प्रिय सखी मलयसुन्दरी में इसे अगाध प्रेम और विश्वास है। अपने प्रिय के विषय में भी यह मलयसुन्दरी के परामर्श को सम्मान देती है।[105] इसके मृदु व्यवहार के कारण सभी सखियाँ इससे प्रसन्न रहती हैं तथा सदैव इसके हित का चिन्तन करती है।

पितृ आज्ञाकारिणी : तिलकमञ्जरी का अपना पिता में गाढ़ अनुराग है। यह सदा अपने पिता की आज्ञा का पालन करती है। हरिवाहन से मिलने की आशा समाप्त होने पर जब यह जल समाधि लेने का निर्णय करती है, तब उसके पिता उसे छः माह प्रतीक्षा करने को कहते है। अपने पिता की आज्ञा पालनार्थ ही यह छः माह तक विरहानल में जलती रहती है।

अतिथि सत्कार की भावना : यह 'अतिथि देवो भव' की भावना में विश्वास रखती है और बड़े मनोयोग से अपने अतिथियों की सेवा करती है। यह अपनी सखी मलयसुन्दरी के अतिथि को अपना अतिथि मानती है तथा अपने हाथ से ताम्बूल देती है।[106] जब यह मलयसुन्दरी और हरिवाहन को अपने महल में ले जाती हैं, तो उनकी इच्छाओं और सुखसुविधाओं का पूरा ध्यान रखती है। हरिवाहन की देख रेख के लिए वह अपनी प्रिय सखी मृगाङ्कलेखा को नियुक्त कर देती है तथा उनके भोजन मनोरंजन और विश्रामादि का भी उत्तम प्रबन्ध करती है। जब हरिवाहन छिपे तौर पर नगर देखने की इच्छा करता है, तो यह अतिथि की इच्छा का सम्मान करते हुए इसका प्रबन्ध कर देती है। अपने अतिथियों की सेवा सत्कार करके यह बहुत प्रसन्न होती है।

मलयसुन्दरी

यह काञ्चीनरेश कुसुमशेखर की पुत्री है। इसकी माता का नाम गन्धर्वदत्ता है। जो विद्याधर सम्राट् चक्रसेन की पुत्री है। यह अत्यधिक रूपवती है। पूर्वजन्म में इसका नाम प्रियंवदा था तथा यह दिव्य वैमानिक सुमाली की पत्नी थी। पूर्वजन्म के

---

105. तिलकमञ्जरी स्वरमवदत्- 'सखि, किर्थमभिदधासि माम्। त्वमेव जानासि यत्कर्तुमुचितम्'। ति.म., पृ. 385

106. वही, पृ. 363

संस्कारों के कारण ही इस जन्म में यह समरकेतु को देखते ही उसके प्रेमपाश में बँध जाती है। यह सच्ची सखी और बुद्धिमती है। तिलकमञ्जरी भी अपने कार्यों में इससे परामर्श लेती है और उन्हें मानती भी है।

सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति : मलयसुन्दरी अनिन्द्य सौन्दर्य की स्वामिनी है। इसके अतुलनीय सौन्दर्य को देखते ही समरकेतु कामविकार से पीड़ित हो जाता है। वह निर्निमेष नेत्रों से इसके रूप राशी का पान करता है। हरिवाहन भी इसके सौन्दर्य की प्रशंसा के विषय में दो पद्य कहता है। उसके अनुसार मलयसुन्दरी नेत्र नीलकमल को पत्र समर्पित करते हैं। उसके स्तनों का विस्तार हाथी के मस्तक का तिरस्कार करता है। कपोल स्थल हाथी के दांतों की शोभा का अनुकरण करते है। और मुख की शोभा चन्द्रमण्डल को दूषित करती है।[107] हरिवाहन पुनः कहता है कि कमलदल को तिरस्कृत करने वाले मलयसुन्दरी के नेत्र व पूनम के चाँद के समान कांति वाले मुखारविन्द की शोभा से तिरस्कृत, अपने नेत्रों और छवि को देखकर तथा लज्जा से व्यथित होकर मृगों और कमलों ने क्रमशः जनसंचार से रहित वनों व जल में निवास कर लिया।[108]

ललितकला कुशला : मलयसुन्दरी नाट्यशास्त्र, गायन, वादन आदि ललित कलाओं में प्रवीण है।[109] यह नृत्यकला में विशेषरूप से पारङ्गत है। नृत्य के चमत्कारी प्रयोग इसने अपनी माता से सीखे है।[110] जो स्वयं विद्याधरराज दुहिता गन्धर्वदत्ता है। गन्धर्वदत्ता ने इसने भी ये प्रयोग विद्याधरलोक में सीखे थे।[111] जिनेन्द्र के अभिषेकोत्सव के अवसर पर इसकी आकर्षक नृत्य मुद्राओं तथा नाट्य प्रयोगों को देखकर विद्याधर सम्राट् विचित्रवीर्य भी चमत्कृत हो जाते हैं और इससे इसके नृत्य शिक्षक के विषय में पूछते है।

उदार हृदया : इसका हृदय बहुत विशाल है। यह न केवल सामान्य जनों अपितु वृक्षों और पक्षियों पर भी स्नेह रखती है। इसे अपने गृहोद्यान के वृक्षों, शुकशावकों आदि से अत्यधिक प्रेम है। आत्मघात करने से पहले यह अपने गृहोद्यान के वृक्षों

---

107. दत्तं पत्रं कुवलयततेरायतं चक्षु .... विलसितैर्दूषयत्यास्य लक्ष्मीः। ति. म., पृ. 255-56
108. अस्या नेत्रयुगेन नीरज..... कमलैर्मन्ये वनेषु स्थितिः। वही, पृ. 256
109. उचितसमये च यथाशक्तयाधीतराजकन्यकोचितविद्या सोपनिषदि नाट्यवेदे गीतवाद्यादिषु च कलासु कृतपरिचया ....। वही, पृ. 264
110. ये पुनरिहातिरमणीयतया विशेषतः प्रतिपन्नास्तातेन ते स्वयं मया नृत्यन्तीमम्बामवलोकयन्त्यापृच्छन्तया च तामनवरतमवगताः। वही, पृ. 270-71
111. वही, पृ. 271

और पक्षियों से विदा लेने जाती है।[112] अतिथियों के लिए भी इसके हृदय में सम्मानजनक स्थान है। नितान्त अपरिचित जनों को भी यह सम्मान की दृष्टि से देखती है। जिनायतन में राजकुमार हरिवाहन को देखकर यह उसका स्वागत करती है तथा अपने आश्रम में ले जाकर अतिथि सत्कारोचित क्रियाएँ करती है।[113] यह अपने अतिथि का इतना सम्मान करती है, कि पूछे जाने पर अपना सारा वृत्तान्त उसे सुना देती है।[114]

आदर्श प्रेमिका : यह आदर्श प्रेमिका भी है। समुद्र में नाव पर सवार राजकुमार समरकेतु के आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर प्रथम बार में ही उसके प्रेम पाश में बंध जाती है तथा उसी क्षण उसे अपने जीवनसाथी के रूप में स्वीकार कर लेती है।[115] इसका प्रेम इतनी उच्चकोटि का है, कि जब समरकेतु उसे अपने समक्ष न पाकर आत्मघात के लिए समुद्र में कूद पड़ता है तो यह भी उसके पीछे ही समुद्र में कूद पड़ती है।[116] अपने हृदय में समरकेतु को स्थान देने के पश्चात् यह किसी अन्य पुरुष के वरण की कल्पना भी नहीं करती। वज्रायुध से विवाह करने के स्थान पर यह अपने प्रेम की रक्षा के लिए प्राण त्यागना अधिक उचित समझती है और मृत्युपाश बनाकर अशोक वृक्ष से लटक जाती है।[117] समरकेतु अकस्मात् ही वहाँ पहुँचकर इसके मृत्युपाश को काटकर इसके प्राणों की रक्षा करता है।[118] अपने प्रियतम को पुनः देखकर यह बहुत हर्षित होती है। इसके प्रेम वृत्तान्त को जानकर इसके पिता इसे वज्रायुध से बचाने के लिए एक आश्रम भेज देते है। एक दिन किसी ब्रह्मचारी के मुख से यह जानकर कि शत्रुसेना के द्वारा समरकेतु व उसकी सेना दीर्घनिद्रा में सुला दी गई है,[119] यह भी आत्मघात करने समुद्र की ओर चल पड़ती है।[120] किन्तु तरङ्गलेखा द्वारा पीछा किए जाने पर यह किंपाक नामक वृक्ष

112. ति.म., पृ. 301-302
113. वही, पृ. 256
114. वही, पृ. 259-345
115. अङ्गीकृतश्चायं नायकः। किंतु तिष्ठतु तावद्यावदहमिहस्था।
स्वस्थानमुपगता तु काञ्चीमध्यमागतं गृहीष्याम्येनम् ....। वही, पृ. 288
116. वही; पृ. 292
117. वही; पृ. 306
118. वही, पृ. 325
119. वही; पृ. 331
120. वही; पृ. 333

का विषैला फल खा लेती है।[121] इस प्रकार अपने प्रेम की रक्षा के लिए यह अपने प्राणों की आहुति देने के लिए भी तत्पर रहती है। निश्चय ही इसका प्रेम सभी के लिए अनुकरणीय है।

धर्मपरायणा : इसकी धर्मपरायणता का प्रथम परिचय उस समय मिलता है जब हरिवाहन इसे अदृष्टपार सरोवर के तटवर्ती जिन मंदिर में इसे पूजा करते हुए देखता है।[122] यह पूर्ण तल्लीनता से धार्मिक कार्यों में संलग्न रहती है। विद्याधर भगवान महावीर जिन के अभिषेकोत्सव में नृत्य करवाने के लिए इसका अपहरण करते है। जब इसे अपने अपहरण कारण ज्ञात होता है, तो यह पूरी श्रद्धा व भक्ति से नृत्य करती है और अपने नृत्य से विद्याधरेन्द्र विचित्रवीर्य को भी चकित कर देती है।[123] समरकेतु से इसका प्रथम मिलन भी जिनायतन की प्राचीर पर भ्रमण करते हुए ही होता है।[124] अपने प्रियतम समरकेतु से पुनर्मिलन की आशा में यह अदृष्टपार सरोवर के तटवर्ती आश्रम में निवास करती है तथा मुनिजनोचित क्रियाओं व धार्मिक क्रियाकलापों को करती हुई दिन व्यतीत करती है।

गन्धर्वदत्ता

यह विद्याधरेन्द्र विचित्रवीर्य की पुत्री तथा पत्रलेखा की अनुजा हैं। इसका विवाह काञ्ची नरेश कुसुमशेखर से हुआ है जिसने इसे अपनी पटरानी बना लिया है।[125] मलयसुन्दरी इसी की पुत्री है।

इसका जीवन अनेक आरोह-अवरोहों से भरा हुआ है। जब यह दस वर्ष की थी तब नृत्यकला में रुचि होने के कारण इसके नाना इसे अपनी नगरी वैजयन्ती ले गये थे। वहाँ जितशत्रु नामक शत्रु सामन्त के आक्रमण के समय यह अपने स्वजनों से वियुक्त हो गई।[126] इसका लालन-पालन प्रशान्त वैर तपस्वी के आश्रम में हुआ।

---

121. ति.म., पृ., 334-335
122. अपश्यं च तत्राष्टादशवर्षदेशीयामचिस्नापितस्य .... युगादि जिनबिम्बस्य पुरतो नातिनिकटे समुपविष्टामभिमुखीमबद्धपद्मासनामतिस्थिरतया ..... अखिल लोकत्रयातिशायिरूपां तापसकन्यकाम्। वही, पृ. 255
123. वही, पृ. 270
124. वही, पृ. 276
125. अकरोच्च तस्याः कनकवेत्रच्छत्रचामरादिराज्यालंकारसूचितमहोदयं महादेवीपट्टबन्धम् ..। वही, पृ. 343
126. वही, पृ. 342

आश्रम के कुलपति ने इसे अपनी पुत्री के समान पाला तथा विवाह योग्य होने पर काञ्चीनरेश कुसुमशेखर के साथ इसका विवाह कर दिया।[127]

इसे अपने माता-पिता से अगाध प्रेम हैं। उनसे बिछड़ जाने के बाद वह निरंतर उनको स्मरण करती है। इसे इस बात की बहुत चिंता है कि वह इस जन्म में अपने माता-पिता से मिल भी पाएगी या नहीं। महायश नामक महर्षि के दर्शन करके यह अपने माता-पिता से पुर्नमिलन के विषय में पूछती है।[128]

यह स्वभाव से ही धार्मिक है। ऋषि-मुनियों के वचनों पर श्रद्धा रखती है। जब इसे ज्ञात होता है कि त्रिकालदर्शी महर्षि आये हैं तो यह उनके दर्शनों के लिए वहाँ जाती है।

पत्रलेखा : यह विद्याधर चक्रवर्ती सम्राट् चक्रसेन की पटरानी तथा तिलकमञ्जरी की माता है। तिलकमञ्जरी के पुरुष विद्वेषी स्वभाव व विवाह ने करने के उसके निश्चय से यह सदैव चिंतित रहती है। जब इसे ज्ञात होता है कि इसका विवाह किसी भूतलवासी राजकुमार से होगा, तो यह इस आशा से सुन्दर राजकुमारों के चित्र बनवाती है कि संभवतः इसे कोई राजकुमार पसंद आ जाये।[129]

गन्धर्वदत्ता इसकी अनुजा है। जब इसे ज्ञात होता है कि मलयसुन्दरी गन्धर्वदत्ता की पुत्री है, तो यह बहुत प्रसन्न होती है, और उसे स्नेहपूर्वक घर चलने को कहती है।[130] मलयसुन्दरी के मना करने पर यह उसके वहीं रहने की व्यवस्था कर देती है तथा परिचर्या के लिए एक दासी को भी नियुक्त कर देती है।[131]

इसे चित्रलेखा पर अत्यधिक विश्वास है। अपने विशेष कार्यों में यह चित्रलेखा को ही सौंपती है।[132]

---

127. अवर्धयच्चापत्यबुद्धया बद्धपक्षपातः। प्रतिदिवसमासादितोद्दामयौवनां च कदाचिद्दष्टुमागताय गोप्त्रे सकलदक्षिणापथस्य पार्थिवाय ख्यातमहसे कुसुमशेखराभिख्याय प्रायच्छत। ति.म., पृ. 343
128. वही, पृ. 272
129. दर्शय निसर्गसुन्दराकृतीनामवनिगोचरनरेन्द्रप्रदारकाणां यथास्वमङ्कितानि नामभिर्यथवस्थितानि विद्धरूपाणि। ...... एवमपि कृते कदाचित्क्वापि विश्राम्यति चक्षुरस्याः। वही, पृ. 170
130. आरब्धदेवार्चनावस्थित्वा चिरमावासगमनाय मां पुनः पुनरतत्वरत्। वही; पृ. 344
131. वही; पृ. 344
132. वही; पृ. 170

इसकी प्रवृत्ति धार्मिक है। यह तिलकमञ्जरी के वर के विषय में जानने के लिए विधिपूर्वक मंत्र जप करके विद्या को देवी को प्रसन्न करती है।[133]

मदिरावती

यह सम्राट् मेघवाहन की प्रधान महिषी है और हरिवाहन की माँ है। इसका स्वभाव अत्यंत कोमल और व्यवहार सरल है। यह अत्यन्त रूपमती थी। इसके अंग-प्रत्यंगों की शोभा बहुत आकर्षक थी।[134] इसकी स्वाभाविक कोमलता, बुद्धिमता व सौन्दर्य के कारण मेघवाहन का इस पर अत्यधिक स्नेह है। मेघवाहन सदैव इसे अपने हृदय की बातों से अवगत कराते हैं। मदिरावती पतिव्रता नारी है तथा अपने पति मेघवाहन के लिए इसके हृदय में अगाध प्रेम है। जब मेघवाहन इसे पुत्रप्राप्ति के लिए वन में जाकर तपस्या करने के अपने निश्चय से अवगत कराते हैं तो यह सम्भावित वियोग की कल्पना करके ही रोने लगती जाती है और स्वयं भी वन में साथ जाने की हठ करने लगती है।[135]

यह अपने पति की बात को सर्वाधिक महत्त्व देती है। जब इसे यह ज्ञात होता है कि मेघवाहन ने समरकेतु को हरिवाहन का परम विश्वसनीय सहचर व मित्र बना दिया है तो यह समरकेतु को भी पुत्रवत् स्नेह देती है।

धार्मिक कार्यों को संपादित करने में यह सदैव तत्पर रहती है। अपने पति के धार्मिक कार्यों में पूर्ण सहयोग करती है। पुत्र प्राप्ति हेतु देवाराधन में मेघवाहन का सहयोग करने का संकल्प प्रकट करती है। विद्याधर मुनि के आने पर पूर्ण श्रद्धा से उनका स्वागत करती है तथा उनके बैठने के लिए, अपने उत्तरीय से धूलकणों को साफ करके स्वयं ही सुवर्णासन लाती है।[136] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इसका व्यक्तित्व व कार्य, इसके पद की गरीमा के अनुरूप ही हैं।

---

133. ति.म., पृ. 169

134. आढ्यश्रोणि द्ररिद्रमध्यसरणि स्रस्तांसमुच्चस्तनं
नीरन्ध्रालकमच्छगण्डफलकं छेकुभ्र मुग्धेक्षणम् ।
शालीनस्मितमस्मिताञ्चितपदन्यासं विभर्ति स्म या।
स्वादिष्टोक्तिनिषेकमेकविकसल्लवण्यपुण्यं वपुः ।। वही, पृ. 23

135 वही, पृ. 29

136. स्वयं समुपनीते सुराज्ञ्या दूरदर्शितादरया मदिरावत्या निजोत्तरीयपल्लवेन प्रमृष्टरजसि हेमविष्टरे न्यवेशयत्। वही, पृ. 25

चित्रलेखा

चित्रलेखा गन्धर्वक की माता है तथा पत्रलेखा और गन्धर्वदत्ता की बाल सखी है। यह पत्रलेखा विश्वासपात्रा है। इसने तिलकमञ्जरी का लालन पालन भी किया है, अतः इसे तिलकमञ्जरी की धात्री होने का गौरव भी प्राप्त है।[137]

यह चित्रकला में प्रवीण है।[138] जब पत्रलेखा को ज्ञात होता है कि कोई भूलोकवासी राजकुमार ही तिलकमञ्जरी का वरण करेगा, तो पत्रलेखा पृथ्वीवासी राजकुमारों के चित्र बनाने के कार्य में इसे ही नियोजित करती है।[139]

यह श्रृङ्गार कार्य में भी निपुण है। महावीर जिन के अभिषेकोत्सव में नृत्य के लिए अपहृत राजकन्याओं का श्रृङ्गार चित्रलेखा ही करती है।[140] विचित्रवीर्य भी इसके श्रृङ्गार कार्य की प्रशंसा करता है।[141] यह बुद्धिमती भी है। यह अपनी मीठी वाणी से सभी को अपने वश में कर सकती है। विचित्रवीर्य इसके वाक्चातुर्य की भी प्रशंसा करते है।[142] पत्रलेखा की बाल सखी होने के कारण व स्वामिभक्ता होने के कारण इसे विचित्रवीर्य का विश्वास भी प्राप्त है। इसलिए गन्धर्वदत्ता का सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने के लिए वह ही इसे नियुक्त करते हैं।[143]

बन्धुसुन्दरी

बन्धुसुन्दरी मलयसुन्दरी की प्रिय सखी है। मलयसुन्दरी बड़े विश्वास से अपनी सभी बातें इससे करती है। वह समरकेतु के प्रति अपने प्रेम का रहस्योद्घाटन भी इसके समक्ष कर देती है।[144] जब मलयसुन्दरी प्रिय को स्मरण करके व्याकुल होती

137. ति.म., पृ. 170
138. सखि चित्रलेखे ! त्वं हि चित्रकर्मणि परं प्रवीणा .... । वही, पृ. 117
139. वही, पृ. 170
140. वही, पृ. 269
141. चित्रलेखे ! त्वं हि वत्सायाः पत्रलेखायाः परं प्रसादभूमिः प्रधानसैरन्ध्री स्वकर्मकौशलेन कृत्स्नेऽपि जगति लब्धपताका जानासि विविधाभिर्भङ्गिभिरलंकर्तुमित्यनकशः श्रुतमस्माभिः । वही, पृ. 267-68
142. वही, पृ. 268
143. वही, पृ. 274
144. वही, पृ0 294

हैं, तब यही उसे आश्वासन देती है कि आपका समरकेतु से अवश्य मिलन होगा।[145]

यह कथा कुशला भी है। जब मलयसुन्दरी यह सोचकर दु:खी होती है। कि जाने किस प्रकार उसका समरकेतु से मिलन होगा, तब यह अनेक प्रेमी युगलों के अकस्मात् मिलन की कथाएँ सुनाकर उसके सन्ताप को कम करती है।[146]

यह मलयसुन्दरी की सच्ची सखी है। यह उसके दु:ख से दु:खी व उसकी प्रसन्नता से स्वयं को प्रसन्न अनुभव करती है। जब यह वज्रायुध के भय से मलयसुन्दरी को प्राण त्यागने के लिए अशोक वृक्ष से लटकते देखती है, तो इसके प्राण ही सूख जाते है और यह बहुत विलाप करती है।[147] उसे बचाने के लिए पूरा प्रयत्न करती है। उसके मृत्युपाश को काटने के लिए एक राजकुमार को सहायक बनाकर ले आती है। जब मलयसुन्दरी प्रसन्न होकर यह बताती है कि मृत्युपाश काटने वाला राजकुमार ही उसका प्रिय समरकेतु है तो यह अत्यधिक प्रसन्न होती है तथा मलयसुन्दरी का हाथ उसके हाथ में दे देती है। यह प्रत्युत्पन्न मति है। यह मलयसुन्दरी के मुखभावों व चित्तवृत्ति से समझ जाती है कि वह आत्महत्या का प्रयत्न कर सकती हैं।[148] यह परिस्थितियों को रुख भांपकर कार्य करती है।

परिस्थितियों के अनुरूप यह मलयसुन्दरी को वज्रायुध से विवाह करने के लिए समझाती है। परन्तु जब इसे अपने प्रेम की रक्षा के लिए आत्मघात को तत्पर देखती है तो सम्पूर्ण वृत्त उसकी माता गन्धर्वदत्ता को सुनाकर इसका उपकार करती है।[149] अकस्मात् ही राजकुमार समरकेतु के आ जाने पर यह उसे मलयसुन्दरी को रात्रि में ही स्वदेश ले जाने के लिए कहती है।[150] इस प्रकार यह सदैव अपनी सखी मलयसुन्दरी के हितचिन्तन में ही रत दिखाई देती है।

---

145. भर्तृदारिके ! विदितं मया ते शोक कारणम्। अनाकुलास्स्व। भविष्यत्यवश्यं तव तेन नरपतिसूनुना सह समागमप्राप्ति:। ति. म.,पृ. 294
146. वही, पृ. 298
147. वही, पृ. 307-308
148. वही, पृ. 314
149. वही, पृ. 327
150. वही, पृ. 325

मृगाङ्कलेखा

यह तिलकमञ्जरी की प्रिय सखी व दासी है। इसे अन्तःपुर में अत्यधिक सम्मान प्राप्त है। इसे हरिवाहन के प्रति तिलकमञ्जरी के गाढ़ अनुराग का पूर्ण ज्ञान है। जब हरिवाहन तिलकमञ्जरी का अतिथि बनकर रथनूपुरचक्रवाल नगर आता है तो यह बड़े मनोयोग से उसकी सेवा करती है। यह अपनी मीठी बातों और अक्ष क्रीड़ा आदि से उसका मनोरंजन करती है।[151]

तरङ्गलेखा

यह गन्धर्वदत्ता की बालसखी है। इसे मलयसुन्दरी के साथ उसकी देखभाल के लिए प्रशान्तवैर नामक तपस्वी के आश्रम में भेजा जाता है।[152]

चतुरिका पत्रलेखा की दासी है। जिसे वह आश्रमवासिनी मलयसुन्दरी की सेवा में नियुक्त करती है।[153]

इस प्रकार धनपाल ने कुशलतापूर्वक पात्रों का चयन कर उनके चारित्रिक सौन्दर्य को सफलतापूर्वक उभारा है। सभी पात्र अपने-अपने कार्य की प्रकृति के अनुरूप गुणों से युक्त हैं।

---

151. ति.म., पृ. 370-374
152. वही, पृ. 330
153. वही, पृ. 344

पञ्चम अध्याय

तिलकमञ्जरी में रस

- रस
- शृङ्गार रस
- अद्भुत रस
- करुण रस
- वीर रस
- रौद्र रस
- भयानक रस
- शान्त रस

रस

काव्य रस में को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। रस के बिना काव्य में सौन्दर्य नहीं रहता क्योंकि, काव्य में रस का ही आस्वादन होता है। रस का व्युत्पत्तिपरक अर्थ भी इसी तथ्य को प्रकट करता है – 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाए या जो आस्वादित हो, वही रस है काव्य में रस आस्वादन जन्य आनन्द का वाचक है। रस इन्द्रियों का विषय न होकर हृदय का विषय है। मम्मट ने रसास्वादन से उत्पन्न परम आनन्द को काव्य प्रयोजनों में सर्वश्रेष्ठ माना है।[1]

रस में स्थायी भावों का ही आस्वादन होता है। विभावादि भावों से परिपुष्ट होकर स्थायी भाव रस रूप में आस्वादित होता है। रस सदैव व्यंग्य रूप होता है। विभावादि के कथन से ही रस की अनुभूति होती है। आचार्य मम्मट के अनुसार लोक मे रति आदि स्थायी भाव के जो कारण कार्य और सहकारी होते हें, वे ही काव्य या नाट्य में विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भाव कहलाते है। उन विभावादि से व्यक्त वह रति आदि रूप स्थायी भाव रस कहलाता है।[2] आचार्य भरत का मत है कि जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यञ्जनों से सुसंस्कृत अन्न को ग्रहण कर पुरुष रसास्वादन करता हुआ प्रसन्नचित होता है, उसी प्रकार अनेक भावों तथा अभिनयों द्वारा व्यञ्जित वाचिक, आंगिक एवं सात्विक भावों से युक्त स्थायी भाव का आस्वादन कर सहृदय प्रेक्षक आनन्द प्राप्त करते हैं।[3]

साधारण शब्दों में आलम्बन के द्वारा उद्भूत होकर उद्दीपन विभाव द्वारा उद्दीप्त होकर, अनुभाव के द्वारा प्रतीति योग्य बनकर व व्याभिचारी भावों से परिपुष्ट होकर स्थायी भाव रस रूप में आस्वादित होता है। रसानुभूति में कारण,

---

1. सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादन–समुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम्। का.प्र.,पृ.10.
2. कारणान्यथ कार्याणि सहकारिणि यानि च।
   रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्न नाट्यकाव्ययो : ।।
   विभावानुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
   व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः।। वही, 4/27, 28
3. यथा हि नानाव्यञ्जनसंस्कृतमन्नं भुञ्जाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषाः हर्षादीश्चाधिगच्छन्ति तथा नानाभावाभिनयव्यञ्जितान् वागङ्गसत्त्वोपेतान् स्थायीभावानास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षका हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति । ना. शा., 6/32, 33

कार्य और सहकारी पृथक-पृथक् है तथापि इनकी प्रतीति-सामूहिक रूप से होती है। जिस प्रकार प्रपाणक रस में अनेक प्रकार के पृथक्-पृथक् स्वाद वाले तत्त्व होते हैं, परन्तु उनका सामूहिक स्वाद विलक्षण होता है उसी प्रकार रस प्रतीति के समय विभाव, अनुभाव व व्याभिचारी भावों की प्रतीति पृथक् रूप में न होकर सामूहिक रूप में होती है।

किसी तत्त्व के सम्पर्क में आने पर चित्त मे जो प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, उसे भाव कहते हैं अर्थात् चित्त के विकार को 'भाव' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। ये चार प्रकार के होते हैं- विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव तथा स्थायी भाव। रस के प्रसङ्ग में मन के विकारों (विभाव, अनुभाव, व्याभिचारी व स्थायी भाव) का संक्षिप्त विवेचन अपेक्षित है जिससे शोध प्रबन्ध के अध्ययन कर्ताओं को किसी प्रकार के व्यवधान का सामना करना पड़े। प्रत्येक रस के पृथक्-पृथक भाव होते है, उनका वर्णन उस-उस रस के प्रसङ्ग में किया जाएगा।

विभाव रसानुभूति के कारण कहलाते हैं। ये स्थायी भावों के उद्बोधक होते है।[4] विभाव दो प्रकार के होते हैं - आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव। जिसका आश्रय लेकर रस की निष्पत्ति होती है, उसे आलम्बन विभाव कहते हैं। उदाहरणार्थ नायिका को देखकर नायक के मन में और नायक को देखकर नायिका के मन में रति उत्पन्न होती है अतः ये आलम्बन विभाव है। इन को देखकर ही सामाजिक के हृदय में रस का संचार होता है। प्रत्येक रस के आलम्बन पृथक्-पृथक् होते हैं अतः इनकी संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती। जो कारण स्थायी भाव को उद्दीप्त करते हैं, उन्हें उद्दीपन विभाव कहते हैं।[5] देश, काल आदि के अनुसार प्रत्येक रस के उद्दीपन विभाव भी अलग-अलग होते हैं। यथा चाँदनी, उपवन, पुष्प, एकान्त आदि रति के उद्दीपन विभाव है।

हृदयस्थित भावों का अभिव्यक्त बाह्य रूप ही अनुभाव है। विभाव के अनन्तर होने के कारण इन्हें अनुभाव कहा जाता है। अनु पश्चाद् भवन्ति इति अनुभावाः। आलम्बन और उद्दीपन विभावों के अनन्तर आङ्गिक वाचिकादि अभिनयों से उद्बुध रति आदि का बाहर प्रकाशित रूप ही काव्य और नाट्य में

4. रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः - सा. द., 3/29
5. उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये । वही, 3/131

अनुभाव कहलाता है।[6] ये ऐसी चेष्टाएँ होती हैं, जिनसे आश्रय का मनोगत भाव अभिव्यक्त होता है। अनुभाव तीन प्रकार से अभिव्यक्त होते हैं -कायिक, वाचिक, और सात्त्विक। कटाक्ष आदि आङ्गिक चेष्टाएँ कायिक अनुभाव कहलाती हैं। वाणी द्वारा प्रकाशित चेष्टाएँ वाचिक अनुभाव कहलाती हैं तथा शरीर में अनायास उत्पन्न होने वाले भावों को सात्विक अनुभाव कहते हैं।

मन की अस्थिर चित्त वृत्तियों को व्यभिचारी भाव या सञ्चारी भाव कहते हैं। जिस प्रकार महासागर में लहरें उठती-गिरती रहती है उसी प्रकार सञ्चारी भाव स्थायी में उठते-गिरते रहते है। विविध रसों के अनुकूल होकर संचरण करने के कारण इन्हें सञ्चारी भाव कहा जाता है। इनकी संख्या 33 मानी गई है।

स्थायी भाव ऐसे भाव होते हैं, जिनको विरुद्ध या अविरुद्ध भाव न दबा सकें और जो रसास्वादन पर्यन्त विद्यमान रहे।[7] यह चित्त का स्थिर विकार होता है। प्रत्येक रस का एक ही स्थायी भाव होता है। स्थायी भाव ही रस का मूल है, जो सामाजिक के हृदय में वासनात्मक रूप में अवस्थित रहता है तथा काव्य में रसानुकूल विभावादि सामग्री को पाकर रस रूप में परिणत हो जाता है और सामाजिक को अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है। आचार्य भरत ने आठ स्थायी भावों का वर्णन किया है[8] क्योंकि नाट्य में आठ रसों को स्वीकार किया गया है - रति, हास, शोक, क्रोध उत्साह, भय, जुगुप्सा और आश्चर्य । इनसे सामाजिक को क्रमशः शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, विभत्स और अद्‌भुत रस की अनुभूति होती है। परवर्ती आचार्यों जैसे आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ प्रभृत्ति आचार्यों ने इन आठ रसों के साथ शान्त को नौवाँ रस माना है तथा निर्वेद को इस रस का स्थायी भाव।[9] इसलिए आचार्य मम्मट ने ग्रन्थारम्भ में ही कवि की सृष्टि को नौ रसों से युक्त कहा है[10] और ये रस केवल आनन्दमय ही होते है।

---

6. (क) उदबुधं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिभावं प्रकाशयन् ।
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यानाट्ययोः ।। सा. द. 3/132
(ख) रस सूत्र की व्याख्याएँ - डॉ. राजेन्द्र कुमार, पृ. 9
7. अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः ।
आस्वादाङ्कुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति संमतः ।। वही- 3/174
8. रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः ।। ना. शा. , 6/17
9. निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः। का. प्र., 4/47
10. नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।। वही, 1/1

धनपाल ने तिलकमञ्जरी में सभी मुख्य रसों की अभिव्यञ्जना की है। काव्य किसी भी विधा में क्यों न हो, उसमें अनेक रसों का समावेश होने पर भी अङ्गी रस एक ही होता है। अन्य रस उस अङ्गी रस का अन्य प्रकार से उपकार करते है तथा सहायक रस कहलाते है। तिलकमञ्जरी का अङ्गी रस शृङ्गार है अतः शृङ्गार का सर्वप्रथम विवेचन किया जा रहा है।

शृङ्गार रस

शृङ्गार रस तिलकमञ्जरी का अङ्गी व प्रधान रस है। शृङ्गार का स्थायी भाव रति है। नायक व नायिका इसके आलम्बन विभाव तथा चन्द्रमा, उद्यान, चन्दन, ऋतु आदि उद्दीपन विभाव होते है। स्वेद, रोमाञ्च तथा कटाक्ष आदि अनुभाव होते है तथा उत्कण्ठा, आलस्य, हर्ष, आवेग, चपलता, उन्माद, सिहरन, लज्जा आदि व्यभिचारी भाव होते है। शृङ्गार रस के दो भेद होते हैं - सम्भोग शृङ्गार तथा विप्रलम्भ शृंगार।

एक-दूसरे के प्रेम से युक्त नायक और नायिका जहाँ परस्पर दर्शन व स्पर्शादि करते है, वहाँ सम्भोग (संयोग) शृङ्गार होता है।[11] परस्पर अवलोकन, स्पर्शन, आलिङ्गन, चुम्बन आदि के प्रकारों से इसके अनन्त भेद हो जाते है। इन भेदों की गणना सम्भव न हो सकने के कारण इसे एक ही गिना जाता है। जब अनुराग अति उत्कट हो परन्तु प्रिय संयोग न हो तो उसे विप्रलम्भ (वियोग) शृङ्गार कहते है।[12] विप्रलम्भ शृङ्गार के पाँच भेद है - अभिलाष विप्रलम्भ, ईर्ष्या विप्रलम्भ, विरह विप्रलम्भ, प्रवास विप्रलम्भ व शाप विप्रलम्भ। साहित्यदर्पणकार ने इसके चार ही भेद माने हैं।[13] अभिलाष विप्रलम्भ शृङ्गार वह है जब सौन्दर्य आदि गुणों के श्रवण अथवा दर्शन से नायक अथवा नायिका उसमें अनुरक्त हो गये हों, परन्तु उन्हें समागम का अवसर न प्राप्त हुआ हो अथवा समागम हो जाने के पश्चात् किसी कारणवश समागम का अभाव, विरह विप्रलम्भ शृङ्गार कहलाता है। समीप रहने पर भी किसी मान आदि के कारण समागम का अभाव, ईर्ष्या विप्रलम्भ कहलाता है। प्रवास व शाप के निमित्तवश समागम का अभाव

11. दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ ।
यात्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः ।। सा. द. - 3/210
12. यत्र तु रति प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भऽसौ - वहीं 3/18
13. वही, 3/187

क्रमशः प्रवास विप्रलम्भ शृङ्गार तथा शाप विप्रलम्भ शृङ्गार कहलाता है। तिलकमञ्जरी प्रेम कथा है। इसमें सर्वत्र शृङ्गार रस व्यञ्जित होता है।

सम्भोग (संयोग) शृङ्गार

तिलकमञ्जरी में अनेक स्थलों पर सम्भोग शृङ्गार की अनुभूति होती है। सम्भोग शृङ्गार का सर्वप्रथम दर्शन तारक प्रियदर्शना के प्रसङ्ग में होता है। व्यापार निमित्त रङ्गशाला नगरी में आए हुए तारक को देखकर नाविकों के नायक जलकेतु की पुत्री प्रियदर्शना उसमें अनुरक्त हो जाती है –

दृष्टश्च स तथा प्रथमदर्शन एव रूपातिशयदर्शनारूढ़दृढ़तरानुरागया सस्पृहमुपनीतोपायना च स्थित्वा किञ्चित् कालं कृतप्रत्युपचारा तेन पुनर्गता स्वसदनम्, अनुरागप्रेरिता च तद्दर्शनाशया तैस्तैर्व्यपदेशैरागन्तुमारब्धा प्रतिदिनम्। एकदा तु तदीयसौधशिखरशालायां सख्या सह क्रीडन्त्याः सविधमागतोऽसौ, दद्दर्शनोपारूढसाध्वसा च सत्वरं व्रजन्ती वेपथुविशृङ्खलैः पदैः परिस्खलिता कुट्टिमतले, पतन्त्याश्च तस्याः सोपानपथसंनिधौ सत्वरमुपेत्य तेनावलम्बितः ... दक्षिणः पाणिः प्रयुक्तपाणिना च मधुरमभिहिता स्मितमुखेन–'सुमुखि किमिदं समेऽपि स्खलनत्, अलममुना संभ्रमेण ... गच्छ गेहम्' इति। सा तु तत्करग्रहणसमकालमेवोत्थितेन सरभसाकृष्टधनुषा कुसुमसायकेन कृतसाहायकेनेव दुरमपसारितसाध्वसा सविभ्रमोल्लासितैकभ्रुवा गुरुणेव नवानुरागेण कारितप्रगल्भकलालापपरिचया चिरकाललब्धावसरया विदग्धसख्येव तत्समागमतृष्णया स्थापिता स्वयं दूतीव्रतविधौ निसर्गमुग्धापि प्रौढवनितैव किञ्चिद् विहस्य वचनमिदमुदीरितवती– 'कुमार! त्वया गृहीतपाणिः कथमहं विसंस्थूलीभूतमात्मानं संवृणोमि, कथं च गेहादितो गृहान्तरं गच्छामि, साम्प्रतमिदमेव मे त्वदीयं सदनमाश्रयः संवृतः' इत्युक्त्वा त्रपावनतवदना पुरःप्रसृतधवलनखमयूरखोद्द्योतया तदीयवक्रालापश्रवणजाताहसयेव वामचरणाङ्गुष्ठलेखया मन्दमन्दमलिखत् कुट्टिमम्। असावपि युवा तेन तस्याः स्मरविकारदर्शनेन, तेन तत्कालमतिशयस्पृहणीयतां गतेन रूपलावण्यादिगुणकलापेन, तेनामृतस्यन्दशीतलेन करतलस्पर्शेन, तेन च प्रकटित गुणानुरागेण निपुणतया वचनभङ्ग्या कृतेनात्मसमर्पणेन परमरंस्त। पृ. 127–128

इस गद्य का अर्थ पढ़ते ही सरलता से हृदय में प्रकाशित हो रहा है तारक और प्रियदर्शना के हृदयों में अंकुरित प्रेम, पौधे के रूप में अपना आकार प्राप्त कर

रहा है। यहाँ पर तारक और प्रियदर्शना परस्पर आलम्बन विभाव हैं। स्पर्श (पाणीग्रहण) उद्दीपन विभाव है। भ्रूँ विक्षेप और कम्पन अनुभाव तथा लज्जा, रोमाञ्च आदि सञ्चारी भाव हैं।

मलयसुन्दरी के आश्रम में हरिवाहन और तिलकमञ्जरी की भेंट संयोग शृङ्गार का उत्तम उदाहरण है। इससे पूर्व इलाइची लता मण्डप में हरिवाहन को देखकर तिलकमञ्जरी उसमें आसक्त हो जाती है और जब उसे यह ज्ञात होता है कि हरिवाहन मलयसुन्दरी का अतिथि बनकर उसके आश्रम में रह रहा है, तो वह उससे मिलने के लिए वहाँ जाती है। मलयसुन्दरी जब उसे हरिवाहन का परिचय देती है तो तिलकमञ्जरी के तृषार्त चक्षु प्रिय दर्शन के अवसर का लाभ उठाने लगते है –

सलीलपरिवर्तितमुखी तत्क्षणमेव सा तीक्ष्णतरलायतां बाणवलीमिव कुसुमबाणस्य, विवृत्तवालशफरस्फारसंचारां तरङ्गमालामिव शृंङ्गारजलधेः, धवलीकृतदिगन्तां ज्योत्स्नामिव लावण्यचन्द्रोदयस्य, धैर्यध्वंसकारिणीमुल्कामिव रागहुतभुजः संभ्रमोल्लासितैकभ्रूलतामाज्ञामिव यौवनयुवराजस्य, मुकुलितां मदेन, विस्तारितां विस्मयेन, प्रेरितामभिलाषेण, विषमितां व्रीडया, वृष्टिमिवामृतस्य, सृष्टिमिवासौख्यस्य प्रकृष्टान्तःप्रीतिशंसिनीं वपुषि में दृष्टिमसृजत्। पृ. 362

तिलकमञ्जरी का हरिवाहन के प्रति प्रेम उसकी क्रियाओं से स्फुट हो रहा है। वह अपने प्रेमपात्र व अपनी अपनी सखी के अतिथि हरिवाहन की अतिथि योग्य समुचित उपचार क्रियाओं को करती है और अपने हाथ से ही उसे पान देती है। अपने प्रिय को पान देते हुए वह लजाकर अपना मुख नीचे कर लेती है –

तिलकमञ्जरी तु किञ्चिदुपजातवैलक्ष्या क्षणमधोमुखीभूय विहिताकार संवृतिरधःकृत्य साध्वसमवलम्ब्य धैर्यमुपसार्य विभ्रमं निरस्य मनसिजोल्ला समवधार्य दूरारूढ़मात्मानः प्रभुत्वमालोच्य च सतामौचित्यकारितामतिप्रागल्भ्ये वतिर्यक्प्रसारितभुजलतासरलसुकुमारारुणाङ्गुलीपरिगृहितमुदधिवेलेव विद्रुमकन्दली वयितमुदग्रमभिनवं शंखमादाय ताम्बूलदायिकाकरतलादन्तःस्फुरद्भिः स्फटिकधवलैर्नखमयूखनिर्गमैर्द्विगुणीकृतान्तर्गतस्थूलकर्पूरशकलं स्वहस्तेन ताम्बूलमदात्। – पृ. 363

प्रेमानुरक्त लोगों की क्रियाएँ असाधारण हो जाती है। तिलकमञ्जरी तो इलाइची तलामण्डप में हरिवाहन को देखकर अपना सर्वस्व ही उसे दे बैठी थी।

मलयसुन्दरी के आश्रम में पुनः मिलन ने उसे रोमाञ्चित कर दिया है। उसको देखकर उसकी मनः स्थिति का ज्ञान सहज ही हो जाता है। प्रिय उसके समक्ष बैठे हैं इसलिए संकोच और लज्जा का अनुभव भी हो रहा है तथापि मर्यादा में रहकर उसे अपने अतिथि का सत्कार भी करना है। वह भरसक प्रयत्न करते हुए अपनी भावनाओं और मन को वश में करके हरिवाहन को पान देकर उसका सत्कार करती है। इस प्रकार की मनःस्थिति को व्यञ्जित करना सरल कार्य नहीं है परन्तु धनपाल ने अत्यन्त सहज ढंग से इससका चित्रण कर अपने काव्य कौशल का परिचय दिया है।

विप्रलम्भ शृङ्गार

प्रियतम से प्रियतमा के वियोग को ही विप्रलम्भ कहते हैं। जिस प्रकार सोना आग पर तपाने से निखर जाता है, उसी प्रकार प्रेम भी वियोग रूपी आग पर तपकर निखरता है। जिस प्रकार भूख से व्याकुल व्यक्ति को भोजन अत्यधिक आनन्दित करता है। उसी प्रकार लम्बे वियोग के पश्चात् मिलन का आनन्द विलक्षण ही होता है। प्रेम विरह वेदना से तपकर ही अपने सच्चे स्वरूप को प्राप्त करता हैं।[14] मेघदूत का यक्ष तो प्रियतमा के विरह से दुःखी होकर अचेतन मेघ को दूत बनाकर अपना संदेश अपनी प्रियतमा को प्रेषित करता है।[15] जो विरह वेदना से जितना पीड़ित होता हैं, उसे उतना ही अधिक मिलन सुख प्राप्त होता है। विरह की तपन भी अन्ततोगत्वा आनन्द को प्रदान करती है अतः वह प्रेम को कम नहीं करती अपितु उसे और बढ़ाती है। इसी कारण से काव्यकार अपने काव्य में सम्भोग शृङ्गार को ईप्सिततम् बनाने के लिए काव्य में विप्रलम्भ शृङ्गार की हृदयस्पर्शी अभिव्यंजना कराते हैं। महाकवि धनपाल ने भी अपनी काव्यकृति तिलकमञ्जरी में संयोग शृङ्गार के परिपाक के लिए विप्रलम्भ शृंगार का सफल संयोजन किया है।

धनपाल ने हरिवाहन के तिलकमञ्जरी और समरकेतु के मलयसुन्दरी से वियोग की अभिव्यञ्जना इतनी सफलतापूर्वक करवाई है कि सहृदय उनकी वेदना

---

14. न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते ।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रोगोऽनुषज्यते ।। स. क., 5/52

15. कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेताचेतनेषु । मेघ., पूर्वमेघ-5

को अपने अन्तर्मन में अनुभव करता है। प्रिय से विरहित तिलकमञ्जरी और मलयसुन्दरी की अन्तर्दशा व अवस्थाओं को भी धनपाल ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक संयोजित किया है। तिलकमञ्जरी कथा से विप्रलम्भ शृङ्गार के उदाहरण प्रस्तुत हैं -

सर्वप्रथम विप्रलम्भ शृङ्गार की अभिव्यञ्जना उस समय हुई है जब गन्धर्वक के द्वारा बनाए गए तिलकमञ्जरी के चित्र को हरिवाहन देखते हैं और उसके अनिन्द्य सौन्दर्य को देखकर उस पर आसक्त हो जाते हैं-

तत्क्षणमेव विस्तारिते पुरस्तात् तत्र (चित्रपटे) निहितदृष्टिरत्युत्कृष्टरूपां रूपिणीमिव भगवतो मन्मथस्य जयघोषणामुदारवेशसविशेषचारुगात्री मचिरप्राप्तयौवनां कन्यकारूपधारिणीमेकां चित्रपुत्रिकां ददर्श। विमदर्श चादृष्टपूर्वाकृतिविशेषदर्शनदूरविकासत्तारया दृशा त्रिभुवनातिशायिनीमस्याः शरीरवयवसमुदायचारुतामतिचिरम्। अनुपरतकौतुकश्च मुहुः केशपाशे, मुहुर्मुखशशिनि, मुहुरधरपत्रे, मुहुःकण्ठकन्दले, मुहुः स्तनमण्डले, मुहुर्मध्यभागे मुहुर्नाभिचक्राभोगे, मुहुर्जघनभारे, मुहुरूरुस्तम्भयोः, मुहुश्चरणवारिरुहयोः, कृतारोहवरोहया दृष्ट्या तां व्याभावयत्। पृ. 162

यहाँ तिलकमञ्जरी के प्रति हरिवाहन के मन में प्रेमाङ्कुर फूट पड़ता है। जब गन्धर्वक तिलकमञ्जरी के वंश आदि का परिचय देता है, तब हरिवाहन उसे पाने के लिए लालायित हो उठता है। गन्धर्वक भी हरिवाहन के मनः स्थिति को समझ लेता है और उसकी सहायता के लिए पुनः आने का वायदा करके चला जाता है, परन्तु किसी विपत्ति के कारण लौट नहीं पाता। गन्धर्वक के जाने के बाद तिलकमञ्जरी के लिए उसकी मनःस्थिति को देखिए। यहाँ से विप्रलम्भ शृङ्गार की रसधारा फूट पड़ती है। विप्रलम्भ शृङ्गार की इस अवस्था को ही काव्यशास्त्रियों व आचार्यों ने अभिलाष विप्रलम्भ या पूर्वराग विप्रलम्भ कहा है -

तस्य (वासभवनस्य) चैकदेशे निवेशितमायतविशालं ... अव्याकुलेन चेतसा संस्मृत्य गन्धर्वकालापमुपजातविस्मयश्चिन्तिवान्- अहो काप्यद्भुता तस्याश्चक्रसेनदुहितुः शरीरावयवशोभासंपत्तिर्यस्मात्त्रिभुवनातिशायिरूपापि तत्प्रतिकृतिरियं चित्रपटगता रूपलव इति निवेदिता तेन विद्याधरदारकेण। यदि च सत्यमेव तस्यात्रस्तमृगदृशस्तादृशं रूपं ततो जितं जगति विद्याधरजात्या। न जाने कस्य संचितकुण्ठतपसः कण्ठकाण्डे करिष्यति पतिष्यन्त्यास्तद्भुजल तायाः

प्रथमसूत्रपातमम्लानमालतीकुसुमकोमल: स्वयंवरस्रज:। कस्त्रिभुवन–श्लाघ्यचरितस्तदध्यासितमधिष्ठितो गजस्कन्धपीठमाकण्ठ मुक्तानिततरलतारै: पीयमानवदनलावण्यो नगरनारी लोचनैरवतरिष्यति विवाहमण्डपे वेदीबन्धम्। कस्य कन्दर्पबान्धवस्य तत्क्षणाबद्धकम्पखिन्न सरलाङ्गुलौ तदीयकरपल्लवे लगिष्यति श्लाघ्यशतपत्रशङ्खातपत्रलक्षणो दक्षिणपाणि:। पृ. 174

हरिवाहन अहर्निश तिलकमञ्जरी के विषय में ही चिन्तन करने लगता है। वह बन्द नेत्रों से भी चित्रगत तिलकमञ्जरी के सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण करता है। वह तिलकमञ्जरी को पाने के उपायों और अपायों के मध्य झूलता रहता है –

अधन्य: खेचरगणो य: प्रकाममनुरक्तोऽपि दूरवर्ती दृष्टिपातामृतरसस्य रूपमात्रदर्शनतरलितो वृथैव मन्मथव्यथामहमिवोद्वहति। अहो मे मूढ़ता, यदसावयतेक्षणा भूमिगोचरनृपाधिपात्मजप्रणयिनि भविष्यतीति वार्तयापि श्रुतया हर्षमुद्वहामि। सत्स्वपि रूपलावण्ययौवनशालिष्वपरेषुभूपालदारकेषु कालान्तरभुवस्तदनुरागस्यात्मानमेव लक्षीकरोमि। क्वाहम्, क्व सा, क्व भूमिगोचरस्य निकेतनं साकेतनगरम्, क्व दिव्यसङ्गसमुचिताचलप्रस्थसंस्थं रथनूपुरचक्रवालम्। अपि च विवेकिना विचारणीयं वस्तुतत्त्वम्, नोज्झितव्यो निजावष्टम्भ:, स्तम्भनीयं मन: प्रसरदपथे, न देयमग्रणीत्वमिन्द्रियगणस्येत्यापि न गणयामि। असौ पुनरपरा विडम्बनायदयमात्मा मदनदाहोपशमाय प्रशममार्गभवतारितोऽप्यधोगतिं रागिणस्तदङ्घ्रियुगलस्यालोचयति न प्राणिजातस्य ... मधुरं मुखे तदधरप्रवालं ध्यायति न भोगसौख्यम्। युगान्तविलुलितक्षीरसागरसमं तदक्षिविस्तारमुत्प्रेक्षते न संसारम्। आरोपितानङ्गचापभङ्गुर तद्भ्रूलताललितमध्येति न विधेर्विलसितम्। अन्या अपि प्रकृष्टरूपलावण्यवत्य: प्राप्तयौवना दृष्टा: क्षितिपकन्या:। अन्यासामपि श्रुतस्तत्त्ववेदिभिरनेकधा निवेद्यमानो विलासक्रम:। न तु कयापि क्वाप्यपहृतं चेतो यथानया। कथमिदानीमासितव्यम्। किं प्रतिपत्तव्यम्। केन विधिना विनोदनीयेयमनुदिनं प्रवर्धमाना तद्दर्शनोत्कण्ठा। कस्यावेद–नीयमिदमात्मीयं दुखम्। केन सार्धमालोचनीयं कर्तव्यम्। कस्य क्रमिष्यते तद्देशगमनोपायेषु बुद्धि:। कस्य सहायकेन सेत्स्यति तया सह समागमप्राप्ति:। अपि नाम दैवमनुगणं स्यादेष्यति स विद्याधरदारक:। न विस्मरिष्यति परिचयम्। करिष्यति पक्षपातम्। द्रक्ष्यति मामिह स्थितम्। निर्वक्ष्यति वचनवृत्त्या स्वयं प्रतिपन्नमर्थम्। नेष्यति तदीक्षण्णगोचरप्रापणेन मत्प्रतिकृत्तिं कृतार्थताम्। कथयिष्यति

अतिशयेन मां गुणवन्तम्। सापि शशिमुखी तथेति प्रतिपत्स्यते तद्वचनम्। भविष्यति मदीयदर्शनाभिलाषिणी। प्रेषयिष्यति तमात्मानुरागप्रकटनाय मत्पार्श्वम्' इत्यनेकसंकल्पपयीकुलचेतसः ... प्रभातागमनपर्युत्सुकतया प्रदोषेऽपि नष्टनिद्रस्य निशिथेऽपि देवतार्चनाय परिचारकानुद्यमयतः शतयामेव कथमपि क्षपा विराममभजत। पृ. 174-177

तिलकमञ्जरी के चित्र दर्शन से कामदेव हरिवाहन के हृदय में प्रवेश का अवसर पा गया। हरिवाहन जितना तिलकमञ्जरी के विषय में चिन्तन करता है, उतना ही उसका कामज्वर बढ़ता जाता है। उसके व तिलकमञ्जरी के मिलन में गन्धर्वक ही एकमात्र सेतु है। गन्धर्वक के लौटने में विलम्ब के साथ-साथ, हरिवाहन की काम पीडा बढ़ती जाती है और तिलकमञ्जरी से मिलने की आशा धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है। उसकी आँखों के सामने सदा केवल तिलमकञ्जरी का प्रतिबिम्ब दिखाई देने लगता है -

गते च विरलतां विलीनतापे तपनतेजसितरलितस्तिलकमञ्जरीसंगमाभिलाषेण तत्कालसमुपस्थिता वधेर्गन्धर्वकस्याग मनमार्गमवलोक यितुमभ्यग्रवर्तिनः शिखाग्रचुम्बिताम्बरक्रोडमाक्रीडशैलस्य शिखरमारुरोह। ... आसीनश्च शयने चिन्तयन्मुहूर्तमार्तेन चेतसा तस्य (गन्धर्वकस्य) विलम्बकारणनि कृच्छ्राप्तनिद्रो निशामनयत् । अपरेद्युरपि तेनैव क्रमेणोद्यानमगमत्। तेनैव विधिना तत्र सर्वाः क्रियाश्चकार। तथैव तस्यागमनमीक्षमाणे दिवसमनयत्। अकृतागतौ च तत्र क्रमादतिक्रामत्सु दिवसेषु शिथिलीभूततिलकमञ्जरीसमागमाशाबन्धस्य प्रबन्धविस्तारितोदग्रसंतापसंपद्यथोत्तरप्रथितदिवसायामदैर्ध्यमदुस्तरो निरन्तरप्रवर्तितोष्णवाष्पसंततिरपर इव निदाधसमयो जजम्भे। जनितनिर्भरव्यथस्तस्य दवथुरविरतं संस्मार सस्मरेण चेतसा चित्रपटपुत्रिकानुसारपरिकल्पितस्य चक्रसेनतनयातनुलतालावण्यस्य। सततमन्वचिन्त यच्चारुतामनुदिनोपचीयमानस्य तस्याः प्रथमयौवनस्य। यौवनोपचयपरिमण्डलस्तनमनङ्गवेदनोच्छेदनायेव सर्वदा हृदयगतमधत्त तद्रूपम्। आविष्कृतानेकभावविभ्रमाणि लिखितानीव केनापि निपुणचित्रकरेण दिग्भित्तिषु दिवानिशं ददर्श तस्याः प्रतिबिम्बानि। दृष्ट्वा च तमकाण्डवैरिणा मनमथेन घर्मर्तुना च युगपदुपताप्यमानमुत्पन्नानुकम्पो निर्वापयितुमिव चक्रे

जगत्यामवतारमखिलविश्वोपकारी वारिदागमः। ... विकसिताकुण्ठकलकण्ठचातककलकले कठोरदुर्दरारटितदारितश्रवसि विश्रुतापारवाहिनीपूरघूत्कारे घोरघनगर्जितारावजर्जरितरोधसि द्योतमानविद्युद्दामदारुणेविततवारिधारा-धोरणिध्वस्तधीरकामुकमनसि सान्द्रकुटजद्रुमामोदमूर्छितागच्छन्नदुच्छन्न-कल्पाध्वगकलापे समन्ताद्विजृम्भितेम्बुधरदुर्दिनेविधुरीभूतमनसः कोसलाधिपसुतस्य ... श्रमेऽप्यायतोष्णान् पुनः पुनः श्वासपवनानमुञ्चतः, परमचिन्तायासजन्मना प्रचीयमानेनानुदिनमप्रतिविधेयेन देहक्रशिम्ना कदर्थ्यमानस्य ग्रीष्मकालादधिकदुःसहो बभूव वर्षासमारम्भः। पृ. 178-181

यहाँ पर पूर्वराग (अभिलाष) विप्रलम्भ की अभिव्यञ्जना हुई है। नायिका तिलकमञ्जरी आलम्बन विभाव है तथा नायक हरिवाहन आश्रय है। वर्षा ऋतु उद्दीपन विभाव है। तिलकमञ्जरी के प्रति उसकी व्याकुलता, व्यग्रता, उसके लिए उष्ण श्वास आदि छोड़ना व उसकी चिन्तन करते हुए पूरी-पूरी रात बिता देना अनुभाव है। तिलकमञ्जरी के साथ संगम के उपायों की चिन्ता, आशा-निराशा, तर्क-वितर्क, उत्कण्ठा आदि व्याभिचारी भाव है।

गन्धर्वक की प्रतीक्षा करते-करते ग्रीष्म ऋतु बीत गई और वर्षा ऋतु भी आकर हरिवाहन के सन्ताप को और अधिक बढ़ाकर चली गई। शरद् ऋतु भी आ गई, परन्तु हरिवाहन के संताप को शान्त करने वाला गन्धर्वक नहीं आया और धीरे-धीरे गन्धर्वक के प्रत्यागमन की आशा शून्य हो जाती है। वह अपना दिल बहलाने के लिए समरकेतु आदि कुछ मित्रों को साथ लेकर राज्यभ्रमण के लिए निकलता है। इसी बीच कुछ घटनाएँ शीघ्रता से घटित होती हैं और कुछ क्षणों के लिए हरिवाहन की तिलकमञ्जरी से भेंट होती है।

हरिवाहन की तिलकमञ्जरी से प्रथम भेंट वैताढ्य पर्वत पर स्थित अदृष्टपार सरोवर के निकट एक इलायची लतामण्डप में होती है। आरम्भ में हरिवाहन उसे पहचान नहीं पाता और अपना परिचय देकर उससे उसका परिचय पूछता है परन्तु तिलकमञ्जरी उसे देखकर घबरा जाती है और बिना उत्तर दिए वहाँ से चली जाती है। उसके जाने के पश्चात् हरिवाहन को तिलकमञ्जरी का वह चित्र यदि आ जाता है और अदृष्टपार नामक वह सरोवर भी याद आ जाता है। थोड़ा सा सोच-विचार और तर्क वितर्क करने के पश्चात् वह इस निर्णय पर पहुँच जाता है

कि वह कन्या तिलकमञ्जरी ही थी। यह निश्चय होते ही वह उसकी खोज में जाता है, परन्तु वह उसे नहीं मिलती। वह रात हरिवाहन वहीं पर अशोक वृक्ष के नीचे तिलकमञ्जरी के विषय में ही सोचते हुए बिताता है। यह विरह विप्रलम्भ शृङ्गार है क्योंकि हरिवाहन अब अपनी प्रियतमा के दर्शन कर चुका है –

तत्र च प्रथमदर्शनेऽपि सेयं चक्रसेनतनेयति यन्न निर्णीता व्रीडया साध्वसेन वा नेयमुत्तरं प्रयच्छतीति मन्यमानेन यन्न वारंवारमाभाषिता, विहाय रक्ताशोकविटपकं निकटदेशे कृतस्थिरावस्थाना यन्न करतलेनावलम्बिता, मुहुर्मुहुर्मुखावलोकनेन याचमाना निर्गमनवर्त्म यद्द्वारदेशादीषदपसृते नानुवर्तिता, स्पर्शशङ्काविवर्तिताङ्गलता विनिर्यती बहिर्यत्प्रसारितोभयभुजेन गाढंन परिरब्धा, लब्धसुरभिश्वासपरिमलने सविधमागतेऽपि वदनस्य परिणतबिम्बपाटलेऽधरमणौ यन्न परिचुम्बिता, गत्वा किञ्चिदनन्तरं विवर्तितमुखी मुहुर्मुहुर्लताजालकान्तरेण स्थित्वा- स्थित्वा तिर्यगवलोकयन्ती निर्भरानुरागापि भीतेति यत् संभविता मुग्धता, निराकृतोचित्तक्रियाप्रवृत्तिश्च निरनुरोधेति ज्ञातावज्ञेन यद् व्रजन्ती पृष्ठतो नानुसृता, तेनानेकजन्मान्तरसहस्रनिर्वर्तितेन महापातकसमुहेनेवात्यन्तमन्तरनुतप्यमानस्य, संतापवेदनाविनोदाय विहितैर्वारंवारमसमञ्जसैर्गात्रपरिवर्तनैर्व्यस्तशयनीयस्य ... निमीलितेक्षणस्य तां सर्वतो द्विक्षु पश्यतः चक्रवाकस्येवैकाकिनः सरस्तीरे निषण्णस्य, कुमुदखण्डस्येव क्वणद्भिरलिकुलैराकुलीकृतस्य इन्दुना शमितनिद्रस्य मम दर्शनादुदीर्णदुःसहोद्वेगेव दूरानतविपाण्डुशशिमण्डलानना श्रयमगाद् रजनी। पृ. 252-53

तिलकमञ्जरी के चित्रदर्शन मात्र से ही हरिवाहन अपने हृदय पर नियन्त्रण खो बैठा था और फिर एलालता मण्डप में तिलकमञ्जरी के साक्षात् दर्शन ने हरिवाहन को पुनः व्याकुल कर दिया। परन्तु अब यह प्रेम एकतरफा नहीं रह गया। हरिवाहन को देखकर तिलमञ्जरी के हृदय में भी कामदेव प्रवेश कर गया। एलालता मण्डप में हरिवाहन से अचानक हुई उस भेंट से वह कुछ हड़बड़ा जाती है और हरिवाहन के प्रश्नों का भी कोई उत्तर नहीं देती है तथा वहाँ से चली जाती है परन्तु जाते हुए वह कनटखियों से अनुरागपूर्ण दृष्टि से बार-बार हरिवाहन को निहारती है। एलालता मण्डप से निकल कर वह तमाल वृक्षों के झुण्ड के नीचे जाकर रुक जाती है और वहाँ लता जाल के मध्य से एलालता मण्डप की ओर बार-बार उद्विग्न होकर देखती है। यहीं पर वह हरिवाहन के प्रेम-पाश में बंध

जाती है। वह हरिवाहन की पुनः एक झलक पाने के लिए इधर-उधर देखती है, परन्तु उसके दिखाई न देने पर उसके लिए उद्विग्न हो जाती है –

विनिर्गत्यैलालतासदनाद्देवी तिलकमञ्जरी ...अवनतमुखी सलज्जेव नातिनेदीयसस्तमालतरुगुलमस्य मूले गतिविलम्बमकृत। स्थित्वा च तस्यान्तरेषु मुहूर्तमपशान्तसंततश्वासपवनोद्गमास्वेदसलिलार्द्रजघनमण्डलासक्तामादरेण निबिडीकृत्य विस्तनीविनिवसनं नियम्य चापरेण वैदग्ध्यशंसिना बन्धविन्यासेन सविलासमीषद्विवृतदोर्मूलपरिणाहाभ्यां बाहुलतिकाभ्याममन्दकुसुमामोदवासितवनानिलं शिथिलतामायातमलिनिकुरुम्बनीलं वालवल्लरी भारम विचलविधृतलोचनालताजालकान्तरेण प्रतीपमवलोकितवती। कृत्वा च क्षणेन जृम्भारम्भानिष्पतद्बष्पबिन्दुक्लिन्नलोचनापाङ्गभङ्ग प्रस्थिता। तदेव चकितचकिता लतालयनमुल्लासितस्तनांशुका च वारंवारमवलोकितकुसुमजालकालीकमेव कुर्वती मार्गलतासु कुसुमावचयमागता द्वारमस्य। स्थित्वा चात्र किंचित्कालमुद्विग्नमानसा तदासन्नवर्तिषु तरुस्तम्बेषु सत्वरा भ्रमितुमारब्धा। क्षणेन चारुह्य तुङ्ग सरस्तीरतटमेकमधिकविस्तारितेक्षणा प्रतिक्षणोदञ्चितमुखी दिङ्मुखानि प्रेक्षितुं प्रवृत्ता। .... नीता च निश्चितप्रकृतिविपर्यासभीतेनानिच्छुरपि गन्तुमन वरतविहिताभ्यर्थनेने स्वस्थानम्। तत्रापि सर्वदा शयनतलगता मुमुक्षुमतिरिव मन्दमप्यनभिनन्दितदिव्यरसपानभोजना, संनिपातविद्वैद्यवाणीव प्रकृष्टतापेऽप्यमनुपदिष्टशिशिरोपचारा, निदाघपरमावस्थेव सहचरीरप्यपश्यन्ती, भीरुपरिषदिव पृष्टाप्यरतिकारणमनोवेदयन्ती, चित्रज्ञमपि गतप्रज्ञ इति सावज्ञमवलोकयन्ती प्रियभाषिणोऽपि रोषमुद्वहन्ती, केवलं यस्तस्मात्सरस्तीरतटवनादागतो यस्तद्गन्ता यस्तदुत्पन्नां वार्तामकथयद्यश्च तद्गमनार्थमुद्यममककारयत्त्मेव परिजनं पार्श्वे कुर्वती तमेवालपन्ती तस्यैव वचनमवधारयन्ती प्राक्तनमहः स्थिता। पृ. 354-355

उपर्युक्त उद्धरण अभिलाष विप्रलम्भ श्रृङ्गार का उदाहरण है। यहाँ तिलकमञ्जरी आश्रय है तथा हरिवाहन आलम्बन विभाव है। एलालता मण्डप का वातावरण उद्दीपन विभाव है। हरिवाहन को देखकर शरीर में कम्पन होना, उसके लिए व्याकुलता तथा उद्विग्नता अनुभवा है। लज्जा, मोह, चिन्ता आदि सञ्चारी भाव हैं।

अब दोनों के हृदय में प्रेम दीप जल रहा है और दोनों एक-दूसरे से मिलना

भी चाहते हैं। उनकी यह संगमाभिलाषा मलयसुन्दरी के आश्रम में पूरी हो जाती है। परन्तु यह समागम लाभ अधिक समय तक नहीं मिलता। हरिवाहन को जब यह ज्ञात होता है कि समरकेतु उसके वियोग से पीड़ित होकर उसे खोजने के लिए कहीं चला गया है तो हरिवाहन समरकेतु को खोजने निकल पड़ता है। यहाँ से विप्रलम्भ शृङ्गार की रस धारा पुनः प्रवाहित होने लगती है। हरिवाहन के विरह में तिलकमञ्जरी के दिन अत्यधिक कठिनता से बीतते है। वह प्रतिदिन गन्धर्वक से हरिवाहन के विषय में पूछती रहती है कि तुम्हारी हरिवाहन से किस प्रकार भेंट हुई और तुमने कैसे हरिवाहन को मेरा चित्र दिखाया ?इसी प्रकार वह जैसे-तैसे हरिवाहन के लौटने की प्रतीक्षा में दिन बिता रही है।[16] यह प्रवास विप्रलम्भ शृङ्गार का उदाहरण है।

एक ओर अन्य स्थल पर विप्रलम्भ शृङ्गार की सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है। हरिवाहन तिलकमञ्जरी के पास चन्द्रातप नामक हार भेजता है उस दिव्य हार को देखकर तिलकमञ्जरी को अपने पूर्व जन्म की याद आ जाती है और वह हरिवाहन से विमुख हो जाती है।[17] तिलकमञ्जरी की विमुखता को हरिवाहन सहन नहीं कर पाता और आत्मघात करने के लिए विजयार्ध पर्वत के शिखर पर चढ़ जाता है –

पठितमात्र एव सहसोत्थितप्रबलसर्वाङ्गकम्पस्य प्रणुन्न इव पृथुनाश्वासपवनेन गुरुकृत इव गरीयसा वाष्पपूरेणावलम्बित इव निरालम्बेन पतता हृदयेन विगलितप्रयत्नाङ्गुलीपरिगृहीतः पपात करतलादलक्षितो मे लेखः। ततः कोऽहम्, क्वायात्ः, किमर्थमायातः, कि मया प्रस्तुतम्, किमेतद्दिनम्, किं निशा कोऽयं कालः, किमेतानि दुःखानि, किं सुखानि, किं जीवितमिदम्, किं मरणम्, किमेष मोहः, किं चेतना, किं सत्यमेतदाहोस्विदिन्द्रजालम्, किं स्वदेशोऽयमुत विदेशः, इत्याद्यविद्वान् बलवता समास्कन्दितो मनोदुखेन कथमपि विसर्ज्य चतुरिकां सौधशिखरादवातरम्। अभिलषितभूधरभृगुप्रपातश्च मुक्त्वा ज्वलन्तमिव तं प्रदेशं शिबिरमावासं परिजनं च केनाप्यनुपलक्षितः प्लक्षपिचुमन्दतिन्दुकोदुम्बरबहुलेन गत्वा दुर्गनवमार्गेण दूरमुत्सङ्गिताकाशमाशामुखव्यापिना शिखाग्रेण विजयार्धगिरिशिखरमध्यारोहम्। पृ. 397

16. ति. म., पृ. 391
17. आश्लिष्य कण्ठममुना मुक्ताहारेण हृदि निविष्टेन ।
सरुषेव वारितो मे त्वदुरःपरिरम्भणारम्भ : ।। वही, पृ. 396

इधर जब तिलकमञ्जरी को महर्षि से यह ज्ञात होता है कि हरिवाहन ही उसके पूर्वजन्म का पति ज्वलनप्रभ है तो उसे बहुत दु:ख होता है कि उसने व्यर्थ ही हरिवाहन को दु:ख का भागी बना दिया। परन्तु यहाँ भी उसके दु:खों का अन्त नहीं होता, क्योंकि तभी उसे यह ज्ञात होता है कि हरिवाहन उसकी विमुखता के समाचार से दु:खी होकर कहीं चला गया है। यह सुनकर वह विमान में बैठकर उसे खोजने निकल पड़ती है। हरिवाहन के न मिलने पर वह बहुत दु:खी हो जाती है और जब उसे यह ज्ञात होता है कि अन्तिम बार हरिवाहन को विजयार्ध पर्वत की चोटी पर देखा गया था, उसके बाद क्या हुआ कुछ ज्ञात नहीं, तो उसका हृदय किसी अनिष्ट की आशंका से काँप उठता है और वह भी आत्मघात करने के लिए तैयार हो जाती है। इसी बीच तिलकमञ्जरी के पिता द्वारा भेजा गया सन्देश प्रिय मिलन की आशा को पुनर्जीवित कर देता है और वह विरहिनी हरिवाहन की प्रतीक्षा करते हुए दिन बिताने लगती है।[18] छ: माह बाद ही उसका अपने प्रिय हरिवाहन से समागम होता है।

समरकेतु और मलयसुन्दरी की विरह कथा भी कम दु:खभरी नहीं है। इनकी तो सारी कथा ही विरह वेदना से भरी हुई है। हरिवाहन ने तो तिलकमञ्जरी का चित्रमात्र देखकर उसे अपना हृदय दे दिया था। तब तक वह तिलकमञ्जरी से मिला तक नहीं था, अत: यह प्रेम आरम्भ में एक तरफा था। परन्तु समरकेतु और मलयसुन्दरी तो प्रथम भेंट मे ही एक दूसरे के हो गए थे।[19] परन्तु उनका यह मिलन कुछ क्षणों का ही था। इसके पश्चात् विरह की एक चौड़ी खाई है। दोनों एक-दूसरे की याद कर पीड़ित होते रहते हैं। समरकेतु निहित विरह वेदना का ज्ञान उस समय होता है जब मंजीर नामक वन्दिपुत्र आर्या छन्दबद्ध एक पत्र लेकर आता है और हरिवाहन उसका अर्थ कर देता है। उसे सुनकर समरकेतु का दु:ख नवीन हो जाता है।

इत्युक्तवति तस्मिन्सर्वेऽपि पाश्ववर्तिनो यथावस्थितविदितलेखार्थः समं मञ्जीरेण राजपुत्राः प्रजहृषुः। अनेकधाकृतप्रतिभागुणस्तुतयश्च राजसूनोः पुनः प्रस्तुतकाव्यवस्तुविचारनिष्ठाः समरकेतुवर्जमतिष्ठन् । समरकेतुरपि विषादविच्छायवदनः शुष्काशनिनेव शिरसि ताडितस्तत्क्षणमेवाधोमुखो

18. ति.म., पृ. 413-417
19. वही, पृ. 276-277, 282-288

भवदुत्सृष्टदीर्घनिःश्वासनिश्चलनयनयुगलो विगलिता श्रुशीकरक्लिन्न पक्ष्माकराङ्गुष्ठनखलेखया भूतलमलिखत्। पृ. 110-111

उधर मलयसुन्दरी के दुःखों का कहीं भी अंत नहीं था। एक तो वह समरकेतु के विरह से पीड़ित थी दूसरी ओर उसके माता-पिता उसका विवाह वज्रायुध से तय कर देते हैं। इससे दुःखी होकर वह आत्महत्या करने का प्रयास करती है तभी समरकेतु आकर उसे बचा लेता है। उसे देखकर मलयसुन्दरी सुख-सागर में गोते लगाने लगती है।[20] यह खुशी भी अधिक समय तक नहीं रहती। समरकेतु अपने कर्त्तव्य पालन के लिए उसे छोड़कर चला जाता है और विरह-वेदना पुनः मलय सुन्दरी के सिर पर आ पड़ती है। ऐसा प्रतीत होता है कि धनपाल ने अपनी कथा में इन दोनों पात्रों को विरह की आग में जलाने के लिए ही इनका चित्रण किया है। समरकेतु और मलयसुन्दरी ने सम्पूर्ण कथा में केवल विरह-वेदना को ही सहा है। कथा के अन्त में ही इन दोनों का संगम होता है और वे दोनों विवाह-सूत्र में बंधकर सदा के लिए एक हो जाते हैं।

अद्भुत रस

दिव्य या अलौकिक वस्तु दर्शन तथा विस्मयजनक पदार्थों को देखने से आश्चर्य रूप स्थायी भाव परिपुष्ट होकर अद्भुत रस के रूप में परिणत होता है। अलौकिक वस्तु इसका आलम्बन व उसके गुणों का वर्णन 'उद्दीपन' विभाव होता हैं। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, गद्गद स्वर और नेत्र विकास आदि अनुभाव होते हैं तथा आवेग भ्रान्ति, हर्ष आदि व्याभिचारी भाव होते हैं।[21] अद्भुत रस कवि की कल्पना की उड़ान को व्यक्त करता है। कवि अपनी प्रतिभा के बल पर ऐसे-ऐसे विस्मयजनक पदार्थों का वर्णन करता है कि सहृदय आश्चर्यचकित होकर अद्भुत रस सागर में गोते खाने लगता है।

धनपाल ने तिलकमञ्जरी में अनेक स्थलों पर आश्चर्यजनक अलौकिक पदार्थों का वर्णन कर अद्भुत रस की व्यञ्जना की है। धनपाल ने तो स्वयं ही तिलकमञ्जरी को 'स्फुटाद्भुतरसा' कथा कहा है।[22] अद्भुत रस का सर्वप्रथम

---

20. ति. म., पृ. 306-312
21. गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुनः ।
    स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चगद्गदस्वरसंभ्रमाः ।
    तथा नेत्र विकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः ।। सा. द., 3/243, 244
22. तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतो राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् । ति. म., भूमिका, पद्य-50

साक्षात्कार विद्याधर मुनि के वर्णन में होता है। वायुमार्ग से उड़कर आते हुए मुनि को देखकर सम्राट् मेघवाहन और महारानी मदिरावती आश्चर्य और कौतुहल से भरकर उठकर खड़े हो जाते हैं –

एकदा च राजा याममात्रे वासरे .... भद्रशालनाम्नो महाप्रसादस्य पृष्ठे समुपविष्टः ... सह तया प्रस्तुतालापः सहसैवान्तरिक्षेण दक्षिणापथादापतन्तम्, उद्योतितसमस्तान्तरिक्षामार्गम्, आपीतसप्तार्णवजलस्य रत्नोद्गारमिव तीव्रोदानवेगनिरस्तमगस्त्यस्य ... विद्याधरमुनिमपश्यत्। दृष्ट्वा च तमदृष्टपूर्वमुपजात कुतूहलो विस्मयस्तिमितदृष्टिरुपरतनिमेषतया दर्शनप्रीत्युषार्जितेन पुण्यराशिना तस्यामेव मूर्तावाविर्भूतदिव्यभाव इव मुहूर्तमराजत। अभिमुखीभूतं च तं प्रसादस्य दिवसकरमिव पौलस्त्यभूधराभिलाषिणं सप्रभातसंध्योवासरः सुदूरविकासितमुखः समं मदिरावत्या प्रत्युज्जगाम। पृ. 23–24

यहाँ विद्याधर मुनि आलम्बन विभाव है। मुनि का तेज उद्दीपन विभाव है। निर्निमेष दृष्टि व स्तम्भन अनुभाव हैं तथा हर्ष और उत्ससुकता सञ्चारी भाव हैं।

इसी प्रकार ज्वलनप्रभ नामक वैमानिक स्वर्ग से नंदीश्वर द्वीप जाते हुए मार्ग में अयोध्या नगरी में परमोत्कृष्ट ऋषभदेव के आयतन को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है और देव दर्शनों के लिए कुछ देर के लिए रुक जाता है –

हन्तः ! स एष भगवानशेषजगन्नाभिकुलकरकुलालङ्कार कारणं सकललोकव्यवहारसृष्टेः, द्रष्टा कालत्रितयवर्तिनां भावानाम्, उपदेष्टा चिरप्रनष्टस्य धर्मतत्त्वस्य, सर्वसत्त्वनिर्निमित्त-बन्धुः, सेतुबन्धः संसारसिन्धोः, आद्योः धर्मचक्रवर्तिनाम्, आराध्यश्चतुर्विधस्यापि सुरनिकायस्य, नायकः समग्राणां गणधरकेवलिप्रमुखाणां महर्षीणामृषभनामा जिनवृषः, यस्य पुरा स्वामिना शक्रेण स्वयमनुष्ठितः प्रतिष्ठा-विधिः, अवधार्य चैतदधिकोपाजातभक्तिः 'आसतामिहैव मुहूर्तमेकं भवन्तः' इति निवर्त्य पृष्ठानुपातिनः सुरपदातीनतिमात्रमुत्सुको गन्तुमङ्गमात्र एवागतः। दृष्टश्चैषभगवानशेष-कल्मषक्षयहेतुरादिदेवः। पृ. 39–40

सम्पूर्ण तिलकमञ्जरी में स्थान-स्थान पर अद्भुत रस का समावेश है। एक शुक जो प्रार्थना करने पर कमलगुप्त के पत्रोत्तर को अपनी चोंच में दबाकर ले जाता है[23] और मनुष्य की वाणी में बोलकर हरिवाहन और मलयसुन्दरी से मनुष्य की वाणी में वार्ता कर न केवल उन्हें अपितु सहृदय पाठक को भी विस्मित कर देता है –

23. ति. म., पृ. 194–195

कमलिनीखण्डादेत्य निजयूथान्मसृणमसृणोत्क्षिप्तचरणो रुचिरमूर्तिरेकः शुकशकुनिर विशङ्कितमवादीत्-महाभागे ! किमित्यभाग्येव खेदमुद्वहस्येवम्। एष प्राप्त पक्षिरूपी नभश्चरोऽहम्। आज्ञापय मया यत्कर्त्तव्यम् इत्यभिहिते तेन सभयविस्मया विहस्य चक्षुषा मे वदनमद्राक्षीत्। पृ. 349

हाथी का हरिवाहन को लेकर उड़ जाना भी किसी आश्चर्य से कम नहीं है क्योंकि कोई साधारण हाथी उड़ नहीं सकता –

मदान्धः स गन्धवारणः स्कन्धदृढबद्धासनं शासनान्तरमेव साध्वसादाधोरणैरकृतसत्वरोपसर्पणैरनर्पितां कुसुमवशमुद्वहन् मामद्रिगह्वराततो निर्गत्य तेनैव गिरितटेन यथोत्तरप्रकटितजवः ... कियन्तमपि मार्गमगमत्। अन्तरीतेषु च निरन्तरैर्वनततरुस्तम्बैर्विलम्बितेषु सर्वेष्वनुपदिषु लोकेष्वेकेन मार्गवर्तिना विषमपाषाणपटलस्थपुटितावतारेण वनरङ्गिणीश्रोतसा भग्नगमनत्व –रस्तरसान्तरिक्षमुदपतत्। पृ. 243-44

देवी लक्ष्मी द्वारा प्रदत्त दिव्य अंगुलीयक का चमत्कार भी पाठकों को आश्चर्यचकित कर देता है। इस दिव्य अंगुलीयक के प्रभाव से सेनापति वज्रायुध की प्रतिपक्षी समरकेतु की सेना सहसा ही निद्रा में लीन हो जाती है।[24] इसी प्रकार समरकेतु जब देदीप्यमान प्रकाशमण्डल में से निकलते हुए और आकाश मार्ग से आते हुए विद्याधरों को देखता है तो वह पलक झपकना भी भूल जाता है –

नातिदूरदरीभृतस्तस्य परिसरात् ... संवर्तकालसंध्यासदृशमत्यद्भुतं प्रभाराशिमपश्यम्। दृष्ट्वा चोपजातकौतुकः किमेतदिति वितर्कयन्नेव तस्मादर्कमण्डलादिव मयूखनिवहमेकहेलया विनिर्गतमागच्छदभिमुखमाकाशमार्गेण ... खेचरनरेन्द्रवृन्दमद्राक्षम् । दृष्ट्वा चाग्रतस्तं प्रभाराशिमत्यन्त- दुरालोकान्तं चापतन्तमाभिमुखं खेचरलोकमुल्लसच्चित्तवृत्तिः प्रवर्तय पुरस्तान्नावमिति नियुज्य तारकं तत्क्षणमेव चलितस्तेन विस्मयस्तिमितचक्षुषा समस्तेनापि गगनचारिणां गणेन 'कोऽयं कुतोऽयं किमर्थमायातः कथमिहातिदुर्गमायां न गोपकण्ठभूमावेकाकी प्रविष्टः क्व यास्यति' इति। पृ. 152-154

---

24. ति.म., पृ. 91-92

यहाँ विद्याधर समूह आलम्बन विभाव तथा प्रभा मण्डल से निकलना व आकाश मार्ग से उतरना उद्दीपन विभाव है। निर्निमेष दर्शन व उल्लासित मनोवृत्ति अनुभाव हैं। हर्ष, उत्सुकता, आवेग और वितर्क सञ्चारी भाव हैं।

महाप्रतीहारी मन्दुरा भी शुक को बोलते देखकर विस्मित हो जाती हैं-

अथागत्य विस्मयोत्फुल्लनयना महाप्रतीहारी मन्दुरा प्रणम्य सादरमवादीद्देवीम् – 'अस्त्येव दक्षिणदिङ्मुखादागतो निसर्गः रमणीयाकृतिः शुकशकुन्तिरेको द्वारमध्यास्ते। ब्रवीति च कृतप्रेषणोऽहं लौहित्यतटवासिनः स्कन्धावारादुपगतः कुमारहरिवाहनं द्रष्टुमिच्छामि' इति। पृ. 374

निशीथ नामक दिव्य वस्त्र का वर्णन भी आश्चर्यजनक है। इस दिव्य वस्त्र के स्पर्श से शुक, गन्धर्वक के अपने पूर्व रूप में आ जाता है –

अथ शिरीषकेशररेणुपरमाणुभिरिवाब्धेन शरदरविन्दकोशमध्यादिव लब्धजन्मना सुधारसकुण्डकुक्षेरिवाकृष्टेन मलयाद्रिहरिचन्दनच्छाययेव छुरितेन मूर्च्छामिव... तदीयसंस्पर्शेन परवशीकृतं बिभ्रतो ममाङ्गमुत्सङ्गदेशादलक्षितोद्गमः सहसैव तं समुत्क्षिप्य दिव्यपटमग्रहस्ताभ्यामुदग्रयौवनः पुमानग्रतोऽभवत्। अवेक्षय च ततोऽभिमुखविन्यस्तविस्मयस्तिमितचक्षुषा पश्चात्प्रहर्षपरवशेन गन्धर्वको गन्धर्वक इति...। पृ. 376-77

इस प्रकार हम देख सकते है कि धनपाल ने तिलकमञ्जरी नामक इस प्रेम कथा में अद्भुत रस की व्यापक रूप से अभिव्यञ्जना की है। श‍ृङ्गार रस तिलकमञ्जरी का अङ्गी रस होने पर भी सत्य ही यह कथा अद्भुत रस स्फुटा है।

करुण रस

इष्ट के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति से करुण रस आविर्भूत होता है।[25] करुण रस का स्थायी भाव शोक है। प्रिय व्यक्ति विनाश, पराजय और शोचनीय व्यक्ति आदि इसके आलम्बन विभाव होते है। दाहकर्म, यश व गुणों का स्मरण, मृत व्यक्ति के आभूषण वस्त्र आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। रोदन, निःश्वास, प्रलाप, निन्दा, भूमिपतन आदि इसके अनुभाव होते हैं। मोह, स्मृति दैन्य, चिन्ता,

25. इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्। सा. द., पृ. 116

विषाद, श्रम, जडता आदि सञ्चारी भाव होते हैं। तिलकमञ्जरी में जहाँ शृङ्गार रस धारा अनवरत प्रवाहित है वहीं धनपाल ने अनेक स्थलों पर करुण रस की ऐसी सफल अभिव्यञ्जना की है कि पाठक करुणा की नदी में आकण्ठ निमग्न हो जाता है और उसके नेत्र जल से परिपूर्ण हो जाते है। करुण रस की व्यञ्जना सर्वप्रथम वेताल के प्रसङ्ग में होती है, जब राजा वेताल को देने के लिए अपना शीश काटने लगता है। ऐसे दृश्य में न केवल पाठक ही अपितु देवाङ्गनाएँ भी हाहाकार कर उठती हैं –

आबद्धपरिकरश्च कृत्वा देवतायाः प्रणामम्...कृतान्तकोपानल धूमदण्डानुकारिणं कृपाणमुज्झितकृपः स्कन्धपीठे न्यधापयत् । ...अर्धावकृत्तकन्धरे च शिरसि सहसैवास्य केनापि धृत इव स्तम्भित इव नियन्त्रित इवाक्रान्त इव नाल्पमपि चलितुमक्षमत दक्षिणो बाहुः,... किमेतदिति संजातविस्मयश्च नृपतिः ... दक्षिणकरादितरेण पाणिना कृपाणं जग्राह। करविमुक्तमौलि- बन्धनिरालम्बकन्धरे च छेदमार्गमिव सुखच्छेदाय विकटावकाशं कर्तुमधोमुखमवनते शिरसि निर्दयं व्यापारयितुमाहितप्रयत्नस्तत्कालमुल्लासितेन मन्दिकृताखिलेन्द्रियशक्तिना मूर्च्छागमेन विरलविलुप्तसंज्ञः ... अतिश्रव्यतया सुधारसेनेव श्रवणविवरमध्यापयन्तमश्रुतपूर्वममरसुन्दरीजनस्य हाहारवमशृणोत्। पृ. 52–54

हरिवाहन का हाथी के द्वारा अपहरण कर लिए जाने पर समरकेतु के विलाप और शोक विह्वलता के समय भी करुणा की नदी बह निकलती है –

हा सर्वगुणनिधे ! हा बन्धुजैनवल्लभ ! हा प्रजाबन्धो। हा समस्तकलाकुशल ! कोसलेन्द्रकुलचन्द्र ! हरिवाहन। कदा द्रष्टव्योऽसि इति विलपन्नेव मीलितेक्षणः क्षणेनैव निकटोपविष्टस्य खड्गग्रहिणो जगाम पर्यस्तविग्रहस्तिर्यगुत्सङ्गम्। अत्रान्तरे निरन्तरोदितरुदितरवसंभेदमेदुरो दारयन्निव दयालुहृदयानि रोधोरन्ध्रमाचस्कन्द दारुणो राजवृन्दस्याक्रन्दः । पृ. 190

यहाँ हरिवाहन आलम्बन विभाव है तथा हरिवाहन के प्रति प्रेम उद्दीपन विभाव हैं विलाप और रोदन अनुभाव है। हरिवाहन के प्रति मोह तथा उसकी चिन्ता करना आदि सञ्चारी भाव हैं।

एक अन्य प्रसङ्ग में जब हरिवाहन आर्या छन्द में लिखे हुए प्रेम पत्र का अर्थ करते है तो समरकेतु का मलयसुन्दरी से वियोग का दुख नवीन हो जाता है, उस समय सहृदय भी स्वयं को उसी दुःख से दुखी पाता है –

समरकेतुरपि विषादविच्छायवदनः शुष्काशनिनेव शिरसि ताडितस्तत्क्षणमेवाधोमुखोऽभवत्, उत्सृष्टदीर्घनिःश्वासश्च निश्चलनयनयुगलो विगलिताश्रुशीकरक्लिन्नपक्ष्मा कराङ्गुष्ठनखलेखया भूतलमलिखत्। पृ. 111

यहाँ मलयसुन्दरी आलम्बन व आर्या छन्द की व्याख्या उद्दीपन विभाव है। इसी आर्या छन्द की व्याख्या से समरकेतु के हृदय में स्थित शोक उद्दीप्त हो जाता है और वह अंगूठे के नाखून से भूमि पर कुछ लिखने लगता है, यही अनुभाव है। स्मृति और विषाद यहाँ सञ्चारी भाव है।

इसी प्रकार मलयसुन्दरी का विलाप भी सामाजिक के नेत्रों को अश्रूपूरित कर देता है। जब उसे यह ज्ञात होता है कि समरकेतु व उसकी सेना को शत्रु सेना ने दीर्घ निद्रा में सुला दिया है –

शतमुखीभूतदुःखदाहा निदाघसारिदिव प्रथमजलधरासारवारिवरणबन्धेन महतापि प्रयत्नेन हेलागतं वाष्पवेगमपारयन्ती धारयितुमुन्मुक्तातितारकरुणपुत्कारा 'हा प्रसन्नमुख, हा सुरेखसर्वात्कार, हा लावण्यलवणार्णव, हा लोकलोचनसुधामर्ष, हा महाहवप्राप्तपौरुषप्रकर्ष, हा कीर्तिकुलनिकेतन, किमेकपद एव निस्नेहतां गतः। किं न पश्यसि मामस्थान एव निर्वासितां पित्रा विसर्जितां मात्रा परिहृतां परिजनेनावधीरितां बन्धुभिरेकाकिनीमदृष्टप्रवासां वनवासदुःखमनुभवन्तीं किमागत्य नाथ, नाश्वासयसि, कदा त्वमीदृशो जातः। पृ. 332

इसमें समरकेतु आलम्बन व उसका स्मरण उद्दीपन विभाव है। रोदन और प्रलाप अनुभाव हैं। मोह, स्मृति व दैन्यता सञ्चारी भाव हैं। मलयसुन्दरी के इस प्रलाप को सुनकर किस के नेत्र आर्द्र नहीं हो जाएंगे।

मलयसुन्दरी को जब यह ज्ञात होता है कि युद्ध में सन्धि करने के लिए उसके पिता उसका पाणिग्रहण कोशलनरेश के सेनापति वज्रायुध से करवा देगें, तो वह आत्महत्या करने का निर्णय ले लेती है और मृत्युपाश बनाकर अशोक के वृक्ष से लटक जाती है। सर्वप्रथम तो मलयसुन्दरी का यही कार्य सहृदय के हृदय को दहला देता है, उस पर बन्धुसुन्दरी का विलाप इस शोक को चरम सीमा पर पहुँचा देता है –

हा किमिदमापतितम्, किं संवृत्तम्, किमनुष्ठितं निष्ठुरप्रकृतिना दैवेन इत्यभिधाय .... भगवन्पवन, रुद्धगलरन्ध्रवेदनाविरसाया भव समाश्वासहेतुरस्याः श्वासप्रसरदानेन। हताश चित्तयोने, चैत्रोत्सवेनैव निश्चेतनीभूतो

न चिन्तयस्यात्मानम्। अनया विना विधुरेषु कुण्ठितशरस्य कस्ते शरणम्। दुरात्मान्, आत्मनैव निष्पादितां विपदमीदृशीमस्याः पश्यतो मनागपि न ते विच्छायता संजाता। अशोक, सत्यमिवशोकस्त्वम' इत्याद्यनेकप्रकारं संबद्धमसंबद्धं च विलपन्तीं बलवता शोकवेगेन विधुरीकृतां बन्धुसुन्दरीमपश्यम्। पृ. 307-308

समरकेतु हरिवाहन का सहोदर भाई के समान मित्र है। हरिवाहन को जब यह पता चलता है कि समरकेतु उसे खोजने के लिए लौहित्य नदी के तटवर्ती पर्वत के वन में गया हुआ है तो वह भी समरकेतु को खोजने के लिए उसी वन में चला जाता है। इस समाचार को प्राप्त कर मलयसुन्दरी दु:खी हो जाती है कि अब हरिवाहन को भी वन वास के कष्टों को सहना पड़ेगा -

तस्मिन्नतर्कितोदीर्णदुर्वारशोका 'हा समस्तलोकलोचनससुभग, हा निरन्तरोपभोलालित, हा विहितपरमोपकार, कुमार हरिवाहन, तवाप्ययं सुकृतकर्मादुरात्मान दैवेन विषमवनवासदु:खप्राप्तिहेतुर्विहितः' इति वदन्त्येव निश्चलनिमीलितेक्षणा मलयसुन्दरी मोहमगमत्। पृ. 392

इस प्रकार तिलकमञ्जरी में यत्र तत्र करुण रसधारा प्रवाहित होती रहती है।

वीर रस

वीर रस मनुष्य में उत्साह व साहस का सञ्चार करता है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। शत्रु आदि 'आलम्बन' तथा उनकी चेष्टाएँ 'उद्दीपन' विभाव होते है। धनुष, सेना आदि युद्ध के सहायकों का अन्वेषण अनुभाव कहलाता है। धैर्य, मति, गर्व, रोमाञ्च आदि इसके व्याभिचारी भाव होते है। धनपाल ने तिलकमञ्जरी के अनेक स्थलों पर वीर रस की सफल अभिव्यञ्जना की है। धनपाल ने वज्रायुध और समरकेतु के निशायुद्ध का ऐसा सजीव चित्रण किया है कि शरीर में उत्साह की लहर दौड़ पड़ती है।

परस्परवधनिबद्धकक्षयोश्च तयोस्तत्क्षणमाकुलितसकलजीवलोको युगपदेकीभूतोदारवारिराशिरस्रजलविसरवर्षिघनपदातिघोरे मुदितयोगिनीमृग्यमाण–लोकपालकपालचषकः प्रचलितरसाकुभूभृच्चाक्रवालकृततुमलः प्रसृतरभसोत्तालगजदानवारिरार्तत्रिदशदारिकान्विष्यमाणरमणसार्थो निपीतनरवशाविस्वरविसारिशिवाफेत्कारडामरः। ...अजायत महाप्रलयसंनिभः समरसंघट्टः।पृ.87

परस्पर एक दूसरे के घात के लिए निबद्ध वज्रायुध और समरकेतु की सेनाओं के मध्य तत्काल ही समस्त जीवलोक को आकुलित करने वाला, रुधिरमय जल की वर्षा करने वाले मेघ के समान अतिभयङ्कर, जहाँ रुधिर पान के लिए प्रसन्न योगिनी के द्वारा राजाओं के कपालों को खोजा जा रहा था ऐसा, वीरता से आकुलित राजाओं के समूह के के युद्ध से प्रकम्पित, ... महाप्रलय के समान युद्ध आरम्भ हो गया।

वज्रायुध व समरकेतु की सेनाएँ युद्ध के लिए उत्साहित होकर एक दूसरे के समक्ष आकर खड़ी हो जाती है और महागजों, अश्वों, रथों व धनुष की टङ्कार ध्वनियों से बह्माण्ड कम्पायमान हो जाता है-

गात्रसंघटरणितघण्टानामरिद्वीपावलोकनक्रोधवितानामिभपतिनां वृंहितेन, प्रतिबलाश्च दर्शनक्षुभितानां च वाजिनां ह्रेषितेन, हर्षोत्तालमूलताडिततुङ्गबद्धरंहसां च स्यन्दनानां चीत्कृतेन, सकोपधानुष्कनिर्दयाच्छोटितद्यानां च वाययष्टीनां टंकृतेन, खरक्षुरप्रदलितदण्डानां च पर्यस्यतां रथकेतनानां कटुत्कारेण, निष्ठुरधनुर्यन्त्रनिष्ठ्यूतामुक्तानां च निर्गच्छतां नाराचानां सूत्कारेण, वोगाह्यमानविवशवेतालकोलाहलघनेन च रुधिरापगानां धूत्काकरेण प्रतिरसितसंभृतेन, समरभेरीणां भाङ्कारेण, निर्भराध्मातसकलदिक्चक्रवालं यत्र साक्रन्दमिव साट्टहासमिव सास्फोटनरवमिव ब्रह्माण्डमभवत्। पृ.87

परस्पर शरीर के संघर्षण से ध्वनित घण्टा ध्वनि वाले, शत्रुहाथियों के दर्शन से क्रोधित होकर तेज दौड़ने वाले महागजो की गर्जन से, शत्रु सेना के अश्वों के दर्शन से क्षुभित अश्वों की हेषाध्वनि से, उत्साहित सारथियों के वेग से युक्त रथों के चीत्कार शब्द से, क्रुद्ध धनुर्धारियों के धनुष की डोरी के खींचने से उत्पन्न टङ्कार से, दृढ़ धनुषों के द्वारा छोड़े गए बाणों की ध्वनि से, रुधिर नदियों के घूत्कार से (ध्वनि विशेष), संग्राम भेरी की प्रतिध्वनि से पूर्ण भाङ्कार से (ध्वनि विशेष), सभी दिशाओं में अत्यधिक शब्दित ब्रह्माण्ड मण्डल मानों विलाप से युक्त हो गया, मानो महाट्टहास से युक्त हो गया, मानो पर्वतविदीर्ण के समान ध्वनि से युक्त हो गया।

यहाँ पर दोनों की सेनाएँ परस्पर आलम्बन विभाव हैं। युद्ध का वातावरण, युद्ध दुन्दुभि व समरभेरी की आवाजें आदि उद्दीपन विभाव हैं। युद्ध करने के लिए एक दूसरे की और भागना व ललकारना आदि अनुभाव है।

धनपाल ने समरकेतु और वज्रायुध के बीच बाण युद्ध का वर्णन इस कुशलता से किया है कि पाठक को लगता है जैसे यह सबकुछ उसकी आँखों के सामने घटित हो रहा है –

वारं वारमन्योन्यकृततर्जनयोश्च तयोराकर्णात्तकृष्टमुक्तास्तुल्यकालमास्वादितगलामिषाविसारिणो लङ्घितदिशो दूराध्वगाराजकार्योपयोगिनस्तीक्षणः ... महाजवा वाजिनश्चापल्यतोषिताः क्षितिपालदारकाविषमाश्च मण्डलभेदिनः प्राप्तमोक्षादन्तदीर्घनिद्रामहासंनिपातः स्वेच्छाविहारिणः खेचरान्निजस्वभावा लब्धशुद्धयः क्वचिद्वातिका इव सूतमारणोद्यताः, क्वचिद्राजाध्यक्षा इवाकृष्टसुभटग्रामकङ्कटाः, क्वाचिद्वलयकारा इव कल्पितकरिविषाणाः, क्वचित्कितवा इव लिखिताष्टपदसारफलकाः, क्वचित्पतङ्गा इव पक्षपवनान्दोलितदीपिकाखण्डार्चिषोऽभिलषितगजदानामार्गणता मुन्मिषितनीलत्विषो बाणतां द्विधाकृतोद्दण्डपुण्डरीकाः कादम्बाभिधामारावमुखरिताशामुखाः शिलीमुखायिख्यां मुख्यामुद्वहन्तः, सायकाः प्रसस्रुः । पृ. 89

उत्साहित समरकेतु के बाण प्रक्षेपण प्रसङ्ग को देखिए, जिसमें अत्यधिक वेग से बाण चलाने के कारण उसका हाथ एक ही समय में अनेक स्थानों पर लक्षित हो रहा है

अतिवगेव्यापृतोऽस्य तत्र क्षणे प्रोत इव तूणीमुखेषु, लिखित इव मौर्व्याम, उत्कीर्ण इव पुङ्खेषु, अवतंसित इव श्रवणान्ते तुल्यकालमलक्ष्यत वामेतरः पाणिः । पृ. 90

राजकुमार समरकेतु का दक्षिण हस्त अत्यधिक वेग से बाण चलाने के कारण एक ही समय में तुणीर के मुख जड़ा हुआ सा, धनुष की डोरी पर चित्रित हुआ सा, बाण के मुख पर उत्कीर्ण हुआ सा तथा कर्णान्त भाग में अलङ्कार के समान सा लक्षित हुआ दिखाई पड़ रहा था।

वज्रायुध के वर्णन में भी वीर रस की अभिव्यञ्जना स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। रात्रिमध्य में जब वज्रायुध को यह ज्ञात होता है की शत्रु सेना शिविर की ओर आ रही है। तो उत्साहित वज्रायुध को ये वचन अमृत तुल्य लगते हैं।

सेनापतिस्तु तत्तयोराकर्ण्य कर्णामृतकल्पं जल्पमुपजातहर्षो रणरसोत्कर्षपुण्पत्पुलकजालकः सजलजीमूतस्तनितगम्भीरेण स्वरेण ... अभ्यर्णचरमनुचरगणं रथानयनार्थमादिक्षत्। नचिराच्च तेनान्तिकमुपनीतमुभयतः

प्रचलदतिचारुपत्रमुदरविनिहितमहाहिभीषणनेकास्त्रं पत्ररथराजमिव रथाङ्गपाणिरध्यास्य रथं यथासंनिहितेनात्मसैन्येनानुगम्यमानो युगपदाहतानां कुपितयमहुङ्कारनुकारिभाकारभैरवमतिगम्भीरमारसन्तीनां समरढक्कानां ध्वनितेन पातयन्निव सबन्धनान्यरातिहृदयानि तारतरव्याहारिणां बन्दिवृन्दानां हृदयहारिणा जयशब्दाडम्बरेण मुखरिताम्बरः शिबिरान्निरगच्छत्। कृतव्यूहरचनश्च समरसंक्षोभक्षमायामुपान्तभूमावस्थात्। पृ. 86

इसमें शत्रु की सेना आलम्बन विभाव है तथा घुड़सवारों द्वारा दी गई सूचना व स्तुति पाठकों का विजय गान उद्दीपन विभाव है। वज्रायुध का उत्साहित होकर गम्भीर स्वर में रथ को लाने की आज्ञा देना अनुभाव है।

समरकेतु के पिता सिंहलेश्वर चन्द्रकेतु की आज्ञा से दुष्ट सामान्तों के दर्प दमन के लिए दक्षिणापथ की ओर जाती हुई समरकेतु की सेना के वर्णन में भी वीर रस की अभिव्यञ्जना हो रही है –

पुरस्सरपुरोधसा द्विजातिवृन्देनानुगम्यमानश्चरणाभ्यामेव गत्वा प्रथमकक्षान्तरद्वारभूमिमग्रतः ससंभ्रमव्यापारिताङ्कुशेन वज्रांकुशननाम्ना महामात्रेणप्राङ्मुखीकृत्य विधृतं शितपिष्टपङ्कपाण्डु रितगात्रमक्षुद्रमणि–चित्रनक्षत्रमालापरिक्षिप्तसिन्दूरपाटलविकटकुम्भभागमारोपितानेकनिशितशस्त्रप्रभासारशातकुम्भसारीपरिकरितपृष्ठपीठमश्रान्तमदवरिधारादुर्दिनान्धकारितकरटकूटं त्रिकुटपर्वतमिव परित्यक्तस्थावरावस्थममरवल्लभाभिधानं गन्धगजमारुढो ... शरासनेन सनाथवामहस्तः सलीलमुद्धूयमानवालव्यजनकलापो मदद र्पसर्पत्पदाति निर्दयपादपातप्रवर्तिताकाण्डमेदिनीकम्पः प्रहर्षोत्तालवैतालिक व्राततारतरोद्घुष्यमाण जयध्वनिर्ध्वनद्विजयमङ्गलाभिधानतूर्यनिर्घोषबधिरिताखिलब्रह्मस्तम्बः पुस्तात्सलिलचलितकरिघटारूढकिङ्कर पुरुषपातितविरल घनघातानामुत्पातनि–र्घातघोरघोषोद्गार मतितारमारसन्तीनां ढक्कानां ध्वनितेन मुखरन्निखिलान्यपि दिशां मुखानि ... पुरः प्रसर्पतः श्वेतातपत्रखण्डस्य पर्यन्तयायिनामनिल भरितरन्ध्रवर्त्म–व्यक्तरूपाणामिभवराहशरभशार्दुलमकरमत्स्याद्याकारधारिणामनेकपार्थिव–समरसंगृहीतानां चिह्नकानामपह्नुतार्करोचिषां चक्रवालेन जटिलीकृतदिगन्तरालो राजकुलान्निरगच्छम्। पृ. 115–116

यहाँ दुष्ट सामन्त आलम्बन विभाव है तथा वन्दिपुत्रों की जय-जयकार ध्वनि उद्दीपन विभाव है। सेना का पृथ्वी को मानो हिलाते हुए पादाक्षेप करते हुए चलना, विजयनाद करना आदि अनुभाव हैं।

रौद्र रस

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। इसमें शत्रु 'आलम्बन' व उसकी चेष्टाएँ 'उद्दीपन' विभाव होती है। भृकुटी भङ्ग, डाँटना, शस्त्र घुमाना, आवेग, रोमाञ्च, वेपथु, मद आदि अनुभाव होते हैं। मोह, अमर्ष, आक्षेपादि करना व्याभिचारी भाव होते है।[26] रौद्र रस में चित्त का प्रज्ज्वलन होता है। इसमें विद्वेष की भावना अपनी चरम सीमा पर होती है। विद्वेषी अपने प्रतिपक्षी या शत्रु को कथञ्चित समाप्त कर देना चाहता है। तिलकमञ्जरी में कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ पर रौद्र रस अभिव्यञ्जित होता है।

वज्रायुध और समरकेतु के युद्ध में रौद्र रस की अभिव्यञ्जना की गई है। समरकेतु को जब यह ज्ञात होता है कि मलयसुन्दरी के पिता कुसुमशेखर वज्रायुध से सन्धि करने के लिए अगले दिन मलयसुन्दरी का पाणिग्रहण वज्रायुध से करवा देंगे, तो वह अत्यधिक क्रोधित हो जाता है और अर्धरात्रि में ही सेना को लेकर वज्रायुध के शिविर की ओर जाकर वज्रयुध को ललकारता है। ललकार को सुनकर सेनापति वज्रायुध क्रोधित हो जाता है-

सेनाधिपोऽपि तेन व्याहृतध्वनिना सद्य एवोद्भिन्नसरसरोमाञ्चकन्दलः कोपविस्फारितपुटेन कवलयन्निव तारकोदरप्रतिबिम्बितं सप्रगल्भचलितपक्ष्मणा यत्र लोचनद्वयेन सतुरङ्गरथमातङ्गपार्थिवं प्रतिपक्षम् 'इतः इतः पश्य माम्' इति व्याहरन्नेव वाहितरथः समेत्य तस्येक्षणपथे समस्थितः । पृ. 89।

सेनापति वज्रायुध उसकी ललकार सुनकर रोमाञ्चित हो गया और क्रोध से उसके नेत्र फल गए । निर्भय नेत्रों की कनीनियों के मध्य में प्रतिबिम्बित अश्व, रथ, हाथी व राजाओं सहित शत्रुपक्ष को मानों नेत्रों से ही ग्रास बनाते हुए 'यहाँ, यहाँ, मुझे देखो' ऐसा कहते हुए सेनापति वज्रायुध समरकेतु के सामने आ गया।

यहाँ पर समरकेतु आलम्बन विभाव है तथा उसकी ललकार उद्दीपन विभाव है। वज्रायुध का समरकेतु को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए दर्पयुक्त उक्ति का प्रयोग करना व नेत्रों का फैलना अनुभाव है। उग्रता व आवेग व्याभिचारी भाव है।

---

26. सा. द., 3/228-231

इसी युद्ध के प्रसङ्ग में समरकेतु के द्वारा बाणों की निरन्तर वर्षा से आहत वज्रायुध क्रोधित होकर कहता है-

रे रे दुरात्मन् ! दुगहीत धनुर्विद्यामदाध्मातद्रविणाधम, बधान क्षणमात्रमग्रतोऽवस्थानम्। अस्थान एवं किं दृप्यसि। पश्य ममापि संप्रति शस्त्रविद्याकौशलम्। इत्युदीर्य निर्यत्पुलकमसिलताग्रहणाय दक्षिणं प्रसारितवन्बाहुम्। पृ. 91

अरे दुष्ट ! दुर्गहित धनुर्विद्या के गर्व से युक्त द्रविडदेशीयाधम, कुछ क्षणों के लिए मेरे सामने तो आ। किस कारण से स्वयं पर गर्व कर रहा है। अब मेरे शस्त्रविद्या कौशल को भी देख। यह कहकर वज्रायुध ने तलवार उठाने के लिए अपनी दक्षिण भुजा फैलाई।

गन्धर्वक और यक्ष प्रसंग में भी रौद्र रस की सुस्पष्ट अभिव्यञ्जना हुई है। गन्धर्वक मूर्छित मलयसुन्दरी को विमान में लिटाकर विषोपशमन औषधि के अन्वेषणार्थ आकाशमार्ग से उत्तर दिशा की ओर चलता है। मार्ग में वह जिन देवायतन के ऊपर से गुजरता है, जिससे आयतन का रक्षक यक्ष महोदर उसके विमान को रोक देता है। गन्धर्वक द्वारा बार-बार प्रार्थना किए जाने पर भी जब वह यक्ष मार्ग से नहीं हटता, तो गन्धर्वक उसे कठोर वचन बोलता है, जिससे यक्ष अत्यधिक क्रोधित हो जाता है। यक्ष महोदर की उक्तियों में बहने वाली रौद्र रस धारा का आस्वादन कीजिए -

रे रे दुरात्मन्। अनात्मज्ञ ! विज्ञानरहित ! परिहृतविशिष्टजनसमाचार ! महापापकारिन् ! ...अविनीतजनशासनाय प्रभुजनेन नियुक्तं सर्वदा शान्तायतनवासिनं मामपि महोदराख्यं यक्षसेनाधिपमधिक्षिपसि । रे विद्याधराधम ! न जानासि मे स्वरूपम्। यादृशोऽहं तादृगहमेव, नान्यः । ...तदरे दुराचार ! क्रूरहृदयोऽहम। न त्वमसि ...मां च करुणया पुरोभूय कृतनिषेधम् 'अपसर' इति वारंवारमविशङ्कितस्तर्जयसि। गतोऽस्याधस्तादनेन दुश्चेष्टितेन। .... दुष्कृतिकृतान्तेन न चिरादपि प्राक्तनीं प्रकृतिमासादयिष्यसि विनास्मत्स्वामिनीप्रसादम् इत्युदीर्य दत्तहुङ्कारः स्थानस्थ एव तद्विमानं कथञ्चिदुत्क्षिप्य अदृष्टपारे सरसि न्यक्षिपत्। पृ. 382-83

यहाँ पर गन्धर्वक आलम्बन विभाव है और गन्धर्वक की उक्तियाँ, जो कि क्रोधित यक्ष की क्रोधाग्नि में घी का काम करती हैं, उद्दीपन विभाव है। यक्ष की

आँखे लाल हो जाना और भृकुटियाँ वक्र हो जाना अनुभाव है। यक्ष का क्रोधावेग व उग्रता व्यभिचारी भाव हैं।

भयानक रस

भय जनक परिस्थितियों से ही भयानक रस की अभिव्यञ्जना होती है। भयदायक पदार्थों (सिंहादि) के श्रवण, दर्शन अथवा किसी शक्तिशाली शत्रु के विरोध से भय की अनुभूति होती है। भयानक रस का स्थायी भाव भय है। जिससे भय उत्पन्न हो वह (सिंहादि) 'आलम्बन' तथा उसकी चेष्टाएँ व भयोत्पादक व्यवहार 'उद्दीपन' विभाव होता है।[27] स्वेद, कम्पन, रोमाञ्च, गद्गद भाषण, मूर्छा, चिल्लाना आदि अनुभाव होते हैं तथा शंका, दीनता, मोह, त्रास, ग्लानि, सम्भ्रम, मृत्यु, चिन्ता आदि सञ्चारी भाव होते हैं।

वेताल वर्णन में सहृदय का भयानक रस से साक्षात्कार होता है। वेताल ऐसे भीषण रूप में प्रकट होता है कि तत्क्षण ही सहृदय के हृदय में भय का सञ्चार हो जाता है –

अत्रान्तरे नितान्तभीषणों विशेषजनिजस्फातिरास्फालिताशातटै: प्रतिफलद्भिरतिपरिस्फुटै: प्रतिशब्दकै: शब्दमयमिवादधान स्त्रिभुवन–मुद्भ्रान्तनयनतारकाकान्तिसारीकृतदिग्भिराकर्णित: सन् सभयमुभय–कर्णदत्तहस्ताभिरायतनदेवताभि: कुलिशताडितकुला चलशिखर समकालनिपतद्गण्डशैलनिवहनादोद्धुरो हासध्वनिरुदलसत् । ...दक्षिणेतरविभागे संनिहितमेव देवताया:, झगिति दत्तदर्शनं निदर्शनमिवाशेषत्रिभुवनभीषणानाम्, अतिकृशप्रांशुविकरालकर्कशकायम्, ... आशाकरिकुम्भ–स्थलास्थिस्थूलमतिदूरलुठितमपि रक्तासवकपालमनुभावदर्शितात्यद्भुतभुजायामेन पाणिना वामेन तथैवोर्ध्वस्थितमाददानम्, ...अन्तर्ज्वलितपिङ्गलोग्रतारकेण करालपरिमण्डलाकृतिना नयनयुगलेन यमुनाप्रवाहमिव निदाघदिनकरप्रतिबिम्ब–गर्भोदरेणावर्तद्वयेनातिभीषणम्, ...अवयवानप्यस्थिसारानतिविकृतरूपदर्शन–भयात्पलायितुकामानिव स्नायुग्रन्थिगाढ़नद्धान्दधानम्, आजानुलम्बमानशवशि–रोमालमेकं वेतालमद्राक्षीत्। पृ. 46–49

---

27. (क) यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम् ।
चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुन: ।। सा. द., 3/236

(ख) भारतीय आलोचना शास्त्र ; डॉ. राजवंश सहाय हीरा, पृ. 205

उपर्युक्त उदाहरण में वेताल आलम्बन विभाव है तथा उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव हैं। धनपाल ने वेताल का चित्रण इस कुशलता से किया है कि सहृदय का हृदय भय से काँपने लगता है। वज्रायुध और काञ्चीनरेश कुसुमशेखर की सेनाओं के मध्य युद्ध में भी भयानक रस अभिव्यञ्जित होता है –

सतारकावर्ष इव वेतालदृष्टिभिः, सोल्कापात इव निशितप्रासवृष्टिभिः, सनिर्घातपात इव गदाप्रहारैः, ससंवर्तकाम्बुददुर्दिन इव करिशीकरासारैः, सोत्पातरविमण्डल इव कीलालितकरालचक्रमुक्तिभिः, सवैद्युतः सूर्य इव जवापतज्ज्वलितशक्तिभिः, सखण्डपरशुताण्डव इव प्रचण्डानिलधूवजसहस्रैः, सकालाग्निघूम इव प्रकुपितसुभटभ्रकुटीतमिश्रैरजायत। पृ. 87

समरकेतु राजकुमार हरिवाहन को खोजने के लिए वैताढ्य पर्वत की अटवी में जाता है। इस दुर्गम अटवी का वर्णन अत्यधिक भयोत्पादक है। साहस रहित व्यक्ति तो इस अटवी में प्रवेश नहीं कर सकता, साहसी व्यक्ति को भी अनेक बार सोचना पड़ता है। इस अटवी में अनेक भयङ्कर पशुओं व ऐसी जातियों का निवास है जो पुरुषों की बली देते हैं –

क्षपावसाने च क्षपितनिद्रः श्वापदारावैरुत्थाय शयनाद्गृहीतशस्त्रस्तमेव मार्गमतिदुर्गमनुसरन् रसातलगम्भीरभीमगह्वरया समरभूम्येव साहसरहितजदुष्प्रवेश्या ...प्रतिचुल्ली पच्यमानशूलीकृतानेकश्वापदपिशिताभिः प्रतिनिकुञ्ज–माकर्ण्यमानबन्दीजनाक्रन्दाभिः प्रतिवसति विभज्यमानतस्कराहृतस्वापतेयाभिः प्रतिडिम्भमुपदिश्यमानमृगमोहकारिकरुणगीताभिः प्रतिजलाशयमासीन–बडिशहस्तकैवर्ताभिः प्रतिदिवसमन्विष्यमाणचण्डिकोपहार पुरुषाभिः धृताधिज्यधनुषा निभृत्यमुच्चारितचण्डिकास्तोत्रदण्डेन सर्वतः प्रहितभयतरलदृष्टिना त्रयीभक्तेनेव गाढाञ्चितहिरण्यगर्भकेशवेशन देशिकजनेन लघुतरोल्लङ्घ्यमान–परिसराभिः ... क्वचिदकुण्ठकण्ठीरवारावचकितसारङ्गलोचनांशुशारया क्वचित्तरुतलासीनशबरीविरच्यमानकरिकुम्भमुक्ताभिः शबलगुञ्जाफलप्रालम्बया, क्वचिदधः सुप्तदृप्ताजगरनिःश्वासनर्तितमहातरुस्तम्बया क्वचिदुदश्रुकणिक–स्वागणिकशोच्यमानाकालदलितनिस्यन्दसारमेयवृन्दया, क्वचित्प्रचार–निर्गतवनेचरान्वितष्यमाणपुलमूलकन्दया, क्वचिच्चर्मलुब्धकानुबध्यमान–मार्गणप्रहतमर्मद्वीपिमार्गया, सापराधवध्वेव प्रियालपनसफलीभूतपादतनिष्ठया,

वीरपुरुषतूण्येव गौरखराच्छभल्लशरभरोचितया,जठरजीर्णानेकदिव्यौषधिसमूहयापि व्याधीनां गणैराक्रान्तया गन्तुमटवीभुवा प्रावर्तत। पृ. 199–200

समरकेतु के यात्रा प्रसङ्ग में धनपाल ने गम्भीर व दुर्गम समुद्र का वर्णन इस प्रकार से किया है कि वह भय को उत्पन्न करता है।[28]

शान्त रस

शान्त रस का स्थायी भाव शम है। संसार की निस्सारता का ज्ञान अथवा परम तत्त्व का स्वरूप आलम्बन होता है। जब सांसारिक प्रपञ्च व माया की निस्सारता का भाव मन में उदित होता है, तब सहृदय शान्त रस की नदी में निमग्न हो जाता है। तिलकमञ्जरी में कुछ स्थलों पर शान्त रस का अभिव्यञ्जना हुई है।

मदान्ध गज हरिवाहन को लेकर अदृष्टपार नामक सरोवर में गिर जाता है और हरिवाहन उस सरोवर से बाहर आकर तट पर बैठकर सांसारिक अतात्त्विकता के विषय में चिन्तन करता है। उसका यह चिन्तन शान्तरस को भली-भाँति व्यञ्जित करता है –

अहो विरसता संसारस्थितेः, अहो विचित्रता कर्मपरिणतीनाम्, अहो यदृच्छाकारितायामभिनिवेशो विधिः अहो भङ्गुरस्वभावताविभावनाम् । ... एवमस्वस्थमानसो मानयामि न तद् राज्यम्, न ते राजानः, न स मदान्धगजघटासहस्रसंकुल स्कन्धावारः, न ते छत्रचामरोदयो नरेन्द्रालङ्काराः, न तानि श्रवणहारीणि चारणस्तुतिवचनानि, सर्वमेव स्वप्नविज्ञानोपमं सम्पन्नम्। ..... सर्वं एवायमेवप्रकारः संसारः । इदं तु चित्रं यदीदृशमप्येनमव गच्छतामीदृशीमपि भावानामनित्यतां विभावयतामीदृशानपि दशाविशेषाननुभवतां न जातुचिज्जन्तूनां विरज्यते चित्तम्, न विशीर्यते विषयाभिलाषाः, न भङ्गुरी भवति भोगवाञ्छा, नाभिधावति निःसङ्गतां बुद्धिः, नाङ्गीकरोति निर्व्या बाध नित्यसुखमपवर्गस्थानमात्मा। सर्वथातिगहनो बलीयानेष संसारमोहः। पृ. 244

इसमें मिथ्या प्रतीत होने वाला संसार आलम्बन विभाव है तथा अदृष्टपार सरोवर उद्दीपन विभाव है सांसारिक वस्तुओं के प्रति तुच्छता रूप मति अनुभाव है। आवेग, विषाद आदि व्यभिचारी भाव है।

---

28. ति. म., पृ. 120–122

विद्याधर मुनि के वचनों में भी शान्त रस की झलक मिलती है-

केवलमभूमिर्मुनिजनो विभावानाम्। विषयोपभोगगृध्नवो हि धनान्युपाददते। मद्विधास्तु संन्यस्तसर्वारम्भाः समस्तसङ्गविरता निर्जनारण्यबद्धगृहबुद्धयो भैक्षमात्रभाविसंतोषाः किं तैः करष्यिन्ति। ये च सर्वप्राणिसाधारणमाहारमपि शरीरवृत्तये गृह्णन्ति, शरीरमपि धर्मसाधनमिति धारयन्ति, धर्ममपि मुक्तिकारणमिति बहु मन्यते, मुक्तिमपि निरुत्सुकेन चेतसामिवाञ्छन्ति। .... परार्थसंपादनपमपि धर्मोपदेशदानद्वारेण शास्त्रेषु तेषां समर्थितम् । पृ. 26

समरकेतु हरिवाहन को खोजते हुए अदृष्टपार सरोवर के पास आराम वन में जिनायतन को देखता है। जिनायतन में पूजा करके उसका उद्विग्न चित्त शान्त हो जाता है-

प्रथमं तावत्पर्यटदनन्तसत्त्वसंघातघोरे संसार इवातिदूरपारेऽस्मिन्महाकान्तारे सारभूतं धर्मतत्त्वमिवानेकभङ्गगम्भीरं सरो दृष्टम्। अथ तदवगाहन कर्मनिर्मली भूतात्मना त्रिविष्टपमिव त्रिदेशोपभोगयोग्यमुन्निद्रकल्पद्रुममालामनोहरमुद्याननमिदं क्रमेण चापवर्गस्थानमिव वर्णनापथोत्तीर्ण माहात्म्यस्वरूपमेतज्जिनायतनम्। अतः परं किमन्यदवलोकनीयम्। पृ. 220

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धनपान ने तिलकमञ्जरी में अङ्गीरस शृङ्गार के साथ अन्य अङ्ग रसों की सफल अभिव्यञ्जना की हैं ये अङ्ग रस वर्णनानुसार व समयानुसार उपस्थित होकर अङ्गी रस को पुष्ट करते हुए कविता कामिनी के सौन्दर्य में असीम वृद्धि करते है।

षष्ठ अध्याय

तिलकमञ्जरी में औचित्य

- औचित्य
- औचित्य का क्रमिक विकास
- औचित्य के भेद
- अभिप्रायौचित्य
- अलङ्कारौचित्य
- कुलौचित्य
- तत्त्वौचित्य
- नामौचित्य
- पदौचित्य
- रसौचित्य
- वाक्यौचित्य
- सत्त्वौचित्य
- सारसङ्ग्रहौचित्य
- स्वभावौचित्य
- व्रतौचित्य

औचित्य

उचित के भाव को औचित्य कहते हैं – उचितस्य भावः औचित्यम् अर्थात जो जिसके अनुरूप होता है, उसका उसी के साथ सम्बन्ध होता है। औचित्य शब्द 'उचित' शब्द से 'ष्यञ्' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है।[1] 'उचित' पद में दिवादिगण की समवायार्थक[2] 'उच्' धातु हैं, इससे 'क्त' प्रत्यय करने पर 'उचित' शब्द बनता है। उचित शब्द का अर्थ है – योग्य, उपर्युक्त, ठीक, प्रचलित, अभ्यस्त।[3] वाचस्पत्यम् में इसका अर्थ शास्त्र, परिचित व युक्त दिया है।[4]

इस प्रकार औचित्य का अर्थ हुआ–अनुकूलता, अनुरूपता, उपयुक्तता, योग्यता तथा युक्तता। इस दृश्यमान जगत् में सभी कुछ उपयुक्त और औचित्य से पूर्ण है। ब्रह्मा ने केवल मानव की रचना की। मानव ने अपने आस-पास के परिवेश को देखकर वस्तुओं को जानकर व उनकी उपयुक्तता को समझकर अपने सुख साधनों का विकास कर लिया। तात्पर्य यह है कि इस सम्पूर्ण जगत् प्रपञ्च में औचित्य को दिखाया जा सकता है।

औचित्य का क्रमिक विकास

औचित्य सिद्धांत को प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य क्षेमेन्द्र को जाता है। औचित्य का विकास मानव सभ्यता के विकास से जुड़ा हुआ है। जब से मानव में बुद्धि का विकास हुआ है तथा वह अपने परिवेश को समझने लगा, तभी से उसमें औचित्य का समावेश हो गया। औचित्य के अभाव में मनुष्य मनुष्य नहीं होता। मन, वचन और कार्यों में औचित्य का निर्वहण मनुष्य को मनुष्यत्व से उठाकर देवत्व की पदवी पर बिठा देता है। मनुष्य अपने औचित्यपूर्ण व्यवहार से मित्र को शुत्र व शत्रु को मित्र बना सकता है, इतिहास इसका साक्षी है।

वेद भारतीय संस्कृति के आधार पर स्तम्भ हैं। इसी कारण विचारक प्रत्येक चिन्तनीय बिन्दु पर विचार करते हुए वेदों को आधार अवश्य बनाते हैं। औचित्य

1. ठचितस्य भावः ष्यञ् – वाचस्पत्यम्, सप्तमखण्ड, पृ. 1556
2. उच् समवाये-मिश्रणे इति कविकलपद्रुमः । शब्दकल्पद्रम, चौखम्बा संस्करण, पृ. [2]20
3. संस्कृत हिंदी कोश –आप्टे, पृ. 181
4. शस्ते। परिचिते । युक्ते-वाचस्पत्यम्, पृ. 1058

का मूल भी वेदों में देखा जा सकता है। 'सं गच्छध्वं सं वदध्वम्' सामाजिकौचित्य तथा 'भ्रदं भद्रं क्रतुमस्मातु देहि' मंगलकामनौचित्य के अत्युत्तम उदाहरण है। इसी प्रकार 'एकं सद विप्रा बहुधा वदन्ति' में तत्त्वौचित्य का सुन्दर निरूपण है।[5] वस्तुतः सम्पूर्ण वेद ही औचित्यपूर्ण है।

साहित्यशास्त्र के आद्याचार्य **भरत** ने नाट्यशास्त्र में प्रकारान्तर से औचित्य की विवेचना की है। भरत नाट्य के पात्रों, देश काल तथा अवस्थानुरूप वेश-विन्यास पर बल देते है।[6] उनके अनुसार नट की वेशभूषा उसके देश व आयु के अनुरूप होनी चाहिए, वेशानुरूप गति, गति के अनुरूप पाठ्य तथा पाठ्य के अनुरूप अभिनय होना चाहिए।[7] वे लोक व्यवहार के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि लोक-व्यवहार का अनुसरण करने पर ही नाटक सफल होता है। यदि लोक-व्यवहार का अनुसरण ठीक प्रकार से किया गया हो, किन्तु पात्र की वेशभूषा देश कालानुकूल न हो तो पात्र उसी प्रकार उपहास के पात्र बनते है, जिस प्रकार अङ्गना के कण्ठ में मेखला, हाथों नूपुर और चरणों मे केयूर (बाजूबंद) उसके उपहास के कारण बनते हैं।[8] औचित्य के बिना गुण और अलङ्कार भी सहृदय को आनन्दित नहीं करते। इस प्रकार नाट्यशास्त्र में प्रकारान्तर से औचित्य तत्व का ही उद्भावन परिलक्षित होता है।

आचार्य **भामह** ने भी प्रत्यक्ष रूप से औचित्य पर विचार नहीं किया है तथापि दोषनिरूपण करते हुए उन्होंने प्रकारान्तर से औचित्य की ही प्रतिष्ठा की है। उनके अनुसार उचित आश्रय के संपर्क से दोषयुक्त उक्ति भी उसी प्रकार शोभावर्धक हो जाती है, जिस प्रकार माला में नीला पलाश और अधिक शोभा का

---

5. औचित्य की दृष्टि से भवभूति के नाटकों का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. 41
6. आदेशजों हि वेषस्तु न शोभां जनयिष्यति ।
   मेखलोरसो बन्धे च हास्यायैवोपजायते ।। ना. शा., 21/73
7. वयोऽनुरूप प्रथमस्तु वेषो वेषानुरूपश्च गतिप्रचारः ।
   गतिप्रचारानुगतं च पाठ्यं पाठ्यानुरूपोऽभिनयश्चकार्यः ।। वहीं, 12/25
8. कण्ठे मेखलया नितम्बकफलके तारेण हारेण वा ।
   पाणी नुपूरबन्धनेन चरणे केयुरपाशेन वा ।
   शौर्येण प्रणते रिपौ करुणया नायन्ति के हास्यतां
   औचित्येन विना रुचिं प्रतनुते नालङ्कृतिर्नो गुणः ।। वही

आधान करता है तथा रमणी के नेत्रों में लगा हुआ अञ्जन काला होने पर भी अपने अधिकरण की सुन्दरता के कारण मनोहारी बन जाता है।[9] भामह के इन कथनों से तात्पर्य है कि दोष अनौचित्य का परिणाम है औचित्यपूर्ण वर्णन से दोष भी गुण हो जाते है। साधु और असाधु शब्दों के प्रयोग में भी उन्होंने औचित्य की ओर संकेत किया है।[10]

आचार्य **दण्डी** ने भी औचित्य का अप्रत्यक्ष रूप में ही विवेचना किया है। काव्यदोष निरूपण में उन्होंने औचित्य की ओर संकेत किया है। दण्डी का मत है कि अनुचित सन्निवेश से ही दोष उत्पन्न होता है तथा कवि कौशल से दोष भी गुण बन जाता है।[11] उनके अनुसार देश, काल, न्याय, लोक आदि का विरोधी वर्णन दोष उत्पन्न करता है परन्तु कवि अपनी काव्य निपुणता व वर्णन कौशल से इन दोषों को गुणों में परिणत कर सकता है।

आचार्य **उद्भट्ट** ने काव्यालङ्कारसारसंग्रह नामक ग्रंथ में औचित्य का स्पष्टतः उल्लेख किया है। उनके अनुसार काम क्रोधादि के कारण रस और भाव को अनौचित्यपूर्ण निबंधन में उर्जस्वि अलङ्कार होता है, तथा इनके औचित्यपूर्ण निबंधन से रस और भाव की स्थिति होती है।[12] अनुचित निबंधन से तात्पर्य है-लोक-व्यवहार से विरोध। इस प्रकार लोक व्यवहार औचित्य तथा अनौचित्य की निकष है।

---

9. (क) सन्निवेशविशेषात्तु दुरुक्तमपि शोभते ।
   नीलं पलाशमाबद्धमन्तराले स्रजामिव ।। का. ल., 1/154
   (ख) किञ्चिदाश्रयसौन्दर्यात् धत्ते शोभामसाध्वपि ।
   कान्ताविलोचनन्यस्तं मलीमसविवाञ्जनम् ।। वही, 1/155
10. (क) मालाकारो रचयति यथा साधु विज्ञाय मालाम् ।
   योज्यं काव्येष्ववहितं धिया तद्वदेवाभिधानम् ।। वही, 1/169
   (ख) वक्रवाचां कवीनां ये प्रयोगं प्रति साधवः ।
   प्रयोक्तुं येन युक्ताश्च तदविवेकोऽयमुच्यते । वही, 6/23
11. विरोधः सकलोऽप्येष कदाचित् कविकौशलात् ।
   उत्क्रम्य दोषगणनां गुणवीथीं विगाहते ।। का. द. 3/79
12. अनौचित्यप्रवृतानां कामक्रोधादिकारणात् ।
   भावानां च रसानां च वधम् उर्जस्वि कथ्यते ।। का. सा. स., पृ. 181

आचार्य **रुद्रट** ने औचित्य की विस्तृत विवेचना की है। इनका गुण–दोष विवेचन औचित्य आधारित है। इन्होंने अनुप्रास अलङ्कार के प्रयोग में औचित्य को महत्त्वपूर्ण तत्व बताया है।[13] इनके अनुसार औचित्य तत्त्वज्ञ कवि ही यमकालङ्कार का प्रभावशाली प्रयोग कर सकता है।[14] पुनरुक्ति दोष के विषय में रुद्रट का मत है कि औचित्यवशात् यह दोष स्थितिविशेष (हर्षातिरेक अथवा भयातिरेक) में गुण हो जाता है। ग्राम्य दोष के विषय में वे कहते हैं कि देश, कुल, जाति, विद्या, आयु स्थान और पात्रों के व्यवहार में अनौचित्य का होना ही ग्राम्य दोष है।[15] इससे स्पष्ट है कि रुद्रट औचित्य को ग्राम्यता तथा अग्राम्यता की कसौटी मानते हैं। रसों पर विचार करते हुए भी रुद्रट ने औचित्य का व्यवहार किया है। उनके मतानुसार करुण भयानक एवं अद्‌भुत रसों में वैदर्भी तथा पाञ्चाली रीति उचित है तथा रौद्र रस में लाटी तथा गौडी। औचित्यानुसार ही रीतियों का विधान किया जाना चाहिए।[16] इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि रुद्रट औचित्य को काव्य का आवश्यक तत्त्व मानते हैं तथा काव्य के विविध तत्त्वों के औचित्यपूर्ण प्रयोग की महत्ता पर बल देते है।

औचित्य मीमांसा के क्षेत्र में आचार्य **आनन्दवर्धन** को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने ध्वन्यालोक में औचित्य की गम्भीर व युक्तियुक्त विवेचना की है। आनन्दवर्धन ने रस विवेचन में औचित्य के पालन को आवश्यक बताया है। उनके मतानुसार रसभङ्ग का एकमात्र कारण अनौचित्य है और औचित्य से बढ़कर रस का पोषक अन्य कोई तत्त्व नहीं है।[17] इस प्रकार आनन्दवर्धन ने औचित्य का रस

---

13. एता: प्रयत्नादधिगम्य सम्यीगौचित्यमालोच्य यथार्थसंस्थम् ।
मिश्रा: कवीन्द्रैरथानल्पदीर्घा: कार्या: मुहुश्चैव गृहीतमुक्त: ।। का. ल. 2/32
14. इति यमकविशेषं सम्यगालोचयद्भि: ।
सुकविभिरभियुक्तैर्वस्तु चौचित्यविद्भि: ।। वहीं, 3/59
15. ग्राम्यत्वमनौचित्यं व्यवहाराकारवेशवचनानाम् ।
देशकुलजातिविद्यावित्तवय:स्थानपात्रेषु ।। वही, 11.9
16. वैदर्भीपाञ्चाल्यौ प्रेयसि करुणे भयानकाद्भुतयो: ।
लाटीया गौडीये रौद्रे कुर्यात् यथौचित्यम् ।। वही 16/20
17. अनौचित्यादृते नान्यद् रसभङ्गस्य कारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा ।। ध्वन्या, पृ. 190

के साथ संबंध स्थापित कर इसे एक सिद्धांत रूप प्रदान किया है। परवर्ती आचार्यों ने भी इसी सिद्धांत को आधार बनाकर विवेचनाएँ की हैं। अलङ्कार निबन्धन में औचित्य के पालन का निर्देश करते हुए आनन्दवर्धन कहते हैं कि अलङ्कार का बन्ध रस को ध्यान में रखकर इस प्रकार अनायास होना चाहिए कि कवि को उसके लिए पृथक से कोई यत्न न करना पड़े।[18] यदि कवि यत्न पूर्वक अलङ्कार योजना करेगा, तो काव्य का सर्वस्व रस गौण हो जाएगा तथा अलङ्कार प्रधान। इसी प्रकार आनन्दवर्धन ने संघटनौचित्य, गुणौचित्य, प्रबन्धौचित्य तथा रसौचित्य की विस्तृत विवेचना की है।

इस प्रकार आचार्य आनन्दवर्धन ने औचित्य का विभिन्न काव्य तत्त्वों के साथ संबंध स्थापित कर उस आधार भूमि का निर्माण कर दिया, जिस पर आचार्य क्षमेन्द्र ने औचित्य सिद्धांत रूपी भव्य प्रासाद को आकार प्रदान किया।

अभिनवगुप्त ने भी औचित्य पर अपना मत प्रस्तुत किया है। अलङ्काकारौचित्य का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि अलङ्कार औचित्योपेत होने पर ही काव्य के आत्म तत्त्व को अलंकृत करते है। अनौचित्यपूर्ण अलङ्कार सन्निवेश उसी प्रकार हास्यास्पद हो जाता हैं जिस प्रकार किसी साधु के शरीर पर आभूषण।[19] अभिनवगुप्त के अनुसार काव्याभास, रसाभास, भावाभास का कारण ही औचित्यभङ्ग ही है यथा-औचित्यभङ्ग काव्य काव्याभास, रसानौचित्य रसाभास तथा भावानौचित्य भावाभास होता है।[20] इस प्रकार अभिनवगुप्त ने भी औचित्य को काव्य का आवश्यक तत्त्व माना है।

आचार्य **कुन्तक** ने भी औचित्य के महत्त्व को स्वीकार किया है। उन्होंने वक्राक्ति के स्वरूप वर्णन, उसके भेद-कथन व काव्य के सौंदर्याधायक तत्त्वों के

---

18. रसादिक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत् ।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः ।। ध्वन्या., 2/16

19. कटककेयूरादिभिरपि हि शरीरसमवायिभिश्चेतन आत्मैव तत्तच्चित्तवृत्तिविशेषौचित्यतमतयालङ्क्रियते। तथाहि-अचेतनं शवशरीरं कुण्डलाद्युपेतमपि न भाति, अलङ्कार्यस्याभावात् । यतिशरीरं कटकादियुक्तं हास्यावहं भवति, अलङ्कार्यस्यानौचित्यात्। ध्वन्या 2/5 की लोचन टीका, पृ. 209

20. औचित्येन प्रवृतौ चित्तवृत्तेः आस्वाद्यत्वे स्थायिन्या रसः व्यभिचारिण्या भावः । अनौचित्येन तदाभासः। लोचन टीका।

विवेचन में औचित्य के महत्त्व को प्रदर्शित किया है। पद-वक्रता का वर्णन करते हुए उन्होंने पदौचित्य को पद वक्रता का रहस्य कहा है।[21] कुन्तक ने प्रत्यय वक्रता, लिङ्ग वक्रता, क्रिया वैचित्र्य वक्रता आदि वक्रोक्ति के भेदों में औचित्य के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। उन्होंने स्वभावौचित्य, व्यवहारौचित्य तथा लोक-वृत्यौचित्य का कथन कर औचित्य का महत्त्व दिखाया है।[22]

व्यक्ति विवेककार **महिमभट्ट** औचित्य का विवेचन करते हुए कहते हैं कि रसात्मक काव्य को अनौचित्य रहित होना चाहिए। उन्होंने अनौचित्य को ही दोष रूप में स्वीकार किया तथा रस प्रतीति में बाधक माना है।[23]

इस प्रकार औचित्य के लिए एक सुदृढ़ आधार-भूमि तैयार हो गई थी, जिस पर आचार्य **क्षेमेन्द्र** ने औचित्य-सिद्धांत रूपी भव्य प्रसाद का निर्माण किया। पूर्ववर्ती आचार्यों ने किसी न किसी रूप में औचित्य का स्पर्श व विवेचन अवश्य किया है परन्तु उसके महत्त्व को किसी ने नहीं समझा। आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य की गम्भीरता से परीक्षा कर उसे एक सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठित किया। औचित्य सिद्धांत की भूमिका तैयार करते हुए क्षेमेन्द्र कहते हैं - अलङ्कार तो अलङ्कार है अर्थात् काव्य के शोभाधायक तत्त्व है। और गुण-गुण ही हैं अर्थात् काव्य के उत्कर्षाधान हेतु हैं, परन्तु रससिद्ध काव्य का अनश्वर जीवनाधायक तत्त्व औचित्य ही है।[24] जिस काव्य में सूक्ष्मेक्षण करने पर भी औचित्य दृष्टिगोचर न हो, वहां अलङ्कार एवं गुणों की गणना व्यर्थ है।[25] तात्पर्य यह है कि औचित्य काव्य का अविनाशी जीवित तत्त्व है। इसके अभाव में गुण, अलङ्कार यहाँ तक की रस भी सहृदय हृदयाभिव्यञ्जक नहीं होता। उचित स्थान पर विन्यस्त होने पर ही अलङ्कार

---

21. तत्र पदस्य तावादौचित्यं वक्रतायाः बहुविधभेदभिन्नो वक्रभावः ..। व. जी., 1/57 वृत्ति, पृ. 163
22. भारतीय आलोचना शास्त्र, पृ. 273
23. काव्य स्वरूप सौन्दर्य एवं चमत्कार, पृ. 20
24. अलङ्कारास्त्वलङ्कारा गुणा एव गुणाः सदा।
औचित्यं रस-सिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम् ।। औ. वि. च., का. 5
25. काव्यस्यालमलङ्कारैः किं मिथ्यागुणितैर्गुणैः ।
यस्य जीवितमौचित्यं विचिन्त्यापि न दृश्यते ।। वही, का. 4

तथा गुण काव्य की शोभा व उत्कर्षवर्धन में समर्थ होते हैं।[26] क्षेमेन्द्र कहते हैं कि गले में करधनी, कमर में हार, हाथों में पायल तथा पैरों में बाजुबन्द पहनकर कौन सी कामिनी, शरणागत के प्रति वीरता तथा शत्रु के प्रति करुणा भाव दिखाकर कौन वीर उपहास योग्य नहीं होता। इसी प्रकार औचित्य के बिना अलङ्कार और गुण भी आकर्षक नहीं बन पाते।[27] औचित्य की भूमिका बनाने के पश्चात् क्षेमेन्द्र ने औचित्य का लक्षण किया है– जो जिसके सदृश हो, वही उसके लिए उचित है। इसी उचित के भाव को औचित्य कहते हैं।[28] इस प्रकार औचित्य का अर्थ है उचित कार्य। काव्य में औचित्य का अर्थ है काव्य तत्त्वों की उचित योजना। क्षेमेन्द्र ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए औचित्य को उसका जीवित तत्त्व माना है। यह सत्य है कि बिना जीवन के आत्मा भी व्यवहार्य नहीं हो सकती । इस प्रकार क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य का सर्वस्व प्रतिपादित कर गुण, अलङ्कारादि को उसका अङ्गभूत बना दिया है। डॉ. चन्द्रहंस पाठक भी इस विषय में कहते हैं कि औचित्य एक ऐसा विचित्र तत्त्व है कि वह जितना उत्कृष्ट रूप में दिखाई पड़ेगा, उसी अनुपात से काव्य के अन्य अङ्ग भी उत्कृष्ट हो जायेंगे।[29] आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य के 27 भेदों का वर्णन किया है।[30] ये भेद हैं–

---

26. उचितस्थानविन्यासादलंकृतिरलंकृति ।
औचित्यादच्युता नित्यं भवन्त्येव गुणा गुणाः ।। वही, का. 6

27. कण्ठे मेखलया, नितम्बफलके तारेण हारेण वा,पाणौ नूपुरबन्धनेन, चरणे केयूरपाशेन वा । शौर्येण प्रणते, रिपौ करुणया, नायान्ति के हास्यतामौचित्येन बिना रुचिं प्रतनुते नालंकृतिर्नो गुणाः।। वहीं, पृ. 5

28. उचितं प्राहुराचार्यः सदृशं किल यस्य यत् ।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते ।। औ. वि. च., का. 7

29. औचित्य सम्प्रदाय का हिन्दी काव्यशास्त्र पर प्रभाव, पृ. 309

30. पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे गुणेऽलंकरणे रसे ।
क्रियायां कारके लिङ्गे वचने च विशेषणे ।।
उपसर्गे निपाते च काले देशे कुले व्रते ।
तत्त्वे सत्त्वेऽभिप्राये स्वभावे सारसंग्रहे ।।
प्रतिभायामवस्थायां विचारे नाम्न्यथाशिषि।
काव्यस्याङ्गेषु च प्राहुरौचित्यं व्यापि जीवितम् ।। वहीं, का. 8–10

औचित्य के भेद

1. पद	2. वाक्य	3. प्रबन्धार्थ	4. गुण
5. अलङ्कार	6. रस	7 क्रिया	8. कारक
9. लिङ्ग	10. वचन	11. विशेषण	12. उपसर्ग
13. निपात	14. काल	15. देश	16. कुल
17. व्रत	18. तत्त्व	19. सत्त्व	20. अभिप्राय
21. स्वभाव	22. सारसंग्रह	23. प्रतिभा	24. अवस्था
25. विचार	26. नाम	27. आशीर्वाद	

तिलकमञ्जरी में औचित्य के लगभग सभी भेदों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। क्षेमेन्द्रोक्त औचित्य के कतिपय भेदों के तिलकमञ्जरी से उदाहरण प्रस्तुत है

अभिप्रायौचित्य

सहृदय को सहजता से काव्य के अभिप्राय का बोधन होना ही अभिप्रायौचित्य है। आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार सरलता से अभिप्राय को प्रकट करने वाला काव्य, सज्जनों की सरलता के समान सहृदयों के हृदय को आवर्जित कर लेता है।[31] इसके उदाहरणस्वरूप आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि दीपक रचित पद्य दिया है।[32]

तिलकमञ्जरी में सर्वत्र अभिप्रायौचित्य का सुन्दर निदर्शन प्राप्त होता है। मेघवाहन द्वारा समरकेतु को हरिवाहन का सहचर (मित्र) बनाने में अभिप्रायौचित्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। समरकेतु ऐसा वीर युवक है, जिसके समक्ष वीरों में अग्रणी तथा कौशलेन्द्र की चतुरङ्गिणी सेना का सेनापति भी

---

31. अकदर्थनया सूक्तमभिप्रायसमर्थकम् ।
चित्तमार्वजयत्येव सतां स्वस्थमिवार्जवम् ।। औ. वि. च., का., 32

32. श्येनाङ्घ्रिग्रहदारितोत्तरकरो ज्याङ्कप्रकोष्ठान्तरः
आताम्राधरपाणिपादनयनप्रान्तः पृथूरास्थलः ।
मन्येऽयं द्विजमध्यगोनृपसुतः कोऽप्यम्ब ! निःशम्बल :
पुत्र्येव यदि कोष्ठमेतु सुकृतैः प्राप्तो विशेषातिथि : ।। वहीं, पृ. 141

नतमस्तक हो गया। इसका युद्ध कौशल अद्वितीय है। इसका नैतिक चरित्र भी उत्युच्च कोटि का है। यह मन, वचन तथा कर्म में समान व्यवहार करता है। ऐसा पुरुष मित्रता के सर्वथा योग्य है। समरकेतु को हरिवाहन का सच्चा सुहद् बनाने से यह अभिप्राय व्यंजित होता है कि आगे कथा में इसके द्वारा कोई विशेष कार्य सम्पन्न होना है अतः यहाँ अभिप्रायौचित्य है।

तिलकमञ्जरी अस्वस्थ होने के कारण अपनी प्रिय सखी मलयसुन्दरी को अपने पास बुलाने के लिए कञ्चुकी को भेजती है। जब मलयसुन्दरी उसकी अस्वस्थता का कारण पूछती है तो चतुरिका उत्तर देती है- अवश्यमखिललोकातिशायिरूपलावण्येन पुण्यपरमाणुनिर्मितोदारवपुषा दिव्यपुरुषेण केनापि दर्शयित्वात्मानमपसृतेन विप्रलब्धेयम् ।''[33] निश्चय ही रूप लावण्य में अद्वितीय पुण्य शरीर वाले किसी दिव्यपुरुष ने उसका चित्त हर लिया है। उसकी चेष्टाएँ इसी का संकेत कर रही थी। यही उसकी अस्वस्थता का कारण है। यह जानकर मलयसुन्दरी कहती है-''यद्येवमल्पो व्याधिः।'' यदि ऐसा है तो यह रोग अल्प ही है। मलयसुन्दरी का यह कथन अभिप्रायोपेत है। शारीरिक व्याधियों के लिए औषधियाँ उपलब्ध है तथा उनसे व्याधि का उपशमन भी हो जाता है, परन्तु प्रिय दर्शन से उत्पन्न कामोत्कण्ठा रूप व्याधि ऐसी व्याधि है, जो प्रिय मिलन से भी शान्त न होकर उत्तरोत्तर और अधिक बढ़ती जाती है। इस व्याधि में व्यक्ति दुःखी होकर भी आनन्द को ही प्राप्त करता है। इस प्रकार मलयसुन्दरी का साभिप्राय यह वचन सहृदय-हृदय को आनन्दित कर देता है अतः यहाँ पर अभिप्रायौचित्य है।

सम्राट् मेघवाहन की तपस्या से प्रसन्न होकर देवी लक्ष्मी उसे दर्शन देकर वर माँगने को कहती है। मेघवाहन अत्यन्त विनम्रता से कहता है -''जिससे मैं जगत् में वन्दित व पवित्र चार समुद्रों से परिवेष्टित पृथ्वी के राजाओं, सभी दिशाओं में प्रसारित उत्कृष्ट प्रताप वाले अपने कुल के प्रथम पुरुष आदित्य के यश से युक्त इक्ष्वाकु वंश के राजाओं में अंतिम व अधम न बनूँ तथा जिससे मदिरावती इस लोक में अद्वितीय वीरों को उत्पन्न करने वाली हमारे पूर्वजों की महारानियों की

33. ति. म., पृ. 355

महिमा का अनुवर्तन करे, वैसा करें''[34] मेघवाहन का यह कथन विशेष अभिप्राय को प्रकट कर रहा है। इसके वंश में सदैव ऐसे प्रजापालक राजा उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने अपने यश व प्रताप से दिक्-दिगन्तर को प्रकाशित किया है। अतः वैसा अद्वितीय पुत्र उसकी तथा अपने वंश की कीर्ति को निश्चय ही सभी दिशाओं में फैलाएगा। मेघवाहन के इस कथन का अभिप्राय सहृदय-हृदय में नितरां प्रकाशित हो रहा है अतः यहाँ अभिप्रायौचित्य है।

शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए समुद्र यात्रा के प्रसंग में समरकेतु द्वारा उक्त यह वाक्य 'क्लेशोऽपि वरमल्पकालमनुभूतः शरीरेण स्तोको न जीवितावधिर्मनसा महान् शोकः ।'[35] साभिप्राय तथा तथ्यपरक है। समुद्र यात्रा करते हुए 'दिव्यमंगल ध्वनि' को सुनकर समरकेतु इसके उद्गम स्थल को देखने की इच्छा प्रकट करता है। उसके नाव के कर्णधार तारक की भी यही इच्छा है, परन्तु भयानक जनप्राणियों तथा पर्वत के तटस्थ पत्थरों से दुर्गम समुद्र उसके मनोरथ को शिथिल कर रहा है। इस पर समरकेतु कहता है कि 'शरीर द्वारा अल्पकालिक दुःख सहन करना, हृदय से जीवन पर्यन्त शोक का अनुभव करने से अच्छा है। यह पूर्णतः सत्य है कि मनुष्य समय निकल जाने पर यह चिंतन कर जीवन पर्यन्त दुःखी होता है कि उस समय कुछ कष्ट सहकर कार्य पूर्ण कर लेते तो अच्छा होता। समरकेतु के कथन का अभिप्राय यह है कि इच्छित कार्य को उचित समय पर पूर्ण कर लेना चाहिए अन्यथा मनुष्य को जीवनभर दुःख व पश्चाताप होता है।[36] समरकेतु का यह कथन वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है। यह उन लोगों को शिक्षा देता हैं, जो आज का कार्य कल पर छोड़ देते है।

---

34. यथाहमेषामशेषभुवनवन्दितावदातचरितानां चतुरुदधिवेलावधे र्वसुंधराभुजामखिलदिङ्मुखविसर्पतोदग्रप्रतापतया तुलितनिजवंशादिपुरुषादित्य यशसामिक्ष्वाकुवंश्यानामवनीमृतां पश्चिमो न भवामि, यथा च देवी मदिरावती जगदेकवीरात्मजप्रसविनीनामस्मत्पूर्वपुरुषमहिषीणां महिमानमनुविधते, तथा विदेहि। ति. म., पृ. 58
35. वही, पृ. 143
36. आदानस्य प्रदानस्य कर्त्तव्यस्य च कर्मणः ।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम् ।। पञ्चतत्रम्

अलङ्कारौचित्य

वर्ण्य विषय के अनुकूल अलङ्कार योजना ही अलङ्कारौचित्य कहलाती है। अलङ्कारौचित्य की परिभाषा देते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं अर्थानुकूल अलङ्कार से कवि की उक्ति उसी प्रकार सुशोभित होती है, जिस प्रकार उन्नत पयोधरों पर लटकते हार से कोई मृगनयनी सुशोभित होती है।[37]

आचार्य आनन्दवर्धन भी इसी तथ्य को समर्थन करते हुए कहते हैं-जिस अलङ्कार की रचना रस से आक्षिप्त रूप में बिना किसी अन्य प्रयत्न के हो सके, वहीं अलङ्कार मान्य है।[38] महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरी में प्रयुक्त अलङ्कार औचित्योपेत हैं। तिलकमञ्जरी में लगभग सभी प्रमुख अलङ्कारों का प्रयोग पदे-पदे परिलक्षित होता है। औचित्यपूर्ण अलङ्कारों से उत्पन्न चमत्कार को देखिए

अखण्डदण्डकारण्यभाजः प्रचुरवर्णकात् ।
व्याघ्रादिवभयाघ्रातो गद्याद्व्यावर्तते जनः ॥[39]

अतिदीर्घ समासों से युक्त तथा अधिक वर्णनों वाले गद्य से डरकर लोग उसी प्रकार विरक्त होते हुए हैं, जिस प्रकार खण्ड रहित अटवी विशेष में रहने वाले लोग, अनेक रंगों वाले व्याघ्र से। यहाँ पर प्रचुर वर्णनों तथा समास बहुल गद्य की उपमा व्याघ्र से दी गई है। जिस प्रकार लोग अनेक वर्ण वाले व्याघ्र से डरते हैं, उसी प्रकार दीर्घ समास युक्त रचना से लोग भयभीत हो जाते हैं। यहाँ पर श्लेष अलङ्कारसे युक्त उपमा अलङ्कारकी छटा दर्शनीय है, अतः यहाँ पर अलंकारौचित्य है। उपमा अलङ्कारका एक और उदाहरण द्रष्टव्य है -

शुष्कशिखरिणि कल्पशाखीव, निधिरधनग्राम इव, कमलखण्ड इव मारवेऽध्वनि भवभीमारण्ये इह वीक्षितोऽसि मुनिनाथ।[40]

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस संसार रूपी भीषण वन में शुष्क पर्वत पर कल्पवृक्ष के समान, निर्धन ग्राम के धनकोश के समान, मरुस्थल के मार्ग में कमलवन के समान आप दिखते हैं।

37. अर्थौचित्यवता सूक्तिरलङ्कारेण शोभते ।
पीनस्तनस्थितेनेव हारेण हरिणेक्षणा ॥ औ. वि. च., का. 15

38. रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत् ।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य सोऽलंकारो ध्वनौ मतः ॥ ध्वन्या., 2/16

39. ति.म., भूमिका, पद्य 151

40. वही; पृ. 218

यहाँ पर मुनि के लिए ग्रहण किए गये अनेक उपमानों की माला द्रष्टव्य है। मुनि जन सर्वदा लोंगों को संसार रूपी दु:ख सागर को सरलता से पार करने के उपाय बताते है। मुनिजनों के सामीप्य से दु:खी लोगों का चित्त शान्त हो जाता है। इसीलिए यहाँ पर मुनि को कल्पवृक्ष, धनकोश तथा कमलवन के समान बताया गया है अत: यहाँ पर अलंकारौचित्य है। रूपक अलङ्कारका एक उदाहरण प्रस्तुत है-

सत्यं वृहत्कथाम्भोधेर्बिन्दुमादाय संस्कृता ।
तेनेतरकथाः कन्थाः प्रतिभान्ति तदग्रतः ॥[41]

कवियों द्वारा निबद्ध कथाएँ अवश्य ही वृहत्कथा रूपी समुद्र (अनेक कथानक रूप रत्नों के होने के कारण) से बिन्दु (कथानक) लेकर रची गई हैं क्योंकि वृहत् कथा के समक्ष अन्य कथाएं लबादारूप (अनेक जीर्ण वस्त्रों से युक्त आवरण विशेष) प्रतीत होती है।

यहाँ वृहत्कथा पर समुद्र, बिन्दु पर कथानक तथा कथाओं पर लबादे का आरोप किया गया है, अत: यहाँ रूपकलंकार है। (वृहत्कथा को समुद्र कहा गया है। जिस प्रकार समुद्र मोतियों व रत्नों का भण्डार है। उसी प्रकार वृहत् कथा से लिया गया है। अत: वृहत् कथा की उत्कृष्टता प्रकट करना औचित्यपूर्ण है)।

धनपाल को परिसंख्या तथा विरोधाभास अलङ्कार अत्यधिक प्रिय थे। परिसंख्या अलङ्कार का उदाहरण प्रस्तुत है -

यस्यां च वीथीगृहाणां राजपथातिक्रमः, दोलाक्रीडासु दिगन्तरयात्रा, कुमुदखण्डानां राज्ञा सर्वस्वपहरणम्, अनङ्गमार्गणानां मर्मघट्टनव्यसनम्, वैष्णवानां कृष्णवर्त्मनि प्रवेशः ...पृ.12

जिस नगरी में आपण तथा घर राजमार्ग के दोनों और होने के कारण उनका ही राजमार्गोल्लंघन था न कि लोग शासन पद्धति की अवहेलना करते थे, दोला क्रीडाओं (झूलों) में ही एक दिशा से अन्य दिशा में गमन होता था, न कि राजदण्ड के कारण किसी का दिङ्निष्कासन होता था, चन्द्रमा के द्वारा ही कुमुदखण्डों की निद्रा का हरण होता था, न कि राजा के द्वारा दण्ड रूप में किसी

41. ति.म. भूमिका, पद्य-21

के धन का हरण किया जाता था, कामदेव वाणें की ही हृदय भेदन में आसक्ति था, न कि किसी का विद्वेष वश मर्म छेदन किया जाता था। विष्णु भक्तों का ही विष्णूपदिष्ट आचार पद्धति का प्रवेश होता था, न कि किसी का अपवित्र मार्ग में प्रवेश होता था।

यहाँ पर परिसंख्या अलङ्कार के प्रयोग से अयोध्या नगरी की उत्कृष्टता तथा वहाँ के निवासियों की सच्चरित्रता व्यञ्जित हो रही है। अतः यहाँ पर परिसंख्यालंकारौचित्य है।

विरोधाभास अलङ्कार धनपाल को बहुत प्रिय है। प्रत्येक वर्णन में कहीं न कहीं विरोधाभास अलङ्कार का प्रयोग प्राप्त हो जाता है। अदृष्टपार सरोवर के वर्णन में विरोधाभास अलङ्कार की सहज छटा दर्शनीय है-

मद्रुरुतरुचितमपि नमद्रुरुतरुचितम्, बकैरवभासितमपि नवकैरवभासितम् विषैकसदनमप्यमृतमयम् ...अदृष्पाराभिधानं सरो दृष्टवान्।पृ. 205

जल पक्षियों के शब्द से मनोहर होने पर भी जल पक्षियों के रव से मनोहर नहीं था (विरोध परिहार हेतु-फल सम्पदा से झुके हुए विशाल वृक्षों से व्याप्त था), बगुलों से सुशोभित होने पर भी बगुलों से सुशोभित नहीं था। (विरोध परिहार हेतु-नवीन कुमुदों से सुशोभित था) विष का एक निवास स्थान होने पर भी अमृतमय था। (विरोध परिहार हेतु- कमलों के तन्तुओं और मृणलों-जड़ों का एक सदन होने के कारण अमृत समान स्वादिष्ट जल वाला था, ऐसे अदृष्टपार नामक सरोवर को देखा)।

यहाँ पर प्रस्तुत अदृष्टपार सरोवर के स्वाभाविक वर्णन में विरोधाभासी वर्णन ने अपूर्व चमत्कार उत्पन्न किया है, अतः यहाँ पर विरोधाभास अलङ्कारौचित्य है।

आदि जिन की आराधना मे भी विरोधाभास की रमणीयता द्रष्टव्य है- समरकेतु ने ऐसे ऋषभदेव की अर्चना की जो प्रणामार्थ आऐ हुए देवताओं के करोड़ों मस्तकालङ्करणों के स्पर्श से पराग (धुलि) युक्त होते हुए भी, पराग रहित थे विरोध परिहार-दराग (विषयादि अभिलाषा) रहित थे, अप्रमित धन को तिनके के समान त्याग देने पर भी अनन्त धन युक्त थे। विरोध परिहार-विघ्न जनक कार्यों

से रहित थे, तीनों लोकों के ज्ञानालोकजनक होते हुए भी ज्ञानदीपभिन्न थे, विरोधपरिहार-मोक्षरूप सुख के सागर थे। संसाररूप प्राचीन वन के अद्वितीय पारिजात नामक देववृक्ष होते हुए भी पारिजात भिन्न थे विरोध परिहार-आभ्यन्तर बाह्य शत्रुओं से रहित थे, मोक्ष प्राप्त करने योग्य सभी लोगों के नेत्रों को आनन्दित करने वाले होते हुए भी आनन्दरहित थे। विरोध परिहार-नाभि नामक सुकुल के पुत्र थे अर्थात् ऋषभदेव थे।[42]

यहाँ आदिजिन की स्तुति में विरोधाभास से अवरोध उत्पन्न होने पर अर्थान्वय होते ही सहृदय-हृदय में अपूर्व आनन्दानुभूति की लहर प्रवाहित होने लगती है और काव्य में विरोधाभासालंकारौचित्य का आधान होता है।

कुलौचित्य

आचार्य क्षेमेन्द्र कुलौचित्य की परिभाषा करते हुए कहते हैं - जिस प्रकार कुलीनता से पुष्ट औचित्य पुरुष के विशेष उत्कर्ष का जनक होता है, उसी प्रकार कुलमूलक औचित्य काव्य की उत्कृष्टता का कारण तथा सहृदयहृदयाह्लादक होता है।[43] इस प्रकार कुलौचित्य का अर्थ है कुल वर्णन में व्यक्ति विशेष की उत्कृष्टता आदि का वर्णन करना।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने कालिदास के प्रकृत पद्य[44] को कुलौचित्य के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसमें इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का वृद्धावस्था में वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना कुलौचित्य के रूप में प्रतिपादित किया गया है।

महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरी में आचार्य क्षेमेन्द्रोक्त कुलौचित्य का निर्वहण सर्वत्र परिलक्षित होता है। तिलकमञ्जरी के नायक-नायिका प्रशंसित कुलोत्पन्न है। अन्य पात्र भी अपने अपने कार्यों के अनुरूप कुलों से संबंधित हैं।

---

42. प्रणतसुरमुकुटकोटिचुम्बितचरणपरागमपरागं तृणवदुज्झितान्तरायमनन्तरायं त्रिभुवनभवनदीपमभवनदीपं संसारजीर्णारण्यैकपारिजातमपारिजातं सकलभव्यलोकनयनाभिनन्दनं नाभिनन्दनम् ...। ति.म.,पृ. 218

43. कुलोपचितमौचित्यं विशेषोत्कर्षकारणम् ।
काव्यस्य पुरुषस्येव प्रियं प्राय: सचेतसाम् ।। औ. वि. च., का. 28

44. अथ स विषयव्यावृत्तात्मायथा विधि सूनवे नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितापतवारणम्।।
मुनिवनतरुच्छायां देव्यातया सह शिश्रिये। गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हिकुलव्रतम् ।।वही, पृ. 129

महाकवि धनपाल ने सर्वप्रथम अपने कुल की अतिशय उदात्तता का वर्णन किया है। धनपाल काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण है। धनपाल के पितामह देवर्षि दानवीर थे।[45] धनपाल के पिता का नाम सर्वदेव था, जो स्वयं सभी शास्त्रों के अध्येता, कर्मकाण्ड, में निपुण थे। इनकी वाणी काव्य निबन्धन व काव्यार्थ दोनों में समान रूप से कुशल थी।[46] इनके कुल के वर्णन से यह ध्वनित होता है कि जिस कुल में सदैव प्रकाण्ड विद्वान् उत्पन्न हुए हैं, उसी कुल में उत्पन्न धनपाल किस प्रकार से सामान्य व्यक्ति हो सकते हैं।

सम्राट् मेघवाहन इक्ष्वाकु वंशीय राजा है। इसकी राजधानी अयोध्या नगरी है। इसके कार्य इसके प्रशंसित कुल परम्पराओं के अनुरूप ही हैं। यह विद्याधर मुनि के दर्शन करके कहते है कि ''यह राज्य, पृथ्वी, धन अथवा मेरा यह शरीर जो भी आपके अथवा अन्य के प्रयोजन की सिद्धि में उपयोगी हो, वह स्वीकार करे।''[47] मेघवाहन के ये वचन इसकी कुल परम्पराओं के अनुरूप ही हैं। इक्ष्वाकु वंशीय राजा सदा परहित तथा प्रजा रंजन के कार्य में संलग्न रहते है। परार्थ सम्पादन में ये अपने शरीर की भी गणना नहीं करते। मुनि के प्रति वंशानुकूल मेघवाहन के ये वचन कुलौचित्य का आधान कर रहे हैं।

मेघवाहन के लिए अपने प्राणों से अधिक अपने वचनों का महत्त्व है। जब वेताल मेघवाहन को किसी ऐसे राजा की शीश लाने के लिए कहता है, जिसने कभी किसी याचक को निराश न किया हो तथा प्राणों का संकट उत्पन्न होने पर भी शत्रु के समक्ष सिर न झुकाया हो। तब मेघवाहन उसे अपना शीश स्वीकार करने के लिए कहते हैं। वेताल के 'हाँ' कहने पर वे अपना शीश काटने लगते हैं।[48] उस समय उनके मन में एक क्षण के लिए भी अपने प्राणों को बचाने का विचार नहीं आता। उनके इस साहस को देखकर तुलसीदास की यह उक्ति याद आती है। – ''रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाए पर वचन न जाई।'' महाराज

45. अलब्ध देवर्षिरिति प्रसिद्धिं यो दानवर्षित्वविभूषितोऽपि । ति. म., भूमिका, पद्य 51
45. शास्त्रेष्वधीती कुशलः क्रियासु, बन्धे च बोधे च गिरां प्रकृष्टः ।
तस्यात्मजन्मा समभून्महात्मा, देवः स्वयंभूरिव सर्वदेवः ।। वही, पद्य 52
47. इदं राज्यम्, एषा में पृथिवी एतानि वसूनि, ... इदं शरीरं, एतद्गृहं गृह्यतां स्वार्थ सिद्धये परार्थसम्पादनाय वा, यदत्रोपयोगार्हम् । वही, पृ. 26
48. वही, पृ. 51-52

दशरथ ने अपने प्राण देकर भी अपने वचन की रक्षा की थी। उसी इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न सम्राट् मेघवाहन का यह कृत्य भी प्रस्तुत उक्ति को चरितार्थ कर रहा है। अतः यहाँ कुलौचित्य है।

तिलकमञ्जरी कथा का नायक हरिवाहन सम्राट् मेघवाहन का पुत्र है। यह भी अपने कुलोचित आचार-व्यवहार का वहन करता है। परोपकार के लिए तो यह सदैव तत्पर रहता है। अनङ्गरति के दुःख को जानकार यह उसके लिए छः माह तक कठोर तप करता है।[49] यह उसके कुलोचित आचरण का उत्कृष्ट उदाहरण है। अपने शरीर को कष्ट देकर किसी दूसरे व्यक्ति के प्रयोजन की सिद्धि तो इक्ष्वाकु वंशज ही कर सकता है। हरिवाहन के इस कृत्य से यह भी व्यञ्जित होता है कि इक्ष्वाकु वंशज अपना सर्वस्व देकर भी पर हित में रत रहते हैं।

मलयसुन्दरी हरिवाहन का परिचय देते हुए उसे सभी शास्त्रों व शस्त्र विद्या में निपुण बताती है।[50] शास्त्राध्ययन का औचित्य है बुद्धि का निर्मलीकरण तथा तत्त्वों का ज्ञान। तत्त्व का ज्ञान हो जाने पर मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन मे सजग हो जाता है। राजा का कर्त्तव्य होता है प्रजानुरञ्जन करना। प्रजानुरञ्जन इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का सर्वोपरि धर्म है। उत्तररामचरित' में भी महर्षि वशिष्ट राजा राम को निर्देश देते हैं कि प्रजाकल्याण में निरत हो जाओं, क्योंकि उससे यश मिलता है। जो कि आपका सर्वोत्तम धन है।[51] हरिवाहन को शस्त्र विद्या में पारंगत कहने से ध्वनि निकलती है कि शत्रु इनसे भयभीत रहते है। शस्त्र विद्या में कुशलता का फल है अपने राज्य की सभी सीमाओं को शत्रु-शून्य कर देना। हरिवाहन का अपने कुलानुरूप शास्त्राध्ययन तथा शास्त्र विद्या में निपुणता कुलौचित्य को कर रही है।

तत्त्वौचित्य

तत्त्वौचित्य से अभिप्राय है काव्य में तात्त्विक बातों का सन्निवेश। काव्य में सत्यार्थ (तात्त्विक बातों) की उद्भावना से उसकी उपादेयता अत्यधिक बढ़ जाती है

49. ति.म., पृ. 398-400
50. निरवद्यशस्त्रविद्यापारदृश्वा किमपि कुशलः कलासु ...। वही, पृ. 356
51. युक्तः प्रजानमनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत् परमं धनं वः । उ. च. रा. 1/11

क्योंकि ऐसे काव्य में दूसरों को सामान्य सत्य की विशेष प्रतीति कराने की दृढ़ता होती है।[52] अतः कविकर्मस्वरूप काव्य तत्त्वौचित्य का प्रतिपादक होने पर ही सहृदयों के लिए उपादेय होता है।[53] तात्पर्य यह है कि कवि काव्य में सरसता व सरलता से सत्य प्रत्यय का उद्भावन कर सामाजिक को सुकर्मों में प्रवृत्त कर सकता है। अतः तात्त्विकता का सन्निवेश होने पर काव्य अधिक उपादेय हो जाता है। तत्त्वौचित्य का उदाहरण आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपनी रचना बौद्धावदानलतिका से दिया है।[54] इसमें कहा गया है कि प्राणियों के पूर्वकृत कर्म कभी विनष्ट नहीं होते, वे सदैव प्राणी के साथ रहते हैं। यहाँ कर्म रूप सत्य की उद्भावना से तत्त्वौचित्य की हृदयस्पर्शी अभिव्यञ्जना हो रही है।

तिलकमञ्जरी में सत्य प्रत्यय का सन्निवेश सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः तिलकमञ्जरी कथा जैन आगमों को आधार बनाकर रची गई है। इसीलिए इसमें तात्त्विकता का सन्निवेश स्वभाविक ही है। हरिवाहन द्वारा इस संसार की असारता रूप तत्त्व का चिन्तन द्रष्टव्य है – अहो ! धनसम्पदाओं को क्षणभङ्गुरता . ..यह सम्पूर्ण जगत् दुःख से परिपूर्ण है। यह आश्चर्यजनक है। कि इस जगत् की ऐसी शोचनीय को जानते हुए भी, इस प्रकार की अनित्यता पर विचार करते हुए भी, अनेक प्रकार की अवस्था विशेषों का अनुभव करने पर भी प्राणियों का चित्त विरक्त नहीं होता, रूपरस गन्धादि की अभिलाषा निवर्तित नही होती, विषय भोगों की इच्छा नष्ट नहीं होती, अनासक्ति प्राप्त नहीं होती।[55]

---

52. औचित्य सम्प्रदाय का हिन्दी काव्यशास्त्र पर प्रभाव : डॉ. चन्द्रहंस पाठक, पृ. 149
53. काव्यं हृदयसंवादि सत्यप्रत्ययनिश्चयात् ।
तत्त्वोचिताभिधानेन यात्युपादेयतां कवेः ।। औ. वि. चा., का. 30
54. दिवि भुवि फणिलोके शैशवे यौवने वा जरसि निधनकाले गर्भशय्याश्रये वा ।
सहगमनसहिष्णोः सर्वथा देहभाजां नहि भवति विनाशः कर्मणः प्राक्तनस्य ।। वहीं, पृ. 135
55. अहो विरसता संसारस्थितेः, अहो विचित्रता कर्मपरिणतानाम्, अहो यदृच्छाकारिता–यामभिनिवेशो विधिः, भङ्गुरस्वभावता विभावानाम् । .... सर्व एवायमेवंप्रकारः संसारः । इदं तु चित्रं यदीदृश्यमप्येनवगच्छतामीदृशीमपि भावनामनित्यतां विभावयतामीदृशानापि दशाविशेषाननुभवतां न जातुचिज्जन्तूनां विरज्यतेचित्तम्, नविशीर्यतेविषयाभिलाषः,नभङ्गुरीभवतिभोगवाञ्छा, नाभिधावति निःसङ्गतां बुद्धिः, नाङ्गीकरोति निव्वर्याबाधनित्यसुखमपवर्गस्थानमात्मा। ति. म., पृ. 244

यहाँ पर संसार का अनित्यता रूप तत्त्व का उद्भावन किया गया है। जो प्राणी इस तत्त्व को जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है।

मेघवाहन के धनादि स्वीकार करने के आग्रह को अस्वीकार करते हुए विद्याधर मुनि कहते हैं कि कामिनी-काञ्चनादि विषयों के उपभोगार्थ ही लोभीजन धन ग्रहण करते हैं।[56] मुनिजन सांसारिक विषयों से दूर रहते हैं क्योंकि विषयासक्ति सभी प्रकार के दोषों की जड़ है। वे शरीर की रक्षा भी इसलिए करते है क्योंकि शरीर ही धर्म का सर्वप्रथम साधन है। धर्मोपदेश के द्वारा ही परकीय प्रयोजन की सिद्धि भी हो जाती हैं। अतः मुनियों को धन से क्या प्रयोजन। मुनियों की वाणी ही सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है। जो मनुष्य विषयों में आसक्ति छोड़ मुनि उपदेश को सुनकर सदाचरण करता है वह धन के बिना भी सुख प्राप्त करता है। यह सर्वानुभूत सत्य है कि धन अपने साथ अनेक दोषों को लाता है। अतः मुनि का यह कथन तत्त्वौचित्योपेत है।

नामौचित्य

नामौचित्य का अर्थ है पात्र के कर्म के अनुरूप नाम का प्रयोग। जिस प्रकार मनुष्य के कर्म के अनुसार उसके गुण दोषों का ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार काव्य के प्रतिपाद्य विषय के अनुसार उसके गुण दोषों का ज्ञान हो जाता है।[57] नामौचित्य के उदाहरण के रूप में क्षेमेन्द्र ने कालिदास का प्रकृत[58] पद्य दिया है। इसमें उन्होंने मन को छिन्न भिन्न करने वाले कामदेव के 'पञ्चबाण' नाम को नामौचित्य का उत्तम उदाहरण माना है क्योंकि एक हिंसक के लिए बाणादि सम्पन्नता आवश्यक है।

महाकवि धनपाल ने इस गद्य कथा के नायक का नाम **'हरिवाहन'** रखा है। हरिवाहन का अर्थ है हरि अर्थात् इन्द्र का वाहन - हरेर्वाहनः, हरिं वाहयति, स्थानान्तरं नयति ।[59] मेघवाहन हरिवाहन को पुत्र रूप में प्राप्त करने से पहले स्वप्न

---

56. विषयोभोगगृध्नवो हि धनान्युपाददते । ति.म., पृ. 26
57. नाम्ना कर्मानुरूपेण ज्ञायते गुणदोषयोः ।
    काव्यस्य पुरुषस्येव व्यक्ति : संवादपातिनि ।। औ. वि. च., का 38
58. इदमसुलभवस्तुप्रार्थनादुर्निवारः प्रथममपि मनो मे पञ्चबाणः क्षिणोति।
    किमुत मलयवातान्दोलितापाण्डुपत्रैरुपवनसहकारैर्दर्शितेष्वङ्कुरेषु ।। वही, पृ. 162-63
59. वाचस्पत्यम्, पृ. 5420

देखते हैं कि इन्द्र का वाहन ऐरावत हाथी आकाश से उतर कर मदिरावती के स्तनों से उसी प्रकार दुग्ध पान करता है, जिस प्रकार श्री गणेश माता पार्वती के स्तनों से दुग्धपान करते थे। इस दृष्टि से हरिवाहन का नाम रखना उचित ही है।[60] हरिवाहन नाम तथा श्रीगणेश और ऐरावत में साधर्म्य दिखाने से यह भी व्यञ्जित हो रहा है कि जिस प्रकार गजानन सभी के वन्दनीय है। उसी प्रकार हरिवाहन भी अपने कर्मों से इस लोक में यश प्राप्त करेगा।

पूर्वजन्म में हरिवाहन ज्वलनप्रभ नामक दिव्य वैमानिक था। हरिवाहन नाम से इसके पूर्व जन्म की दिव्यता का तथा इस जन्म मे इसके द्वारा सम्पादित किए जाने वाले शुभकर्मों का भी आभास हो रहा है। अतः हरिवाहन नाम औचित्यपूर्ण है।

तिलकमञ्जरी में वर्णित अयोध्यानगरी के सम्राट का नाम **'मेघवाहन'** है। मेघवाहन का अर्थ है मेघ वाहन है जिसके अथवा जो मेघों का संचालन करे – मेघो वाहनमस्य, मेघान् वाहयति चालयति यः । मेघवाहन नाम से नामधारी का मेघों पर नियत्रंण का ज्ञान होता है। इन्द्र मेघों का स्वामी तथा नियन्त्रक है। मेघवाहन इन्द्र का ही अपर नाम है। जिस प्रकार इन्द्र मेघों से वर्षा करना कर, पृथ्वी को अन्न व धान्य से परिपूर्ण करके, प्रजाओं को सुखी करता है, उसी प्रकार मेघवाहन भी अपने सुशासन व कल्याणकारी नीतियों की वर्षा से अपनी प्रजा को सन्तुष्ट व सुखी करता है। धनपाल ने अयोध्या को स्वर्ग से उत्कृष्ट कहा है। स्वर्ग का अधिपति इन्द्र है। इस प्रकार स्वर्ग के समान रमणीय अयोध्या नगरी का स्वामी मेघवाहन (इन्द्र) है। इन्द्र के अन्य नामों की अपेक्षा मेघवाहन नाम प्रजा के लिए इसके कल्याणकारी स्वरूप को प्रकट करता है। जिस प्रकार मेघों का प्रसार सर्वत्र है, उसी प्रकार अपने सचिवों के माध्यम से मेघवाहन का प्रसार अपने पूरे साम्राज्य में है। इस प्रकार मेघवाहन नाम अपने नामौचित्य को नितरां द्योतित करता है।

सम्राट् मेघवाहन की नगरी **'अयोध्या'** भी नामौचित्य का अनुपम उदाहरण है। अयोध्या- योद्धुं शक्या योध्या, न योध्या अयोध्या अर्थात् जिससे युद्ध न किया जा सके। अयोध्या का अपर नाम साकेत भी है। परन्तु यहाँ साकेत उस अर्थ

60. स्वप्ने शतमुन्युवाहनो वारणपतिर्दृष्टः इति संप्रधार्य ....हरिवाहन इति शिशोर्नाम चक्रे। ति.म., पृ. 78

गाम्भीर्य को प्रकट नहीं कर सकता। अयोध्या नाम से जहाँ एक ओर प्रकृत नगरी की रक्षा के सभी प्रकार के उपकरणों से सम्पन्न होना द्योतित हो रहा है, वहीं दूसरी ओर इस नगरी को जीतने में शत्रुओं की असमर्थता भी प्रकट हो रही है। धनपाल ने अयोध्या की स्वर्ग के साथ उपमा देकर भी यही तथ्य प्रकट किया है, कि जिस प्रकार असुरों के द्वारा स्वर्ग को जय नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार शत्रुओं के द्वारा अयोध्या अविजित है। अतः अविजितार्थ व्यञ्जक होने के कारण अयोध्या नाम पूर्णतः औचित्यपूर्ण है।

विद्याधर मुनि मेघवाहन को '**अपराजिता**' नामक विद्या देते है। इस विद्या का ''अपराजिता' नाम विशेष औचित्य से युक्त है। अपराजिता- न पराजिता कदाचिदन्यविद्यया इति अपराजिता अर्थात जो विद्या किसी अन्य विद्या के द्वारा पराजित न की जा सके। सम्राट् मेघवाहन यौवन का अत्यधिक समय बीत जाने पर भी सन्तान प्राप्त न होने के कारण दुःख से संतप्त थे। विद्याधर मुनि अपने तपोबल से यह जान जाते हैं कि उसका समाप्त प्रायः अदृष्ट ही अपत्योत्पत्ति में बाधक है। इसलिए वे उसे अपराजिता विद्या का जप करने के लिए कहते हैं। यह विद्या अपने नाम अनुरूप ही सभी मनोरथों की शीघ्र पूरा करने में समर्थ है। अतः अपराजिता नाम सर्वथा औचित्यपूर्ण है।

पदौचित्य

पदौचित्य का अर्थ है – उचित पद का प्रयोग । भाव व विषय के अनुकूल पद के प्रयोग से वाक्य में चारुता आती है। आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार औचित्यपूर्ण पद के प्रयोग से कवि सूक्ति उसी प्रकार से सुशोभित होती है जिस प्रकार गौरवदना नायिका के ललाट पर कस्तूरी का श्याम तिलक तथा श्यामवदना नायिका के मस्तक पर श्वेत तिलक उसके सौंदर्य को द्विगुणित कर देता है।[61] आचार्य क्षेमेन्द्र ने महाकवि परिमल के प्रकृत पद्य[62] में प्रयुक्त मुग्धा पद को उदाहरण स्वरूप दिया है। इस पद्य में 'मुग्धा' पद महारानी के सुलभ सरलता को अभिव्यञ्जित कर हृदयावर्जक चमत्कार का सम्पादन कर रहा है।

---

61. तिलकं बिभ्रति सूक्तिर्भात्येकमुचितं पदम्। चन्द्राननेव कस्तूरीकृतं श्यामेव चान्दनम् ।।
औ. वि. च., का. 11
62. मुग्धा गुर्जरभूमिपालमहिषी प्रत्याशया पाथसः।
कान्तारे चकिता विमुञ्चति मुहुः पत्युः कृपाणे दृशौ ।। वही, पृ. 8

महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरी में पदौचित्य पदे-पदे परिलक्षित होता है। धनपाल ने मेघवाहन की महारानी मदिरावती के लिए '**द्वितीया**'[63] पद का प्रयोग किया है। 'द्वितीया कथ्यते जाया'। मदिरावती के लिए प्रयुक्त यह पद औचित्य युक्त है क्योंकि इस पद से यह प्रकाशित हो रहा है कि मेघवाहन और मदिरावती दो पृथक् शरीरधारी है परन्तु दोनों में एक ही प्राण संचारित हो रहा है। इस पद में इन दोनों के अत्यधिक प्रेम तथा प्राणान्त तक अभिन्नता का भाव अभिव्यञ्जित हो रहा है। अतएव यहाँ पदौचित्य है। उत्तररामचरित में भी प्राप्त होता है - 'त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम्' अर्थात् 'त्वं मम अपरं हृदयमसि एकमेव आवयोः हृदयं द्विधा स्थितम् ।'[64]

ब्राह्मणों की प्रकृष्ट पवित्रता को दिखाने के लिए '**द्विज**'[65] पद का प्रयोग किया गया है। कहा गया है - जन्मना जायते शूद्रः संस्कारैर्द्विज उच्यते । अर्थात् जन्म से सभी शूद्र होते है, संस्कारों से उनका दूसरा जन्म होता हैं। ब्राह्मणें के संदर्भ में इसका अर्थ है, जिसका पवित्रता रूप संस्कार किया जा चुका हो। 'द्विज' पद से ब्राह्मणों की प्रकृष्ट पवित्रता अभिव्यक्त होती है, अतएव यहाँ पदौचित्य है।

धनपाल ने पृथ्वी की कठोरता अभिव्यक्त करने के लिए '**वसुन्धरा**'[66] पद का प्रयोग किया है। वसुन्धरा अर्थात् वसुनि कनरजतादिनी धनानि धारयतीति वसुन्धरा। जो अनेक प्रकार के वस्तुओं (रत्नादि) को धारण करती है, वह वसुन्धरा है। रत्न स्वभाव से ही कठोर होते है। जो इन रत्नों को धारण करती है, वह निश्चय ही अधिक कठोर होगी। सम्राट् मेघवाहन के कन्धे ऐसी वसुन्धरा का भार वहन करने में सक्षम है जिसके भार से वराहावतार का मुख वक्रित हो गया था तथा शेषनाग की फन रूप भित्तियाँ सहस्त्र प्रकार से विदीर्ण हो गई थी।[67] इस प्रकार 'वसुन्धरा' पद से पृथ्वी की अत्यधिक कठोरता का भाव नितरां द्योतित हो रहा है, अतः यहाँ पदौचित्य है।

63. तस्य च राज्ञः सकलभुवनाभिनन्दितोदया द्वितीयाशशिकलेव द्वितीया । ति. म., पृ. 21
64. उ. रा. च., 3/26
65. ति. म., पृ. 15
66. वसुन्धरा भारवहनक्षमस्कन्धस्य, वही, पृ. 16
67. यस्य धारणे आदिवराहेणापि वक्रीतं मुखमुरगराजस्यापि सहस्रधा भिन्नाः फणा एव भित्तयः। वही, पृ. 15

प्रीति अर्थात विशेष आनन्द के लिए '**रति**' पद का प्रयोग किया गया है। -

अन्तर्दग्धागुरुशुचावाप यस्य जगत्पतेः ।
नारीणां सहंतिश्चारुवेषाकारगृहे रतिम् ।।[68]

प्रकृत पद्य में आनन्द के अन्य पर्यायों को छोड़कर 'रति' पद का प्रयोग किया गया है। कामदेव की पत्नी का नाम भी रति है। यहाँ इस पद से उत्कृष्ट आनन्दानुभूति की अभिव्यञ्जना हो रही है अतएव पदौचित्य है।

सम्राट् मेघवाहन के लिए '**प्रजापति**'[69] पद का प्रयोग किया गया है। प्रजापतिः -पाति रक्षतीति पतिः, प्रजानां पातिः प्रजापतिः अर्थात् जो रक्षा करता है, वह पति अथवा स्वामी है तथा जो प्रजा की रक्षा करता है वह प्रजापति है। मेघवाहन प्रजापालक था उसने ब्राह्मणादि वर्णों के कर्मों व धर्मों को यथाक्रम व्यवस्थित कर दिया था। जिससे वे निज-निज कार्यों का सम्पादन करते हुए पूर्णतः सुखी व प्रसन्न थे। इस दृष्टि से मेघवाहन के लिए प्रजापति पद का प्रयोग औचित्यपूर्ण है।

रसौचित्य

रस का औचित्यपूर्ण निबन्धन ही रसौचित्य है। औचित्य से युक्त रमणीय रस सहृदयों के चित्तों को उसी प्रकार आनन्दित कर देता है, जिस प्रकार मधुमास अशोक वृक्ष को प्रफुल्लित कर देता है।[70] ध्वनिकार आनन्दवर्धन भी इस तथ्य का समर्थन करते हुए कहते हैं "अनौचित्य के अतिरिक्त रसभंग का और कोई कारण नहीं है और प्रसिद्ध औचित्य का अनुसरण ही रस का परम रहस्य है।"[71] रसौचित्य के उदाहरणस्वरूप आचार्य क्षेमेन्द्र ने कुमारसम्भव का प्रकृत पद्य उद्धृत किया है।[72]

---

68. ति.म., पृ. 16
69. यथाविधे व्यवस्थापितवर्णाश्रमधर्मः यथार्थ : प्रजापतिः । वही, पृ. 2
70. कुर्वन्र्वाशये व्याप्तिमौचित्यरुचिरो रसः ।
मधुमास इवाशोक करोत्यंकुरितं मनः ।। औ. वि. च., का. 16
71. अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम् ।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा ।। ध्वन्या., 3/14 की वृत्ति
72. बालेन्दुवक्राण्यविकासभावाद्बभुः पलाशान्यतिलोहितानि ।
सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ।। कुमार, 3/21

तिलकमञ्जरी में रसौचित्य का सुन्दर परिपाक दृष्टिगोचर होता है। धनपाल का रसानुकूल वर्णन कौशल काव्य में अपूर्व चमत्कार को उत्पन्न करता है। तिलकमञ्जरी का प्रधान रस शृङ्गार है, परन्तु धनपाल ने अन्य रसों का भी सुन्दर सन्निवेश किया है जिससे सहृदय रसास्वादजन्य आनन्दानुभूति के सागर में निमग्न हो जाते हैं। तिलकमञ्जरी से रसौचित्य के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

शृङ्गारसौचित्य : नायक हरिवाहन को देखकर नायिका तिलकमञ्जरी उसके प्रेमपाश बंध जाती है। प्रथम दर्शन में ही तिलकमञ्जरी का पुरुषों के प्रति विद्वेषीभाव तिरोहित हो जाता है। तिलकमञ्जरी की असमञ्जसपूर्ण क्रियाओं में शृङ्गाररस सुन्दर रूप में अभिव्यञ्जित हो रहा है। तिलकमञ्जरी हरिवाहन को अकस्मात् अपने समक्ष देखकर हड़बड़ा जाती है। दूसरे ही क्षण उसके हृदय में काम प्रवेश पा जाता है। लज्जावश वह हरिवाहन के द्वारा पूछे गए प्रश्नों का भी उत्तर नहीं देती। मुख नीचा करके उसके पास से चल पड़ती है। वामतः मुख करके (कुछ मुख मोड़कर) उसके समक्ष कुछ क्षण खड़ी होती है और हरिवाहन पर आह्लादित करने वाली कटाक्ष वृष्टि करती है।[73] तत्पश्चात् लज्जा से अवनतमुखी होकर वहाँ से निकलकर पास ही तमाल वृक्षों के झुरमुट में जाकर खड़ी हो जाती है तथा वहां से लताजाल के मध्य से प्रिय दर्शन के लिए झाँकती है। कभी जम्भाई लेती है, तो कभी पुष्पावचयन के व्याज से द्वार की ओर आती है।[74]

प्रिय को देखकर हृदय की दशा विचित्र ही हो जाती है। तिलकमञ्जरी हरिवाहन के समक्ष न तो अपने भावों को स्पष्ट रूप से प्रकट कर या रही है और न ही उन्हें छिपा रही है। यहाँ हरिवाहन आलम्बन विभाव है तथा लताएं, पुष्प व

---

73. अवनतमुखी च स्थित्वा मुहूर्तमदत्तोत्तरैव तस्मादशोकतरुतलादचलत् । .. किंचिद्वामतः कुर्वती मामभिमुखमगमत् । स्थित्वा च स्थिरद्वारनिकटे मुहूर्तमीषद्वलितकंधरा ... मुहुर्मुहुर्मोहाह्लादकारिणीं कटाक्षवृष्टिम् । ति. म., पृ. 249-250

74. विनिर्गत्यैलालतासदानाद्देवी तिलकमञ्जरी ..गात्रप्रभासंभारेण सकलमुद्द्योतयन्ती तं वनोद्देशमवनतमुखी सलज्जेव नातिनेदीयसस्तमालतरुगुल्मस्य मूले गतिविलम्बमकृत । स्थित्वा च तस्यान्तरेषु मुहूर्तमुपशान्तसंततश्वासपवनोद्गमास्वेदसलिलार्द्र-जघनमण्डलासक्तमादरेण ...लताजालकोन्तरेण प्रतीपमवलोकितवती कृत्वा च क्षणेन जृम्भारम्भनिष्पद्वाष्पबिन्दुक्लिन्नलोचनापाङ्गमङ्गभङ्गं प्रस्थिता । तदेव चकितचकिता ...... अलीकमेव कुर्वती मार्गलतासु कुसुमावचयमागता द्वारमस्य । वही, पृ. 354

अशोक वृक्ष आदि उद्दीपन विभाव है। हरिवाहन को देखकर रोमाञ्च व श्वास गति का तीव्र होना अनुभाव है। हर्ष तथा व्रीड़ा आदि व्याभिचारिभाव है। यहां पर विभावादियों के उचित निबंधन से रति स्थायी भाव की शृङ्गार रस रूप में चारु अभिव्यञ्जना हो रही है।

समरकेतु को देखते ही मलयसुन्दरी उसके रमणीय रूपपाश में बँधकर अपना हृदय उसे दे बैठती है। वह अपने निकट स्थित सखियों को विस्मृत कर अपने चंचल नेत्रों से एकटक उसे देखने लगती है। उसकी मनोदशा देखिए -

इति चिन्तयन्त्या एव मे साभ्यसूयः स्वरूपमाविष्कर्तुमिव हृदयमविशद्गृही–शृङ्गारो मकरकेतुः। तदनुमार्गप्रवष्टिरचिततरणलाक्षारस लाञ्छितेष्विव प्रससार सर्वाङ्गेषु रागः। वीतरागदेवतागारसंनिधौ विरुद्धं रागिणामवस्थानमिति ...... रोमाञ्चजालकमुच्चममुचत्कुचस्थली। पृ. 277

उसके विषय में चिन्तन करते ही इर्ष्या सहित मानों अपने रूप को प्रकट करने के लिए कामदेव ने शृङ्गार धारण कर मेरे हृदय में प्रवेश किया। उसके पीछे ही लाक्षरस से चिन्हित युद्ध व्यूह रचना के समान राग सभी अङ्गों में फैल गया। वीतराग देवता के मन्दिर पर रागियों का रहना निषिद्ध है मानों उसी राग को धोने के लिए स्वेद जल बहने लगा। स्वेद जल से उत्पन्न ठण्डक के उद्रेक से मानों वक्षःस्थल काँपने लगा। (वस्तुतः वक्षस्थल के कम्पन का कारण रोमाञ्च है)

तब मैं लज्जा तथा अनुराग से एक साथ अभिभूत होकर 'समुद्र की वायु शीतल है। बार-बार ऐसी सीत्कार करके, सखियों को बीच में करके 'धूप का स्पर्श कर्कश (तेज) है' बार बार उत्तरीय से मुख पोंछ कर, 'अतिदीर्घ सोपान लङ्घन से श्रान्त हो गई हूं' मैं कौन हूँ, कहाँ पर हूँ मेरा देश कौन सा है - सब भूलती हुई, शब्द को न सुनती हुई, मैं न जाने कैसी दृष्टि से उसे देखने लगी।[75]

किसी के प्रति प्रेम का ज्ञान उसी क्रियाओं से होता है। मलयसुन्दरी का हृदय पर नियन्त्रण न रहना, व उसकी अनियन्त्रित क्रियाएँ समरकेतु के प्रति उसके प्रेम

75. ततोऽहम् लज्जयानुरागेण च युगपदस्कन्दिता 'शीतलो जलधिवेलानिलः' इति विमुक्त सीत्कारा मुहुः सहचारीजनमन्तरे कृत्वा, 'कर्कशो बालातपस्पर्शः' इति मुहुरुत्तरीयांशुकेनाननं स्थगयित्वा,' श्रान्तातिदीर्घसोपानपथलङ्घनेन ..... काहम्, क्वागता, क्व स्थिता, को मे देशः - किं तरलतारकया किं मुग्धयकिमङ्गीकृतप्रागल्भ्यया .... न जानामि कीदृश्या दृशा तमद्राक्षम्। ति.म., पृ. 277-278

को नितरां अभिव्यक्त कर रही है। इस प्रकार यहाँ शृङ्गार की हृदयहारी अभिव्यञ्जना हो रही है।

अद्भुतरसौचित्य : महाकवि धनपाल ने तिलकमञ्जरी में सर्वत्र अद्भुत रस की अभिव्यंजना कराई है। हाथी का आकाश में उड़ना, विद्याधरों का आकाश में भ्रमण करना, चित्रमाय का रूप बदलना, विद्याधर मुनि का आकाशमार्ग से आना, शुक का मनुष्य वाणी में बोलना आदि सहृदय को अद्भुत रस सागर में निमग्न होने का पर्याप्त अवसर देते हैं। शुक को मनुष्य वाणी में बोलना न केवल सहृदय पाठक को अपितु तिलकमञ्जरी कथा के पात्रों को भी आश्चर्यचकित कर देता है

विस्मयोत्फुल्लनयना महाप्रतीहारी मन्दुरा प्रणम्य सादरमवादीद्देवीम् अस्त्येव दक्षिणदिङ्मुखदागतो निसर्गरमणीयाकृतिः शुकशुकुन्तिरेको द्वारमध्यास्ते। ब्रवीति च कृतप्रेषणोऽहं लोहित्यतटवासिनः स्कन्धावारादुपगतः कुमारहरिवाहनं द्रष्टुमिच्छामि इति। पृ. 374

शुक को मनुष्य की वाणी में बोलता देखकर महाप्रतिहारी मन्दुरा के नेत्र आश्चर्य से फैल गए। शुक का बोलना आश्चर्यजनक ही है क्योंकि सामान्य शुक सिखाए जाने पर कुछ शब्दों का उच्चारण तो कर सकता है, परन्तु धाराप्रवाह में नहीं बोल सकता। यहाँ शुक आलम्बन विभाव है तथा रमणीय आकृति उद्दीपन विभाव है। नेत्रविस्तारण अनुभाव और घृति व हर्ष सञ्चारिभाव हैं। इनसे पुष्ट होकर स्थायी भाव विस्मय, अद्भुत रस रूप में आस्वादित हो रहा है।

देवी लक्ष्मी देवी द्वारा मेघवाहन को प्रदत्त दिव्य अगुलीयक की महिमा भी सहृदय को विस्मित कर देती है। दिव्य अंगुलीयक से निकली प्रभा से समरकेतु सहित पूरी सेना का मूर्छित हो जाना किसी आश्चर्य से कम नहीं है। समरकेतु और वज्रायुध के बीच भयङ्कर युद्ध होता है। जिसमें वज्रायुध के प्राण संकट में पड़ जाते हैं। सेनापति वज्रायुध को हारते देख विजयवेग को दिव्य अंगुलीयक की याद आ गई, जिसकों धारण करके मनुष्य बड़े से बड़े संकट से भी बच जाता है। उसने शीघ्रता से आगे बढ़कर वह अंगुलीयक वज्रायुध की अंगुली में पहना दी। जिसे पहनते ही उसकी प्रभा से उस सेनापति ने अनिर्वचनीय रमणीयता व अपराजेयता को प्राप्त किया। अंगुलीयक की कांति से शत्रु सेना

उदयकालीन सूर्य की किरणों के स्पर्श कुमुदवन के समान तत्क्षण ही निद्रा में लीन हो गई।[76]

एक अंगुलीयक के प्रभाव से शत्रु सेना का मुर्च्छित हो जाना और स्वपक्ष की सेना पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ना आश्चर्य चकित करता है। अंगुलीयक के प्रभाव से समरकेतु व सेना का मूर्छित होना औचित्यपूर्ण भी है। सर्वप्रथम तो कवि को समरकेतु जैसे वीर को मारना इष्ट नहीं है। दूसरे ऐसे वीर, जिसकी प्रशंसा विपक्ष भी करे, उसके द्वारा कथा में अनेक उत्कृष्ट कार्य भी सम्पन्न करवाने है। इस प्रकार अंगुलीयक का प्रभाव अद्भुत रस की व्यञ्जना करवाने के साथ साथ कवि के उद्देश्य को भी पूरा कर रहा है। अतः यहाँ अद्भुत रसौचित्य है।

करुणरसौचित्य : तिलकमञ्जरी में यथावसर करुणरस का मर्मस्पर्शी निर्वाह हुआ है। तिलकमञ्जरी को जब यह सूचना मिलती है कि हरिवाहन विजयार्ध पर्वत के शिखर पर चढ़े थे उसके बाद से उनका कुछ पता नहीं, तो वह शोकाकुल हो जाती है। उसका हृदयस्थ स्थायीभाव उद्बुध हो जाता है तथा वह रुदन प्रारम्भ कर देती है –'हे भगवान् ! संसार में अनेक असहनीय दुःखों के भाजन इस जन के जन्मान्तर में तुम ही एक शरण हो' यह कहकर रोने से सूजी हुई आँखों व शोक से मलिन मुख शोभा वाली तिलकमञ्जरी जलसमाधि के लिए राजमहल से निकल गई।[77]

हरिवाहन पूर्वजन्म में उसका पति था जो अकस्मात् ही बिना बताए बोधि लाभ के लिए चला गया था। तिलकमञ्जरी ने पूर्वजन्म में भी उसके वियोगजन्य शोक को सहा था। इस जन्म में भी उससे मिलन न हो पाने का शोक उसके लिए

---

76. अरिवधावेशविस्मृतात्मनश्च तस्योल्लसितकोपसारोपकम्पिताङ्गुलौ कराग्रभागे गृहीत्वाङ्गुलीमेकां तदहमङ्गुलीयकमतिष्ठिपम्। अधिष्ठितश्च स तदीयच्छायया तत्क्षणमेव दिग्नागदन्तमुशल इव वज्रप्रतिमया, महाहिभोग इव मणिप्रभया, समुद्रोर्मिरिव वाडवार्चिषा, कामप्यभिरामतामधृष्यतां पर्यपुष्यत् । ...तैश्च प्रभापीतचन्द्रातपैर्यैः समन्ततः परामृष्टमभिनवार्ककिरणस्पृष्टमिव कुमुदकाननं सद्य एवं निद्रया प्रत्यपद्यप्रतिपक्षसैन्यम् । ति. म., पृ. 91-92

77. 'अनेकदुःसहदुःखसंसारभजनस्य भगवन् तव जनस्यास्य जन्मातरे शरणम्' इत्यभिधाय वाष्पायमाणनयनयुगला... रोदनोच्छूनचक्षुषा... शोकविद्राणमलिनमुखरुचा .... राजलोकमायतनमण्डपान्निरक्रमात्। वही, पृ. 416

दु:सह हो गया है और वह जलसमाधि लेने का निश्चय कर लेती है। यहाँ पर करुण रस की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है, जो सहृदयहृदयावर्जक है। अतएव यहाँ करुण रसौचित्य है।

वज्रायुध से विवाह की बात सुनकर मलयसुन्दरी का विलाप करना अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। समरकेतु से सम्भावित वियोग के विषय में सोचकर वह अत्यधिक शोकाकुल होकर आत्मघात करने का निर्णय कर लेती है। आत्मघात से पहले अश्रुपात करते हए वह जिस प्रकार से गृहोद्यान स्थित वृक्षों, पुष्पों, मोर, कलहंस व शुकादि से विदा लेती है। वह सहृदय मर्मोद्रावक है वह अत्यधिक विषाद करती हुई तथा निरन्तर अश्रुपात करती हुई- हे तात रक्ताशोक! वे दूसरे लोक में जाने पर मुझे विस्मृत मत करना, हे कमलदीर्धिके! ग्रीष्म काल में मेरे निर्दयतापूर्वक स्नान करने पर तुमने दीर्घ काल तक क्लेश का अनुभव किया है (अब नहीं करना पड़ेगा), हे मित्र मोर! मेरे हस्तताल पर नृत्य करने की तुम्हारी क्रीड़ा समाप्त हो गई, हे कोकमिथुन! मेरे वियोग में शोक मत करना, हे शुकपोत! मेरे द्वारा सिखाए गए सुभाषितों को मत भूलना- ऐसा कहती हुई इतस्ततः घूमकर अपने निवासभवन में चली गई।[78]

यहाँ गृहोद्यान स्थित, वृक्ष, पशु-पक्षी आदि मलयसुन्दरी के शोक को उद्दीप्त कर रहे है। रुदन और विषाद आदि अनुभाव है। यहाँ पर समुचित विभावानुभावादि से समरकेतु वियोगन्य मलयसुन्दरी का शोक करुण रस में परिणत हो रहा है अतः यहाँ करुणरसौचित्य है।

वाक्यौचित्य

आचार्य विश्वनाथ ने वाक्य की परिभाषा इस प्रकार दी है - वाक्यं स्याद्योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः।[79] योग्यता, आकंक्षा तथा आसक्ति से युक्त

78. तत्र विषादमुद्वहन्ती ... वाष्पजललावनुत्सृजन्ती ... 'तात रक्ताशोक, लोकान्तरगतापि स्मर्तव्यास्मि । कमलदीर्घिके, दीर्घकालं क्लेशमनुभावितासि निर्घृणया निदाघमज्जनेषु। सखे शिखण्डिन्, अस्तं गता ते हस्ततालताण्डवक्रीडा । ... मा कृथाः कोकमिथुनक, मद्वियोगे शोकम् । जात शुकपोत, मा तानि विस्मरिष्यसि मत्सुभाषितानि' इति भाषमाणा परिभ्रम्येतस्तोऽस्तगिरिःस्रस्ततेजसि तिग्मभानौ स्वनिवासमगमम्। ति. म., पृ. 301-302

79. सा. द. 2/1, पृ. 24

पदसमूह को वाक्य कहते है। वर्ण्य विषय के अनुरूप उचित पदों से युक्त वाक्य अपूर्व चमत्कार का आधान करता है। इसे ही आचार्य क्षेमेन्द्र ने वाक्यौचित्य कहा है। इनके अनुसार जिस प्रकार दान के कारण प्रशस्त, एश्वर्य एवं सत्स्वभाव तथा सदाचरण से विद्या सहृदयों के लिए अभीष्ट होती है, उसी प्रकार औचित्यपूर्ण वाक्य काव्यमर्मज्ञों के लिए अभीष्ट होता है।[80] वाक्यौचित्य का उदाहरण क्षेमेन्द्र ने अपनी रचना विनयवल्ली से दिया है।[81]

तिलकमञ्जरी में वाक्यौचित्य का सुन्दर परिपाक हुआ है। मेघवाहन के शौर्य का वर्णन करते हुए धनपाल कहते हैं –

दृष्ट्वा वैरस्य वैरसस्यमुज्झितास्त्रों रिपुव्रजः ।
यस्मिन्विश्वस्य विश्वस्यं कुलस्य कुशलं व्यधात् ।।[82]

इस से ध्वनित हो रहा है कि मेघवाहन के शत्रु समूह का समूल नाश हो चुका है। यहाँ मेघवाहन के स्वाभाविक शौर्य का ज्ञान हो रहा है तथा अर्थ की अवगति भी सम्यग्तया हो रही है। अतएव यहाँ वाक्यौचित्य है।

विद्याधर मुनि को देखकर भावविह्वल सम्राट! मेघवाहन द्वारा उक्त यह वाक्य – "**इदं राज्यं एतानि वसूनि, इदं शरीरं एतद्गृहं गृह्यतां स्वार्थसिद्धये परार्थसम्पादनाय वा, यदत्रोपयोगार्हम्**"[83] औचित्यपूर्ण है। ऋषि मुनि सदैव आदर के योग्य होते है। वे परोपकार के लिए ही शरीर को धारण करते है। विद्या दान व उपदेशों के द्वारा ही लोगों को श्रेष्ठ नागरिक बनाते है तथा सदैव जन-हित के कार्यों में सलग्न रहते है। यज्ञों तथा धार्मिक अनुष्ठानों से वे वातावरण तथा लोगों के चित्तो व विचारों को पवित्र करते है। इनका स्वार्थ भी परार्थ से ही प्रेरित होता है। अतः राजा का यह कर्तव्य है कि वह अपना सर्वस्व देकर भी उनके कार्यों में आ रहे विघ्नों को दूर करे। महाराज दशरथ ने भी महर्षि विश्वमित्र के धार्मिक कार्यों में आ रहे विघ्नों को दूर करने के लिए अपने प्रिय पुत्र राम को

---

80. औचित्यरचितं वाक्यं सततं संमतं सताम् ।
त्यागोदग्रमिवैश्वर्यं शीलोज्जवलमिव श्रुतम् ।। औ. वि.. च., का. 12
81. वही, पृ. 12
82. ति. म., पृ. 16
83. वही, पृ. 26

उनके साथ आश्रम में भेजा था। विद्याधर मुनि के प्रति मेघवाहन के ये वचन अपने कर्तव्यों के प्रति उसकी सजगता व समाज के प्रति उसके उत्तरदायित्व को प्रकट करते है।

प्रात:काल में राजा के उद्बोधनार्थ चारण द्वारा सस्वर पढ़ा गया प्रकृत श्लोक[84] सन्तानाभाव से संतृप्त मेघवाहन के लिए औचित्यपूर्ण है। इसका अर्थ है कि तुम्हारी दु:खों के समान अन्धकारमय रात्रि बीत गई है। तुम्हारे कुल के समान सूर्य मण्डल जगत् को प्रकाशित करने के लिए उदित हो रहा है। अत: शान्त होकर इष्ट देवताओं की आराधना करो। इस श्लोक से यह ध्वनित हो रहा है कि मेघवाहन, जो कि यौवनावस्था का अत्यधिक समय बीत जाने पर भी संतान प्राप्त न होने के कारण सदा चिन्ताकुल रहता है, का सन्तानोत्पत्ति अवरोधक प्रारब्ध समाप्त प्राय: है। अपने जन्म से मेघवाहन के वंश को करने वाल सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र आने वाला है। इस श्लोक के माध्यम से चारण मेघवाहन को धार्मिक कार्यों को करने के लिए भी प्रेरित कर रहा है।

हरिवाहन की महिमा की गुणगान करते हुए एक चारण कहता है - ''पृथ्वीपतियों के मध्य असाधारण महिमा से युक्त एक तुम ही देखने योग्य हो, जिसने विद्याधराधिपतियों को न्यूनीकृत करके इस वैताढ्य पर्वत की उत्युच्च भूमिका पर अपनी स्थिति दृढ़ की है। अर्थात् विद्याधर सम्राट्त्व को प्राप्त किया है''[85] यह वाक्य हरिवाहन के अतुलनीय सामर्थ्य को व्यक्त कर रहा है। हरिवाहन पृथ्वीस्थ अयोध्या नगरी का युवराज है, जिसने अपने असाधारण कर्मों से ने केवल सभी भूभृतों को लघु कर दिया, अपितु विद्याधरों की दिव्य नगरी में पहुँचकर विद्याधर सम्राट्त्व को प्राप्त कर लिया।

समरकेतु के शौर्य की प्रशंसा में मेघवाहन द्वारा कहा गया यह वाक्य ''धन्यस्त्वमेको जगति यस्मादुपजातमात्मन: पराजयं विजयमिव सभासु शंसति प्रीतिविकसिताक्षो विपक्षलोक:''[86] सर्वथा औचित्यपूर्ण है। वस्तुत: समरकेतु एक ऐसा वीर है, जिसने वज्रायुध सदृश अजेय योद्धा को भी वीरता का पाठ पढ़ा दिया,

84. विपदिव विरता विभावरी नृप निरपायमुपास्स्व देवता:।
उदयति भुवनोदयाय ते कुलमिव मण्डलमुष्णदीधिते :।। ति.म., पृ. 28

85. द्रष्टव्यस्त्वमनन्यतुल्यमहिमा मध्ये धरित्रीभृतां येनाध:कृतखेचरेन्द्रततिना बद्धास्य मूर्ध्नि स्थिति:। वही, पृ. 240

86. वही, पृ. 101

जिसने अपने वीर्य से शत्रुओं का हृदय भी अपने वश में कर लिया। मेघवाहन भी उसके सत्त्व के विषय में सुनकर विस्मित हो जाते हैं और उससे कहते हैं इस जगत में एक तुम ही धन्य हो जिसकी पराजय भी विजय के समान है, आश्चर्यचकित विपक्ष की सभाओं में प्रशंसित होती है। इस वाक्य से समरकेतु के स्वभाविक शौर्य का ज्ञान होता है। अतः यहाँ वाक्यौचित्य है।

सत्त्वौचित्य

काव्य में सात्त्विक वचनों का उचित निबन्धन ही सत्त्वौचित्य है। आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार कवि का वर्णनीय व्यक्ति के सत्त्व के अनुरूप वचन उसी प्रकार सहृदय को आह्लादित कर देता है, जिस प्रकार विवेकी पुरुष का विचार संगत उदात्त चरित।[87] क्षेमेन्द्र ने इसका उदाहरण उनकी अपनी रचना 'चित्रभारत' में से दिया है। इसमें युधिष्ठिर की सत्त्वसम्पन्नता का प्रतिपादन किया गया है।[88]

महाकवि धनपाल मेघवाहन की पृथ्वी का भार वहन करने की क्षमता के विषय में कहते हैं जिस पृथ्वी को धारण करने में कच्छपाधिप विमुख हो गए, आदिवराह ने भी मुख को वक्रित कर लिया, शेषनाग की फण रूप भित्तियाँ सहस्र प्रकार से विदीर्ण हो गई, उस पृथ्वी के भार को मेघवाहन खड्ग युक्त भुजा के द्वारा अनायास ही धारण करता है।[89] यहाँ पर मेघवाहन का सत्त्वोत्कर्ष दिखाया गया है। मेघवाहन खड्ग युक्त भुजा पर पृथ्वी के भार को धारण करता है जिससे यह अभिव्यञ्जित हो रहा है कि इसके राज्य में प्रजा सुखी तथा खुशहाल थी। सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने बाहुबल से नियन्त्रित करने में इसका सत्त्व नितरां द्योतित हो रहा है। अतः यहाँ सत्वौचित्य है ।

---

87. चमत्कारं करोत्येव वचः सत्त्वोचितं कवेः ।
विचाररुचिरोदारचरितं सुमतेरिव ।। औ. वि. च., का. 31

88. नदीवृन्दोद्दामप्रसरसलिलापूरिततनुः स्फुरत्स्फीतज्वालानिविडवडवाग्निक्षत जलः ।
न दर्पं नो दैत्यं स्पृशति बहुसत्त्वः परिरपामवस्थानां भेदाद्भवति विकृतिनैव महताम् ।। वहीं, पृ.137

89. यस्य धारणे कुर्मपतिनापि पराङ्मुखीभूतमादिवराहेणपि वक्रितं मुखमुरगराजस्यापि सहस्रधा भिन्नाः फणाभित्तयः, तमपि भुवनभारमनायासेनैव धृतासिना भुजेन यो बभार । ति. म., पृ. 15

एक अन्य स्थल पर मेघवाहन को विष्णु के समान बताया गया है – 'अच्युत इव शङ्खचक्रभ्याम्।'[90] शङ्ख का अर्थ है शम् कल्याणम्, ख खनति जनयति अर्थात् जो कल्याण को उत्पन्न करता है। मेघवाहन अपनी प्रजा के लिए कल्याणकारी है। चक्र अर्थात् अस्त्र विशेष (मेघवाहन के अर्थ में तलवार) से युक्त होने के कारण वह भीषण भी है अर्थात् शत्रुओं को दण्ड देने वाला तथा दुष्टों को जिस प्रकार विष्णु भक्तों के लिए कल्याणकारी तथा दुष्टों को विनय का पाठ पढ़ाने वाला है। दुष्टों का संहार करने वाले हैं, उसी प्रकार मेघवाहन प्रजा के लिए कल्याणकारी तथा शत्रुओं को अपनी खड्ग से पाठ पढ़ाने के कारण भयङ्कर है। इस प्रकार यहाँ समान विशेषणों से मेघवाहन के सत्त्वोत्कर्ष का रमणीय चित्रण किया गया है। अतः सत्त्वौचित्य है।

हरिवाहन के सत्त्वोत्कर्ष का चित्रण करते हुए धनपाल कहते हैं कि वन में मृगया व्यसनी राजकुमारों के प्रेरित किए जाने पर तथा शस्त्र विद्या में पूर्णतः निपुण होने पर भी हरिवाहन स्वाभाविक दयालुता के कारण पशुओं को नही मारता था। (न कि सिंह आदि पशुओं से भय होने के कारण)।[91] हरिवाहन शस्त्र विद्या मे निपुण था तथा वह अत्यधिक पराक्रमी व निडर था तथापि मृगया में उसकी रुचि नहीं थी। यहाँ हरिवाहन का स्वाभाविक सत्त्वोद्रेक सहृदयहृदयावर्जक है। अतएव सत्त्वौचित्य है।

सारसंग्रहौचित्य

काव्य में सारसंग्रह अर्थात् सारांश (निचोड़) से युक्त वाक्य का प्रयोग ही सारसंग्रहौचित्य है। सारसंग्रह युक्त वाक्य से अभिव्यक्त आनन्दस्वरूप निश्चितफलक काव्यार्थ सभी को प्रिय लगता है।[92] आचार्य क्षेमेन्द्र ने इसका उदाहरण अपनी ही काव्य रचना मुनिमतमीमांसा से दिया है।[93]

---

90. ति.म., पृ. 13
91. जातकौतुकैश्च मृगयाव्यसनिभिः क्षितिपतिकुमारैः क्षपणाय तेषामनुरक्षणं व्यापार्यत न च प्रकृतिसानुक्रोशतया शस्त्रगोचरगतानपि ताञ्जधान। वही, पृ. 183
92. सारसङ्ग्रहवाक्येन काव्यार्थः फलनिश्चितः।
अदीर्घसूत्रव्यापार इव कस्य न संमतः ।। औ. वि. च., का. 34
93. विविधगहनगर्भग्रन्थसम्भारभारैर्मुनिभिरभिनिविष्टैस्तत्त्वमुक्तुं न किञ्चित्।
कृतरुचिरविचारं सारसमेतन्महर्षेरहमिति भवभूमिर्नाहमित्येव मोक्षः ।। वही, पृ. 348

तिलकमञ्जरी में सहृदय को आनन्द प्रदान करने वाले सारयुक्त वाक्यों का बहुधा सन्निवेश हुआ है। हरिवाहन के मित्र राजकुमार कमलगुप्त द्वारा उक्त यह वाक्य 'दुःखहेतुरनुरागः'[94] सारसंग्रहौचित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः अनुराग या प्रीति ही सभी दुःखों का कारण है। यह अनुराग किसी वस्तु के प्रति हो अथवा पुरुष विशेष के प्रति, उसके दूर होने पर दुःख होता है। तिलकमञ्जरी का हरिवाहन के प्रति तथा हरिवाहन का तिलकमञ्जरी के प्रति अनुराग इसका उत्तम उदाहरण है। अपने प्रिय को समक्ष पाकर इन्हें अनिर्वचनीय सुख का अनुभव होता है। प्रिय का स्मरण व चिन्तन समस्त सुखों को देता है। इन्हें अपने प्रिय का वियोग असहनीय है। हरिवाहन के दुःख से तिलकमञ्जरी भी दुःख का अनुभाव करती है। लोक में यदि किसी बालक को कोई प्रिय खिलौना अन्य ले ले या वह टूट जाए तो उसे बहुत दुःख होता है। अतः कमलगुप्तोक्त यह कथन मानवीय चित्तवृति को साररूप में प्रकट करता है तथा काव्य में सारसंग्रहौचित्य का निदर्शन करता है।

विद्याधर मुनि के दर्शनान्तर सम्राट् मेघवाहन का यह वाक्य 'प्रणामसमये च मूर्धानमधिरोपितेन प्रकृतिपूतेन निजपादपांसुना संपादितमखिलतीर्थस्नानफलम्'[95] सारसंग्रहौचित्य की दृष्टि से विचारणीय है। मेघवाहन कहते है। कि प्रणाम के समय आपके चरणों में मस्तक रखने से स्वभावतः विशुद्ध आपकी चरणरज से मुझे सभी तीर्थों में स्नान का फल मिल गया है। वस्तुतः मुनिजन अत्यधिक तेजस्वी होते हैं। वे तपों को तपकर अनेक लोक-कल्याणकारी शक्तियों को अर्जित कर लेते हैं। वे शारीरिक व मानसिक रूप से पूर्णतः पवित्र तथा पुण्य शरीरशाली होते हैं। उनके दर्शन मात्र से ही सामान्य जन के दुःख दूर हो जाते हैं तथा दुरित शान्त हो जाते है। अतः मेघवाहन का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है। सज्जन स्वयं एक तीर्थ ही होते हैं। उनके चरण जिस स्थान पर पड़ते हैं वह स्थान पवित्र हो जाता है। इस प्रकार मेघवाहनोक्त यह वाक्य साररूप में सज्जनों व मुनियों को संगति की महत्ता को सुतरां अभिव्यक्त कर रहा है। अतः यहाँ सारसंग्रहौचित्य है।

94. ति. म., पृ. 11
95. वही, पृ. 26

समरकेतु का प्रकृत कथन[96] भी सारसंग्रहौचित्य की दृष्टि से द्रष्टव्य है। उसके अनुसार अनुकूल विधि द्वारा सहायता किए गए साहसी व्यक्ति का नीति विरुद्ध कार्य भी फल देता है। तात्पर्य यह है कि भाग्य भी उन्हीं व्यक्तियों की सहायता करता है, जो साहसी तथा कर्मयोगी होते है तथा अज्ञात मार्गों पर भी दृढ़तापूर्वक लक्ष्य की ओर अग्रसर रहते हैं। भाग्य को फलित करने के लिए कर्म अत्यावश्यक है। यद्यपि समरकेतु यह नहीं जानता कि हस्ती हरिवाहन को लेकर कहाँ गया है, परन्तु यह चिन्तन करके कि न जाने हरिवाहन को किन परिस्थितियों का सामना करना पड़े तथा मित्र रूप में अपना कर्त्तव्य समझकर, वह साहसपूर्वक उसे खोजने के लिए निकल पड़ता है। भीषण जंगलों व दुर्गम पर्वतों पर वह उसकी खोज करता है तथा अन्ततः उसे पा लेता है। यदि वह अकर्मण्य होकर केवल परिणाम की प्रतीक्षा करता, तो सम्भवतः उसे कुछ प्राप्त नहीं होता और वह हरिवाहन के निष्छल प्रेम का पात्र भी नहीं होता। यह सर्वप्रमाणिक तथ्य है कि साहसी व्यक्ति की भाग्य भी सहायता करता है और प्रचलन विरुद्ध कार्य का भी सम्यक् फल देता है। महाकवि धनपाल ने यहाँ कर्म की प्रधानता बताकर गीता के कर्मयोग[97] के सिद्धांत को ही सार रूप में प्रतिपादित किया है, अतएव सारसंग्रहौचित्य है।

हरिवाहन द्वारा जगत् की अतात्त्विकता के विषय में चिन्तन भी द्रष्टव्य है - अहो विरसता संसार स्थितेःभङ्गुस्वभावता विभवानाम्।[98] यह संसार अतात्त्विक अर्थात् नश्वरशील है तथा धन सम्पत्तियाँ क्षणभङ्गुर है। धनपाल ने इस जगत् की नश्वरशीलता व अवास्तविकता पर विचार कर अद्वैत वेदान्त के 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' सिद्धांत को ही साररूप में प्रस्तुत किया है। अतः यहाँ सारसंग्रहौचित्य स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है।

शाक्यबुद्धि नामक मंत्री का प्रकृत्त कथन भी सारसंग्रहौचित्य की दृष्टि से विवेचनीय है। उसके अनुसार कटा हुआ वृक्ष समयानुसार पुनः वृद्धि को प्राप्त करता है, क्षीण चन्द्र पुनः बढ़ने लगता है। उसी प्रकार संकटापन्न व्यक्ति भी पुनः

96. अनुकूलविधिविहितसहायकस्य साहसिकस्य सर्वदा शस्यसम्पदिवानीतिरनीतिरेव फलति। ति.म., पृ. 155
97. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।। गी. सौ., 2/47
98. ति. म., पृ. 243

समृद्धि को प्राप्त करता है।[99] शाक्यबुद्धि का यह कथन हरिवाहन के विषय में है। गज ने हरिवाहन का अपहरण करके उसे निर्जन वन में छोड़ दिया है। इसलिए वह दैवयोगवशात् इस दुरावस्था को प्राप्त हुआ है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है। कि वह पुनः समृद्धि को प्राप्त नहीं करेगा। जिस प्रकार वृक्ष और चन्द्रमा क्षीण होकर पुनः बढ़ने लगते हैं। उसी प्रकार हरिवाहन सदृश कर्मयोगी पुनः समृद्धि को प्राप्त करते हैं क्योंकि सुख और दुःख तो चक्र के अरो के समान ऊपर नीचे होते रहते हैं। अतः हरिवाहन भी अवश्य ही पुनः समृद्धि को प्राप्त करेगा।

स्वभावौचित्य

स्वभाव का उचित वर्णन ही स्वभावौचित्य है। आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार नैसर्गिक व असाधारण होने के कारण भूषण स्वरूप स्वभावौचित्य से युक्त काव्य उसी प्रकार सुशोभित होता है, जिस प्रकार सहज व असाधारण लावण्य से अंगनाएँ सुशोभित होती हैं।[100] इसका उदाहरण उन्होंने अपनी रचना मुनिमतमीमांसा से दिया है।[101]

विद्याधर मुनि के वर्णन में धर्मतत्त्वज्ञों के स्वाभाविक साधु चरित का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया गया है। विद्याधर मुनि को दक्षिण दिशा के आकाश मार्ग से आते देखकर आश्चर्य व श्रद्धातिरेक से मेघवाहन और मदिरावती अपने आसन छोड़कर खड़े हो जाते हैं। उनकी धार्मिक बुद्धि व ऋषि-मुनियों के प्रति अतिशय आदर भावना देखकर मुनि भी उनके प्रसाद की छत पर उतर आते है। क्योंकि धर्म तत्त्वज्ञों के हृदय सदैव धार्मिक जनों के अनुकूल आचरणभिमुख होते हैं।[102] मुनि को देखकर अपने आसन छोड़कर खड़े हो जाना धार्मिक कार्यों में उनकी रुचि व ऋषिमुनियों के प्रति उनकी श्रद्धा और आदर को अभिव्यक्त कर

99. क्षुण्णोऽपि रोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः संतप्यन्ते न विधुरेषु ।। ति.म., पृ. 402

100. स्वभावौचित्यमाभाति सूक्तीनां चारुभूषणम् ।
अकृत्रिममसामान्यं लावण्यमिव योषिताम् ।। औ. वि. च., का. 33

101. कर्णोत्तालितकुन्तलान्तनिपतत्तोयक्षणासङ्गिना। हारेणेव वृतस्तनी पुलकिता शीतेन सीत्कारिणी।। निर्धौताञ्जनशोणकोणनयना स्नानावसानेऽङ्गना। प्रस्यन्दत्कबरीभरा न कुरुते कस्य स्पृहार्द्रं मनः ।। वही, पृ. 145

102. धार्मिकजनानुवृत्त्यभिमुखानि हि भवन्ति सर्वदा धर्मतत्त्ववेदिनां हृदयानि । ति. म., पृ. 25

रहा है। विद्याधर मुनि भी उनकी इस भावना के अनुकूल सहज व्यवहार प्रकट करते हुए उनके पास आ जाते हैं। मुनियों के दर्शन मात्र से ही पाप नष्ट हो जाते है तथा मनोकामनाएँ पूर्ण होती है। मेघवाहन को भी मुनि के प्रसादस्वरूप पुत्र प्राप्ति का उपाय प्राप्त होता है। इस प्रकार यहाँ धर्मतत्त्वज्ञों (ऋषि-मुनियों) के स्वभाव के नैसर्गिक वर्णन से सहृदय को विशेष आनन्द की प्राप्ति हो रही है अत: यहाँ स्वभावौचित्य है।

समरकेतु द्वारा कहा गया यह वाक्य 'सूक्तवादिनि, युक्तवादिनि, युक्तमभिहितम् । किंतु दुष्करमिदं मादृशानाम्'[103] स्वाभावौचित्य का उत्तम उदाहरण है। वज्रायुध से सन्धि करने के लिए कुसुमशेखर मलयसुन्दरी का विवाह उससे निश्चित कर देते है। यह देखकर बन्धुसुन्दरी समरकेतु से कहती है कि वह मलयसुन्दरी को रात्रि में ही अपने देश ले जाएं परन्तु समरकेतु कहता है कि 'मेरे सदृश जनों के लिए यह दुष्कर कार्य है।' समरकेतु उच्च कोटि का वीर है तथा वीरों में उसका नाम सम्मान से लिया जाता है। यदि वह रात्रि में मलयसुन्दरी को ले जाता है तो उसे कायर माना जाएगा तथा उसका यश कलंकित होगा। पुन: उसका चरित्र भी उच्च कोटि का है अत: यह कार्य नैतिकता के विरुद्ध भी होगा। इस प्रकार यहाँ यह एक वाक्य ही उसके नैसर्गिक स्वभाव को नितरां द्योतित कर रहा है अत: स्वभावौचित्य है।

हरिवाहन के दर्शनानन्तर तिलकमञ्जरी की स्वाभाविक क्रियाओं में स्वभावौचित्य का सुन्दर परिपाक हुआ है। तिलकमञ्जरी हरिवाहन को अकस्मात् अपने समक्ष पाकर घबरा जाती है तथा उसके पूछने पर भी कोई उत्तर नहीं देती। तिलकमञ्जरी जिसे जन्म से ही पुरुषों से विद्वेष है, हरिवाहन की मनोहर छवि देखकर उस पर मुग्ध हो जाती है। तब भी वह लज्जावश हरिवाहन के प्रश्नों का उत्तर नहीं देती, केवल प्रेमपूर्ण तिर्यक दृष्टि से उसे देखती हुई वहाँ से चली जाती है।[104] नारी का यही स्वभाव होता है। प्रथम मिलन में वह लज्जावश अपने प्रिय की किसी बात का उत्तर नहीं देती है। यहाँ पर तिलकमञ्जरी की क्रियाओं का अत्यन्त स्वाभाविक व मनोहारी वर्णन किया गया है जो सहृदय-हृदय को विशेष आनन्द

103. ति. म., पृ. 326
104. वही, पृ. 248-250

की अनुभूति कराता है। अत: यहां पर स्वभावौचित्य है।

शाक्य बुद्धि द्वारा उक्त यह वाक्य 'अयं हि प्राक्तनेनैव संस्कारेण परमसत्त्वोपकारी परमकारुणिकश्च न प्रार्थितो वचनमन्यथा करिष्यति।'[105] हरिवाहन के नैसर्गिक स्वभाव को नितरां द्योतित कर रहा है। हरिवाहन पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण परम परोपकारी व परम दयालु है। वह कभी किसी याचना को निष्फल नहीं करता। शाक्यबुद्धि आदि मंत्री उसे विद्याधरों का चक्रवर्ती सम्राट् बनाना चाहते हैं। इसके लिए उसे मन्त्र सिद्धि के लिए प्रवृत्त करवाना है। परन्तु हरिवाहन तिलकमञ्जरी के वियोग से दु:खी होकर प्राण-त्यागने जा रहा है। बिना तिलकमञ्जरी के सम्राट् पद भी उसके लिए व्यर्थ है, अत: वह इसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेगा। परन्तु वह अत्यधिक दयालु व परोपकारी है। यदि कोई उसे अपने प्रयोजन के लिए मन्त्रसिद्धि करने की याचना करे, तो वह अवश्य ही उसके लिए प्रवृत्त हो जाएगा, क्योंकि परोपकार उसका स्वभाव है। हरिवाहन का ऐसा परोपकारी स्वभाव सहृदय हृदय को अपूर्व आनन्द प्रदान करता है। अतएव यहाँ स्वभावौचित्य है।

व्रतौचित्य

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार सुन्दर व्रतौचित्य की प्रतिष्ठा के कारण काव्यार्थ जनमानस को अपने चमत्कार से पूर्णत: सन्तुष्ट कर देता हैं। क्योंकि वह सहृदयों को अपूर्व आनन्द प्रदान करता है।[106] काव्य में पात्र, देश और काल आदि के अनुसार ही व्रताचरण का विधान किया जाना चाहिए।[107] इसका उदाहरण क्षेमेन्द्र ने अपनी रचना मुक्तावली से दिया है।[108] इसमें तापसोचित्त वल्कलादि उपकरणों के द्वारा अचेतन वृक्षों में भी वैराग्यकालीन शान्तचित्त वृत्ति का समुचित वर्णन किया गया है।

---

105. ति.म., पृ. 402
106. काव्यार्थ: साधुवादार्ह: सद्व्रतौचित्यगौरवात् ।
सन्तोषनिर्भरं भक्त्या करोति जनमानसम् ।। औ. वि. च., का. 29
107. औचित्य की दृष्टि से भवभूति के नाटकों का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. 71
108. अत्र वल्कलजुष: पलाशिन: पुष्परेणुभरमस्मभूषिता: ।
लोलमभृङ्गवलयक्षमालिकास्तापसा इव विभान्ति पादपा: ।। वही, पृ. 132

महाकवि धनपाल ने तिलकमञ्जरी में व्रतौचित्य का सुन्दर सन्निवेश किया है। इसमें उपवास, यज्ञ, आराधना, नीतिपरायणता, प्रतिज्ञा, वचन आदि का सुन्दर परिपाक दृष्टिगोचर होता है।

सम्राट् मेघवाहन के वर्णन में व्रतौचित्य का सुन्दर निदर्शन दृष्टिगोचर होता है। मेघवाहन पुत्र प्राप्ति हेतु देवराधन के लिए मुनि व्रत धारणकर वन में जाकर तप करने का संकल्प व्यक्त करते हैं। परन्तु विद्याधर मुनि के कहने पर वह घर में रहकर मुनिजनोचित आचरण को धारण कर नियम पूर्वक देवी की उपासना करते हैं। उनके इस तप के फलस्वरूप ही उन्हें हरिवाहन सदृश चक्रवर्ती लक्षणोपेत पुत्र की प्राप्ति होती है।[109] यहाँ पर मुनिजनोचित व्रत को धारण करने तथा उसके फलस्वरूप पुत्र की प्राप्ति के वर्णन से व्रतौचित्य का आधीन होता है।

मलयसुन्दरी अपने प्रिय की प्रतीक्षा में मठायन में रहना स्वीकार करती है तो यह मुनिजनोचित क्रियाओं को भी अङ्गीकार करती है। प्रत्युष: यह अदृष्टपार नामक दिव्य सरोवर में स्नान करती है। देवता को अर्घाञ्जलि देती है तथा मन्त्रजप आदि करती है।[110] मुनियों के समान वल्कल वस्त्र धारण करती है। हरिवाहन भी जब इससे पहली बार मिलता है तो उस समय यह जिनयातन में मंत्र जप कर रही होती है।[111] तीर्थवन्दनार्थ आए हुए अतिथियों का यह कन्द मूलादि के द्वारा उनका सादर स्वागत करती है। हरिवाहन को देखकर यह उसका स्वागत करती है तथा अतिथि पूजा करती है। इस प्रकार यह जिस मुनिजनोचित व्रत को धारण करती है उस व्रत का नियमपूर्वक पालन भी करती है। अत: यहाँ व्रतौचित्य है।

समरकेतु का हरिवाहन की खोज में एकाकी ही निकल जाना उसके हरिवाहन के सदा साथ रहने के व्रत को सुतरां अभिव्यक्त करता है। सम्राट् मेघवाहन समरकेतु की वीरता और उसके गुणों में अनुरक्त होकर उसे हरिवाहन का परम विश्वसनीय सहचर बना देते हैं।[112] समरकेतु भी उसी क्षण से हरिवाहन

109. ति. म., पृ. 26-35

110. अदृष्टपाराख्ये दिव्यसरसि प्रत्युषस्येव निर्वर्तितस्नाना वितीर्ण सन्ध्यादेवतार्घाञ्जलिरागत्य सिद्धायतनमेतत्स्वहस्तनिर्वतिताभिषेका ... । वही, पृ. 345

111. वही, पृ. 256

112. वत्स, एष समरकेतुर्गुणै: समधिकं समं चात्मबन्धुवर्गे प्रधानपुरुषमपश्यता मया तवैव सहचर: परिकल्पित:। ...एष ते भ्राता च भृत्यश्च सचिवश्च सहचरश्च । वही, पृ. 102-103

को अपना परम मित्र स्वीकार कर लेता है। जब मदान्ध गज हरिवाहन का अपहरण कर लेता है तो यह अकेला ही निर्जन वनों, दुर्गम पर्वतों पर उसे खोजने निकल पड़ता है, क्योंकि उसने हरिवाहन का सहचर बनना स्वीकार किया है। एक मित्र का यह कर्त्तव्य है कि वह सुख-दुःख में अपने मित्र का साथ दे तथा विपत्ति में कदापि उसका साथ न छोड़े। समरकेतु अपने मित्र धर्म पालन में अन्य मित्रों से कहीं आगे निकल गया है और सहृदय के हृदय में अपना उत्युच्च स्थान बना लिया है। अतः यहाँ व्रतौचित्य है।

गन्धर्वक का तिलकमञ्जरी को सभी प्रकार से योग्य हरिवाहन को पत्नी बनाने का व्रत धारण करना विशेष रूप से द्रष्टव्य है। गन्धर्वक एक विद्याधर है। स्वप्नों की देवी के अनुसार विद्याधर राजकुमारी तिलकमञ्जरी का विवाह किसी पृथ्वीवासी चक्रवर्ती राजकुमार से होगा। इसी कारण अपनी माता चित्र लेखा से आज्ञा प्राप्त कर यह अपने मित्र चित्रमाय के साथ तिलकमञ्जरी के योग्य वर की खोज में निकलता है। यह अत्यधिक गुण और बुद्धिमान है। राजकुमार हरिवाहन को देखकर वह उसे ही राजकुमारी तिलकमञ्जरी के सर्वाधिक उपर्युक्त पाता है और उसे तिलकमञ्जरी से मिलाने का व्रत लेता है। विद्याधर साम्रज्ञी पत्रलेखा के कार्य से जाते हुए वह चित्रमाय को निर्देश देता है कि वह कोई भी रूप धारण कर हरिवाहन को तिलकमञ्जरी के पास ले जाए, जिससे उसको देखकर तिलकमञ्जरी का पुरुष विद्वेष समाप्त हो जाए और उसके हृदय में प्रेम का सञ्चार हो जाए। यक्ष के शाप से शुक बन जाने पर भी यह हरिवाहन के अनेक कार्य सम्पादित करता है।। हरिवाहन के वियोग में तिलकमञ्जरी को प्राण त्यागने के लिए उद्यत देखकर, यह उसके दुःख से दुःखी होकर पर्वत से गिरकर मरने चल पड़ता है। अन्त में हरिवाहन को तिलकमञ्जरी के विषय में सूचना देकर यह ही उन दोनों के मिलन का साधन बनता है। इस प्रकार गन्धर्वक अनेक कष्ट सहकर भी अन्त तक अपने व्रत का दृढ़तापूर्वक पालन करता है। अतः यहाँ व्रतौचित्य है।

प्रस्तुत विवेचना से स्पष्ट है कि धनपाल की तिलकमञ्जरी में क्षेमेन्द्रोक्त औचित्य का निर्वहण सर्वत्र परिलक्षित होता है जिससे काव्य की रमणीयता और बढ़ गई है।

सप्तम अध्याय

तिलकमञ्जरी में वक्रोक्ति

- वक्रोक्ति
- पूर्ववर्ती आचार्यों का वक्रोक्ति चिन्तन
- परवर्ती आचार्यों का वक्रोक्ति चिन्तन
- कुन्तक का वक्रोक्ति सिद्धान्त
- वक्रोक्ति के भेद
- वर्ण विन्यास वक्रता
- पदपूर्वार्ध वक्रता
- पदपरार्ध वक्रता
- वस्तु वक्रता
- प्रकरण वक्रता
- प्रबन्ध वक्रता

वक्रोक्ति

वक्रोक्ति शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है-वक्र तथा उक्ति। इसका सामान्य अर्थ है -वक्रतापूर्ण उक्ति अथवा टेढ़ी उक्ति (कथन) अर्थात् उक्ति को सामान्य ढ़ंग से न कहकर वक्रतापूर्ण या वैचित्र्य से युक्त करके कहना। लोक व्यवहार की सामान्य उक्ति से भिन्न प्रकार की विलक्षण उक्ति ही वक्रोक्ति कहलाती है। वक्रोक्ति में श्रोता, वक्ता के कथन की वक्रता के अनुसार ही अन्यार्थ की कल्पना करता है। कृष्णदेव झारी के अनुसार- साहित्य तथा लोक व्यवहार में, साधारण वार्तालाप में, वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग वाक्-छल, क्रीड़ालाप तथा परिहास के रूप में होता रहा है।[1]

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य जीवित (आत्मा) के रूप में प्रतिष्ठित किया है। परन्तु संस्कृत काव्य शास्त्र में इसके बीज पहले से ही विद्यमान थे। कुन्तक के पूर्ववर्ती आचार्यों ने अनेक रूपों में इसकी विवेचना की है। कुन्तक के परवर्ती आचार्यों ने भी भिन्न-भिन्न प्रकार से वक्रोक्ति का वर्णन किया है। अत: यहाँ पर कुन्तक के पूर्ववर्ती व परवर्ती आचार्यों के वक्रोक्ति चिन्तन का संक्षिप्त वर्णन वाञ्छनीय है।

पूर्ववर्ती आचार्यों का वक्रोक्ति चिन्तन

भामह अलङ्कारवादी आचार्य हैं। इन्होंने अलङ्कार को काव्य का सर्वस्व माना है तथा वक्रोक्ति को अलङ्कार का प्राण। भामह का मत है कि वक्रोक्ति के बिना काव्य में सौन्दर्य की निष्पत्ति नहीं हो सकती। भामह ने अतिशयोक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हुए वक्रोक्ति की विवेचना की है। इनके अनुसार अतिशयोक्ति ही *वक्रोक्ति है। इसी के द्वारा अर्थ की विशिष्ट रूप से भावना की जाती है। कवि को* इसके लिए यत्न करना चाहिए -

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलङ्कारोऽनया विना ।।[2]

काव्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य वक्रोक्ति पर आधारित है। वक्रोक्ति से तात्पर्य शब्द

1. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत, पृ. 129
2. का. ल., 2/85

और अर्थ की वक्रता से है।[3] भामह वक्रता रहित वाक्य को वार्ता मात्र मानते हैं। 'गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिण:' आदि उक्तियों में वक्रता का अभाव होने के कारण यहाँ किसी प्रकार के सौन्दर्य प्रतीति नहीं होती। अत: भामह के अनुसार काव्यत्व के लिए वक्रोक्ति आवश्यक है।

दण्डी ने भामह द्वारा विवेचित वक्रोक्ति की अवधारणा को और आगे बढ़ाया है। दण्डी भी वक्रोक्ति को अलङ्कार का मूल मानते है। इन्होंने समस्त वाङ्मय को दो भागों में विभक्त किया है - वक्रोक्ति व स्वाभावोक्ति। दण्डी के अनुसार वक्रोक्ति स्वयं कोई अलङ्कार न होकर, उपमादि सभी अर्थालङ्कारों का सामूहिक अभिधान है। दण्डी श्लेष को वक्रोक्ति का आधार मानते हुए कहते है। कि श्लेष के कारण ही वक्रोक्ति का सौन्दर्यवर्धन होता है।

श्लेष: सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम् ।
भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम् ॥[4]

भामह और दण्डी में वक्रोक्ति पर मतैक्य होते हुए भी एक भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। भामह ने स्वाभावोक्ति को वक्रोक्ति में अन्तर्निहित माना है जबकि दण्डी इसे वक्रोक्ति से भिन्न मानते है। दण्डी का मत है कि स्वाभावोक्ति शास्त्र का सहज माध्यम है, जबकि वक्रोक्ति काव्य का अनिवार्य माध्यम है।[5] स्वाभावोक्ति काव्य में वाञ्छनीय है, परन्तु वक्रोक्ति काव्य का अपरिहार्य तत्त्व है।

वामन का दृष्टिकोण भामह और दण्डी के दृष्टिकोण से नितान्त भिन्न है। भामह और दण्डी ने वक्रोक्ति को अलङ्कार का मूल माना था, परन्तु वामन ने इसे अलङ्कार के रूप में देखा है तथा इसे शब्दालङ्कार न मानकर अर्थालङ्कार माना है। वामन के अनुसार सादृश्य के ऊपर आश्रित लक्षणा वक्रोक्ति कहलाती है।[6] लक्षणा होने में अनेक कारण होते है परन्तु सादृश्याश्रित लक्षणा ही वक्रोक्ति संज्ञक होती है।[7] इस प्रकार वामन ने वक्रोक्ति को सर्वसामान्य अलङ्कार से विशिष्ट अलङ्कार के रूप में सीमित कर दिया।

3. वाचां वक्रार्थशब्दोक्तिरलङ्काराय कल्पते । का. ल., 5/66
4. का. द., 2/363
5. वक्रोक्ति सिद्धांत और हिन्दी कविता, पृ. 6
6. सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्ति: । का. सू. वृ., 4/3/8
7. बहूनि हि निबन्धनानि लक्षणायाम् । तत्र सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिरसाविति । का. सू. वृ., 4/3/8 की वृत्ति

रुद्रट ने भी वक्रोक्ति को अलङ्कार विशेष के रूप में ही स्वीकार किया है। इन्होंने वक्रोक्ति की अर्थालङ्कार की पदवी को छीनकर इसे शब्दालङ्कार माना है। डॉ. नगेन्द्र का कथन है कि रुद्रट ने वक्रोक्ति का अर्थ 'वक्रीकृता उक्ति' करते हुए उसे वाक्छल पर आधारित शब्दालङ्कार मात्र माना है।[8] रुद्रट ने वक्रोक्ति के दो भेद किये है- काकु वक्रोक्ति और श्लेष वक्रोक्ति । काकु वक्रोक्ति में उच्चारण और स्वर के उतार चढ़ाव के द्वारा अन्य अर्थ की प्रतीति होती है तथा श्लेष वक्रोक्ति में श्लेष के द्वारा । रुद्रट के इस वक्रोक्ति विवेचन का परवर्ती आचार्यों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। रत्नाकर नामक कवि ने सभङ्ग श्लेष के चमत्कार का प्रदर्शन करते हुए 'वक्रोक्ति पंचाशिका' की रचना की।

आनन्दवर्धन ने प्रसंगवश ही वक्रोक्ति का वर्णन किया है। ध्वन्यालोक के द्वितीय उद्योत की इक्कीसवीं कारिका की वृत्ति में वक्रोक्ति का उल्लेख मिलता है- **''तत्र वक्रोक्त्यादिवाच्यालङ्कारव्यवहार एव।''**[9] आनन्दवर्धन ने वक्रोक्ति को अर्थालङ्कार माना है। ये वक्रोक्ति और अतिश्योक्ति को पर्यायवाची मानते है। इनका मत है कि सभी अलङ्कार अतिश्योक्तिगर्भ हो सकते है। महाकवियों द्वारा विरचित यह अतिश्योक्ति काव्य को अनिवर्चनीय शोभा प्रदान करती है। औचित्यपूर्ण अतिशयोक्ति का निबन्धन निश्चय ही काव्य को उत्कर्ष प्रदान करता है।[10]

इस प्रकार कुन्तक के पूर्ववर्ती आचार्यों ने कुन्तक को अपने वक्रोक्ति सिद्धान्त रूपी भवन के लिए वह आधार भूमि प्रदान की जिस पर कुन्तक ने वक्रोंक्ति रूपी भव्य प्रासाद को आकार प्रदान किया। कुन्तक के परवर्ती आचार्यों ने भी वक्रोक्ति की भिन्न रूपों में विवेचना की है। इनका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है

परवर्ती आचार्यों का वक्रोक्ति चिन्तन

कुन्तक के पश्चात् **भोजराज** ने वक्रोक्ति की विस्तृत विवेचना की है। इन्होंने वाङ्मय को तीन भागों में विभक्त किया है -''वक्रोक्ति, रसोक्ति और

8. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ. 144
9. ध्वन्या., 2/21 की वृत्ति
10. अतिश्योक्तिगर्भता सर्वालङ्कारेषु शक्यक्रिया । कृतैव च सा महाकविभिः कामदि काव्यच्छविं पुष्यति। ध्वन्या., पृ. 498

स्वाभावोक्ति।[11] भोजराज का अलङ्कार से तात्पर्य काव्य सौन्दर्य है। इनके अनुसार काव्य में उपमादि अलङ्कारों की प्रधानता होने पर वक्रोक्ति, गुण का प्राधान्य होने पर स्वाभावोक्ति तथा विभावानुभावादि के संयोग से रस निष्पत्ति होने पर रसोक्ति होती है।[12] भोज ने लक्षणा को वक्रोक्ति का प्राण मानते हुए, सभी प्रकार की लक्षणा को वक्रोक्ति का मूलाधार माना है।

मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में शब्दालङ्कार के रूप में वक्रोक्ति का विवेचन किया है। मम्मट ने वक्रोक्ति के दो भेदों का वर्णन किया है - भङ्ग श्लेष और काकु वक्रोक्ति। इनके अनुसार अन्य प्रकार से कहा हुआ वाक्य, जब अन्य के द्वारा श्लेष अथवा काकु से अन्य प्रकार से योजित किया जाता है। वह वक्रोक्ति नामक अलङ्कार होता है।[13]

रुय्यक ने भी वक्रोक्ति को अलङ्कार के रूप में ही विवेचित किया है। परन्तु रुय्यक वक्रोक्ति को शब्दालङ्कार न मानकर अर्थालङ्कार स्वीकार करते हैं। साहित्यदर्पणकार **विश्वनाथ** ने भी मम्मट का अनुकरण करते हुए वक्रोक्ति को शब्दालङ्कार माना है।

इस प्रकार वक्रोक्ति का यह विकास क्रम अनेक आरोह-अवरोह से युक्त है। जिस वक्रोक्ति को कुन्तक ने काव्य सौन्दर्य का मूलाधार प्रतिपादित किया था, वह कुन्तक के पश्चात् धीरे-धीरे अलङ्कार मात्र रह गया। यह सत्य है कि कुन्तक का वक्रोक्ति रूपी भवन लम्बे समय तक अपनी प्रतिष्ठा को वहन नहीं कर सका, तथापि अत्यन्त सूक्ष्मतया वर्णन करने के कारण वक्रोक्ति सिद्धान्त के प्रतिपादक आचार्य राजानक कुन्तक का नाम वक्रोक्तिजीवितकार के रूप में काव्याचार्यों में अत्यधिक आदर सहित लिया जाता है।

कुन्तक का वक्रोक्ति सिद्धान्त

राजानक कुन्तक वक्रोक्ति सिद्धान्त के उन्नायक आचार्य है। उन्होंने रीति, रस, अलङ्कार, गुण, ध्वनि आदि सिद्धान्तों के रहते हुए भी सर्वथा नवीन सिद्धान्त का

---

11. वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्च वाङ्मयम् । स. क., 5/8
12. त्रिविधः खल्वलङ्कारवर्गः वक्रोक्तिः स्वभावोक्तिः रसोक्तिरिति। तत्र उपमाद्यलङ्कार प्राधान्ये वक्रोक्ति। सोऽपि गुणप्राधान्ये स्वभावोक्तिः। विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगात्त रसनिष्पतौ रसोक्तिरिति। श्रृ. प्र., पृ. 124
13. यदुक्तमन्यथावाक्यमन्यथऽन्येन योज्यते ।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया वक्रोक्तिस्तथाद्विधा ।। का. प्र., सू. 102

प्रतिपादन किया और वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया। 'वक्रोक्ति जीवित' के रूप में वक्रोक्ति सिद्धान्त उनके नितान्त मौलिक व प्रौढ़ चिन्तन का निदर्शन है। कुन्तक की ग्रन्थ रचना का मुख्य उद्देश्य है – 'लोकोत्तरचमत्कारकारि वैचित्र्यसिद्धि'[14] अर्थात् अलौकिक आह्लाद को उत्पन्न करने वाले वैचित्र्य की सिद्धि।

कुन्तक के अनुसार वक्रोक्ति का लक्षण है – वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्य भङ्गीभणितिरुच्यते।[15] अर्थात् वैदग्धपूर्ण भङ्गिमा द्वारा कथन वक्रोक्ति है। यहाँ वैदग्ध्य का अर्थ है विदग्ध (प्रतिभावान् कवि) का भाव अर्थात् कवि की काव्यकर्म कुशलता। भङ्गी का अर्थ है – विच्छिति, शोभा अथवा चारुता। भणिति का अर्थ है कथन।[16] इस प्रकार वक्रोक्ति कविकर्म की कुशलता से उत्पन्न होने वाले चमत्कार के ऊपर आश्रित होने वाला कथन का प्रकार है।[17] कुन्तक ने एक अन्य तत्व पर भी अत्यधिक बल दिया है वह है 'सहृदय हृदय आह्लादकारिणी' अर्थात् काव्य में सहृदयों के हृदय को आह्लादित करने की क्षमता। कुन्तक मानते हैं कि वही रचना श्रेष्ठ है, वहीं काव्य वरेण्य है जिसमें कुशल कवि व्यापार से युक्त चारुता (विच्छित्ति) पूर्ण कवि-कथन (उक्ति की प्रस्तुति) ऐसा हो, जो सहृदय को आह्लादित करने में समर्थ हो।[18]

वक्रोक्ति के भेद

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य के जीवित (आत्मा) के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इनके अनुसार काव्य में जिस सौन्दर्य का आस्वादन होता है, वह वक्रता के कारण होता है। कवि अपनी प्रतिभा के बल पर अपनी कृति में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए सहज अथवा सचेष्ट रूप में जिन साधनों-प्रसाधनों का

---

14. व. जी., 1/2
15. वही 1/10
16. वैदग्ध्यं विदग्धभावः, कविकर्मकौशलं, तस्यभङ्गी विच्छित्तिः, तया भणितिः। विचित्रैवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते। वही, 1/10 की वृत्ति
17. भारतीय साहित्य शास्त्र, खण्ड-2, पृ. 223
18. वक्रोक्ति सिद्धान्त और हिन्दी कविता, पृ. 9

उपयोग करता है वे सभी वक्रोक्ति के भेद है।[19] कुन्तक ने काव्य-सौन्दर्य विषयक सभी तत्त्वों का समावेश वक्रोक्ति में किया है।

कुन्तक ने वक्रोक्ति के छः भेद किए हैं। उन्होंने काव्य की लघुतम इकाई वर्ण से लेकर उसके महत्तम रूप प्रबन्ध तक वक्रोक्ति का साम्राज्य माना है। ये छः भेद हैं -

1. वर्ण विन्यास-वक्रता
2. पद पूर्वार्ध-वक्रता
3. पद परार्ध-वक्रता
4. वस्तु वक्रता
5. प्रकरण वक्रता
6. प्रबन्ध वक्रता

कुन्तक के अनुसार महाकवियों की प्रतिभा से उद्बुध वक्रता के हजारों अन्य भेद हो सकते हैं, जिनका सहृदय स्वयं अनुभव कर सकते हैं।[20]

वर्ण विन्यास-वक्रता

काव्य का शरीर शब्द और अर्थ के सहभाव से निर्मित होता है। शब्द अनेक वर्णो से मिलकर बनता है। इन्हीं वर्णों के वैचित्र्य को देखकर कुन्तक ने वर्णविन्यासवक्रता को वक्रोक्ति का प्रथम भेद माना है। वर्ण कवि के मन के भावों के वाहक होते हैं तथा कवि सृष्टि की विशेष अनुभूतियों को सामाजिक तक प्रेषित करते हैं। सुकवि कुशलतापूर्वक वर्णो का चयन करता है। उचित वर्णो का चयन व विन्यास कविगत भावों को सहृदय तक यथावत् सम्प्रेषित करता है। अतः वर्णनानुकूल वर्णो का चयन कवि प्रतिभा को द्योतित करता है।

आचार्य कुन्तक ने वर्णविन्यासवक्रता का लक्षण किया है - जब एक, दो अथवा बहुत से वर्ण अनेकशः संयोजित किए जाते है तो वहाँ वर्णविन्यासवक्रता होती है। यह वक्रता तीन प्रकार की है[21] -

---

19. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ. 179
20. एते च मुख्यतयावक्रता प्रकाराः कतिचिन्नदर्शनार्थ प्रदर्शिताः। शिष्टाश्च सहस्रशः सम्भवन्तीति महाकविप्रवाहे सहृदयैः स्वयमेवोत्प्रेक्षणीयाः। व. जी., 1/19 की वृत्ति
21. एकौ द्वौ बहवो वर्णा बध्यमानाः पुनः पुनः।
स्वल्पान्तरास्त्रिया सोक्ता वर्णविन्यासवक्रता ।। वही, 2/1

प्रथम प्रकार : एक वर्ण का पुनः पुनः विन्यास

द्वितीय प्रकार : दो वर्णों का पुनः पुनः विन्यास

तृतीय प्रकार : दो से अधिक वर्णों का पुनः पुनः विन्यास

प्रथम प्रकार : कुन्तक ने वर्णविन्यासवक्रता के प्रथम भेद 'एक वर्ण के पुनः पुनः विन्यास' का प्रकृत उदाहरण दिया है;[22] जिसमें उन्होंने प्रथम प्रकार के वर्णविन्यासवक्रता को दर्शाया है।

महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरी में वर्णविन्यासवक्रता के सभी भेदों का सुन्दर परिपाक दृष्टिगोचर होता है। सहृदय तिलकमञ्जरी में अनेक स्थलों पर वर्णविन्यासवक्रता की छटा देखकर सहसा ही मुग्ध हो जाता है। तिलकमञ्जरी से वर्णविन्यासवक्रता के प्रथम भेद के उदाहरण द्रष्टव्य है : –

(1) स वः पातु जिनः कृत्स्नं समीक्ष्यते यः प्रतिक्षणम्।
रूपैरनन्तैरेकैकजन्तोर्व्याप्तं जगत्रयम्।।[23]

यह तिलकमञ्जरी का मंगलाचरण श्लोक है, जिसमें धनपाल ने अपने इष्टदेव जिन को नमस्कार किया है। इसमें 'प', 'त', 'र', 'क', और 'ज' आदि वर्णों की एकाधिक वार आवृत्ति अद्भुत छटा उत्पन्न करती है।

(2) आश्लिष्य कण्ठममुना मुक्ताहरेण हृदि निविष्टेन।
सरुषेव वारितो में त्वदुरःपरिरम्भणारम्भः।।[24]

यह आर्या छन्दोवद्ध पद्य है। इसे तिलकमञ्जरी ने हरिवाहन के पास पत्र में लिखकर भेजा है। यहाँ 'म', 'ह', 'र', 'भ', 'व' आदि वर्णों की अनेक बार आवृत्ति हुई है।

---

22. धाम्मिल्लो विनिवेशिताल्पकुसुमः सौन्दर्यधुर्यं स्मितंविन्यासो वचसां विदग्धमधुरः कण्ठे कलः पञ्चमः।
लीलामन्थरतारके च नयने यातं विलासालसं कोऽप्येवं हरिणीदृशःस्मरशरापातावदातः क्रमः।। व. जी., पृ. 173

23. ति. म., भूमिका, पद्य 1

24. वही, पृ. 396

(3) विपदिव विरता विभावरी नृप निरपायमुपास्स्व देवताः।
उदयति भुवनोदयाय ते कुलमिव मण्डलमुष्णदीधितेः।।[25]

अपरवक्र छन्दोवद्ध प्रकृत पद्य सम्राट् मेघवाहन के लिए विशेष महत्त्व रखता है। इसमें चारण ने सहसा ही मेघवाहन को पुत्र प्राप्ति का उपाय बता दिया है, जिसे उसने तत्क्षण ही हृदयङ्गम भी कर लिया है। इस पद्य में 'व', 'प', 'द', 'र', 'य' तथा 'म' वर्णो की आवृत्ति विचित्रता को उत्पन्न कर रही है।

(4) प्रथितगुणस्थानस्थितस्यासतोऽपि हि महात्म्यमाविर्भवति। पृ. 213

समरकेतु आराम नामक देवताओं के उद्यान की रमणीयता को देखकर कहता है कि प्रख्यात गुणों वाले स्थान पर स्थित महत्त्वशून्य वस्तु भी महिमावान् हो जाती है। यहाँ पर 'स', 'थ', 'त', 'ष', 'म' तथा 'व' वर्णो का विन्यास एकाधिक बार हुआ है। अतः यह वर्णविन्यासवक्रता के प्रथम भेद का उदाहरण है।

(5) इन्दुरिव मोचयन्कुमुदमुकुलोदरसंदानितान्यलिकदम्बकानि। पृ. 206-207

मानस नामक सरोराज में स्नान करके निकले समरकेतु की आभा उस चन्द्रमा के समान थी, जिसकी किरणों के स्पर्श से खिले हुए कुमुदों से भ्रमरसमूह मुक्त हो जाता है। यहाँ 'द', 'य', 'न', 'र', 'क', 'म', 'ल' आदि वर्णो का एकाधिक बार संयोजन उद्भुत छटा बिखेर रहा है।

इस प्रकार स्वल्प व्यवधान से युक्त एक वर्ण की अनेकधा आवृत्ति के ये उदाहरण प्रस्तुत किए गए है। आचार्य कुन्तक का मत है कि कहीं-कहीं व्यञ्जनों के व्यवधान के अभाव में एक वर्ण का दो अथवा अनेक बार उपनिबंधन चित्ताकर्षक होता है। कहीं-कहीं वह स्वरों के असमान होने से किसी अन्य वैचित्र्य को पुष्ट करता है।[26]

यथा-**समाधिगुणशालिन्यः प्रसन्न परिपक्त्रिमाः।**
यायावरकवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तयः।।[27]

25. ति.म., पृ. 28
26. क्वचिदव्यवधानेऽपि मनोहारिनिबन्धना।
सा स्वराणामसारुप्यात् परां पुष्णाति वक्रताम्।। व. जी., 2/3
27. ति. म., भूमिका श्लोक 33

यहाँ पर 'प्रसन्न' में 'न' वर्ण की, 'यायावर' में 'य' वर्ण की, 'कवेर्वाचो में 'व' वर्ण की, 'मुनीनाम्' में 'न' वर्ण की तथा 'वृत्तय' में 'त', वर्ण की किसी अन्य व्यञ्जन के व्यवधान से रहित संयोजना हुई है।

ससीमा सग्रामा सनगरसरिद्द्वीपवलया
तमिस्त्रादुन्मज्जत्युदधिजलमध्यादिव मही।[28]

यहाँ पर 'सनगरसरिद्द्वीपवलया' में 'द' वर्ण की, ससीमा में 'स' वर्ण की तथा 'उन्मज्जति' में 'ज' वर्ण की अन्य किसी व्यञ्जन के व्यवधान से रहित पुनः आवृत्ति हुई है।

आचार्य कुन्तक वर्णविन्यासवक्रता के विषय में अत्यन्त सजग थे इसलिए उन्होंने वर्णविन्यासवक्रता के लिए कुछ नियम भी निर्धारित किए है जिनसे कवि अपने मूल उद्देश्य रस व्यञ्जना को विस्मृत कर वर्ण वक्रता के लिए प्रयत्नशील न हो जाए। ये नियम है -

1. वर्ण संयोजन वर्ण्य विषय के औचित्य (उचित भाव) से सुशोभित होने चाहिए। उसके औचित्य को दूषित करने वाले वर्णों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।[29]

2. वर्णविन्यासवक्रता के लिए कवि को अत्यन्त निर्बन्ध (व्यसन) नहीं होना चाहिए अर्थात् वर्णविन्यासवक्रता के लिए अत्यन्त आग्रह नहीं रखना चाहिए। यह वक्रता बिना प्रयास के स्वभावतः विरचित होनी चाहिए।[30]

3. वर्णविन्यासवक्रता अपेशल (कठोर) वर्णों से युक्त न होकर सुन्दर वर्णों से अलंकृत होनी चाहिए।[31]

---

28. ति. म., पृ. 359
29. प्रस्तुतं वर्ण्यमानं वस्तु तस्य यदौचित्यमुचितभावस्तेन शोभन्ते ये ते तथोक्ताः। न पुनर्वर्णसावर्ण्यव्यसनितामात्रेणोपनिबद्धाः प्रस्तुतौचित्यम्लानकारिणः। व.जी.,2/2 की वृत्ति, पृ. 175
30. नातिनिर्बन्धविहिता नाप्यपेशलभूषिता। वही, 2/4
31. वही, 2/4

4. वर्णविन्यास में वैचित्र्य होना चाहिए। कवि को चाहिए कि वह काव्य को पूर्वावंत वर्णों का परित्याग कर उसे नवीन वर्णों की आवृत्ति से सुशोभित करे।[32]

5. वर्णविन्यास श्रुतिपेशल, रमणीय तथा औचित्यपूर्ण होना चाहिये।[33]

द्वितीय प्रकार : (दो वर्णों का पुनः पुनः विन्यास) – आचार्य कुन्तक ने प्रकृत पद्य को वर्णविन्यासवक्रता के द्वितीय प्रकार के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।[34] इसके द्वितीय चरण में 'ताल ताली' में त् एवं ल् की दो बार आवृत्ति हुई है तथा तृतीय चरण में 'वेल्लत्कल्लोल' में 'ल्ल' की दो बार तथा 'कल्लोल', 'विसकलन' एवं कूलकच्छेषु में क्, ल् की तीन बार आवृत्ति हुई है। तिलकमञ्जरी से वर्णविन्यासवक्रता के द्वितीय प्रकार के उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

वन्येभैर्भृशमपि गाह्यमानकूले कालुष्यं कलयति यत्र जातु नाम्भः।
जात्यैवापहृतमलैः फलैरसक्तं संसक्तं तटकतकद्रुमावलीनाम्॥[35]

इस पद्य में अदृष्टपार सरोवर के जल की निर्मलता का वर्णन किया गया है। यहाँ 'कूले', 'कालुष्यम्' एवं 'कलयति' में क्, ल् वर्णों की तीन बार आवृत्ति हुई है।

प्रभातप्रायासौ रजनीररुणज्योतिररुणं रुणद्धीदं रोदो दिशि दिशितमस्ताम्यतितमाम्
प्रभाछिद्रश्चन्द्रो दलति दलमैत्री जलरुहां रहोऽनुत्साहस्य श्लथयनृपनिद्रासुखरसम्॥[36]

यह प्रभातकालिक मंगलस्त्रोत पद्य है। यहाँ रजनीररुणज्योतिररुणं रुणद्धीदं ' में र्, ण् वर्णों की तीर बार, 'तमस्ताम्यतितमाम्' में त्, म् वर्णों की तीन बार 'दिशि दिशि' में द्, श् तथा 'दलति दलमैत्री' में द्, ल् वर्णों की दो बार आवृत्ति हुई है।

---

32. पूर्वावृत्तपरित्यागनूतनावर्तनोज्ज्वला। व.जी., 2/4
33. समानवर्णमन्यार्थे प्रसादि श्रुतिपेशलम्।
औचित्ययुक्तमाद्यादिनियतस्थानशोभि यत्॥ वही, 2/6
34. भग्नैलावल्लरीकास्तरलितकदलीस्तम्बताम्बूल जम्बू –
जम्बीरास्तालतालीसरलतरलतालासिका यस्य जह्नुः।
वेल्लत्कल्लोलहेला बिसकलनजडाः कूलकच्छेषु सिन्धोः
सेनासीमन्तिनीनामनवरतरताभ्यासतान्तिंत समीराः॥ व. जी., पृ. 173
35. ति. म., पृ. 205
36. वही, पृ. 359

वर्ण्य वस्तु के औचित्य से सुशोभित होने वाली यह द्वितीय प्रकार की वर्णविन्यासवक्रता, अपने वर्गान्त से संयुक्त स्पर्श वर्णों की आवृत्ति, द्विरुक्त त, ल, न की पुनः पुनः आवृत्ति तथा 'र' आदि वर्णों से संयुक्त शेष सभी वर्णों की पुनः पुनः आवृत्ति के भेद से पुनः तीन प्रकार की होती है।[37] तिलकमञ्जरी से वर्णविन्यास से वर्णविन्यासवक्रता के द्वितीय प्रकार के तीनों भेदों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

(क) वर्गान्त संयुक्त स्पर्श वर्णों (कवर्गादि) का पुनः पुनः विन्यास श्रान्तातिदीर्घसोपानपथलङ्घनेन, इत्यङ्गभारं शालभृङ्गोत्सङ्गिनं कृत्वा ...। पृ. 277

यहाँ पर समरकेतु के दर्शन से कामार्त, मलयसुन्दरी की क्रियाओं का वर्णन किया गया है। यहाँ स्पर्श वर्ण 'ग' की वर्गान्त 'ङ' के साथ अनेक बार आवृत्ति चित्ताकर्षक हो गई है।

अखण्डदण्डकारण्यभाजः प्रचुरवर्णकात्।
व्याघ्रादिवसाघ्रातो गद्याद्व्यावर्तते जनः।।[38]

प्रस्तुत श्लोक में गद्य काव्य का वर्णन किया गया है। इसके प्रथम चरण में 'ड' वर्ण की अपने वर्गान्त 'ण' के साथ संयुक्त रूप में दो बार आवृत्ति हुई है।

प्रसन्नगम्भीरपथा रथाङ्गभिथुनाश्रया।
पुण्या पुनाति गङ्गेव गां तरङ्गवती कथा।।[39]

इस पद्य में धनपाल ने कथा की महत्ता का वर्णन किया है। इस पद्य के द्वितीय चरण में स्पर्श वर्ण 'ग' अपने वर्गान्त से संयुक्त होकर दो बार आवृत्त हुआ है।

नमो जगन्नमस्याय मुनीन्द्रायेन्द्रभूतये।[40]

यहाँ इन्द्रभूति नामक मुनीन्द्र को नमस्कार किया गया है। इसमें स्पर्श वर्ण 'द' की अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण 'न' से संयुक्त होकर दो बार आवृत्ति हुई है।
केवलात्मजाङ्गपरिष्वङ्गनिवृत्तिं नाध्यगच्छत्। पृ. 20

---

37. वर्गान्तयोगिनः स्पर्शा द्विरुक्तास्त-ल-नादयः।
शिष्टाश्च रादिसंयुक्ताः प्रस्तुतौचित्यशोभिनः।। व. जी., 2/2
38. ति. म., भूमिका, पद्य 15
39. वही, पद्य 23
40. वही, पद्य 19

यहाँ सम्राट् मेघवाहन के दु:ख के एकमात्र कारण पुत्राभाव का वर्णन किया गया है। यहाँ 'ग' वर्ण 'ङ' के साथ संयुक्त रूप में दो बार आवृत्त हुआ है।

(ख) द्विरुक्त त, ल, न का पुनः पुनः विन्यास–

स्वप्नेरसातलात्तत्काल मेवोद्गतमनेकपुष्पस्तबकसंबाधविटपच्छन्नमच्छिन्नसंतान– मधुकरसहस्रोपसेवितमुत्फुल्ल बल्लीनिकरपरिकरतया..पारिजातद्रुममद्राक्षीत्। पृ. 207

यहाँ समरकेतु द्वारा स्वप्न में पारिजात वृक्ष के दर्शन का वर्णन किया गया है। यहाँ पर द्विरुक्त 'न' तथा 'ल' की दो बार आवृत्ति हुई है।

उपसृतं च तं क्षिति चुम्बिना सरभसप्रसारितबाहुयुगलः प्रवेशयन्निव हृदयमेकतां नयन्निव शरीरेण .... पुलकजालमालिलिङ्ग। पृ. 231

यहाँ समरकेतु के प्रति हरिवाहन के प्रेम का वर्णन है। यहाँ द्विरुक्त 'न' की दो बार आवृत्ति हुई है।

राजपुरुषस्तेनानुलेपनेन तासामस्मदासन्नवर्तिनीनां राजकन्यानामलिकलेखासु तिलकानकार्षीत्। पृ. 289

यहाँ जिनाभिषकोत्सव के लिए अपहृत राजकन्याओं का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत पंक्ति में द्विरुक्त 'न' वर्ण की चार बार आवृत्ति हुई है।

(ग) 'र' आदि से युक्त वर्णों का पुनः पुनः विन्यास – वार्योऽनार्यः स निर्दोषे यः काव्याध्वनि सर्पताम्। अग्रगामितया कुर्वन्विध्नमायाति सर्पताम्।।[41]

इसमें महाकवि धनपाल ने दुर्जनों का वर्णन किया है। इसके प्रथम चरण में 'य' का 'र' के साथ संयुक्त रूप में दो बार प्रयोग हुआ है।

प्राज्यप्रभावः प्रभवो धर्मस्यास्तरजस्तमाः।
ददतां निवृतात्मान आद्योऽन्येऽपि मुदं जिनाः।।[42]

यह मंगलाचरण का द्वितीय पद्य है। इसमें जिन स्तुति की गई है। इसके प्रथम चरण में 'प' की 'र' के साथ संयुक्त रूप में तीन बार आवृत्ति हुई है।

41. ति. म., भूमिका, पद्य 9
42. वही, पद्य 2

धौर्मन्दस्फुरितारुणा तिमिरिणीसर्वसहा सर्वथा।
सीमा चित्तमुषामुष क्षणदयोः संधिक्षणौ वर्तते।।[43]

यह प्रातः बेला में चारण द्वारा गाया गया मंगलपद्य है। इसमें 'व' की 'र' से संयुक्त आवृत्ति दो बार हुई है।

तृतीय प्रकार : दो से अधिक वर्णों का पुनः पुनः विन्यास- कुन्तक ने प्रकृत पद्य को वर्णविन्यासवक्रता के तृतीय प्रकार के उदाहरण के रूप में दिया है।[44] इसके चतुर्थ चरण में 'स्तम्ब ताम्बूल' में त्, म्, ब् की तथा 'जम्बू जम्बारा' में 'ज', 'म', 'ब' की एक साथ दो-दो बार आवृत्ति हुई है। द्वितीय चरण में 'सरलतरलता' में 'र', 'ल', 'त' की एक साथ दो बार आवृत्ति हुई है। तिलकमञ्जरी से वर्ण विन्यास वक्रता के तृतीय प्रकार के उदाहरण उद्धृत किए जा रहे है -

निरोद्धुं पार्यते केन समरादित्यजन्मनः।
प्रशमस्य वशीभूतं समरादित्यजन्मनः।।[45]

इस श्लोक में हरिभद्रसूरि कृत कथा के उत्कर्ष का वर्णन किया गया है। इसमें 'समरादित्यजन्मनः' पद के सभी वर्णों की उसी क्रम में प्रथम व द्वितीय चरण में दो बार आवृति हुई है।

वन्द्यास्ते कवयः काव्यपरमार्थ विशारदाः।
विचारयन्ति ये दोषान्गुणांश्च गतमत्सराः।।[46]

प्रस्तुत पद्य में महाकवि धनपाल ने रागद्वेषरहित काव्यज्ञों की प्रशंसा की है। इस पद्य के प्रथम चरण में 'कवयः काव्य' में क्, व्, य् की दो बार आवृत्ति हुई है।

---

43. ति.म., पृ. 237
44. भग्नैलावल्लरीकास्तरलितकदलीस्तम्बताम्बूल जम्बू -
जम्बीरास्तालतालीसरलतरलतालासिका यस्य जह्नुः।
वेल्लत्कल्लोलहेला बिसकलनजडाः कूलकच्छेषु सिन्धोः
सेनासीमन्तिनीनामनवरतरताभ्यासतान्तिंत समीराः।। व. जी., पृ. 173
45. ति. म., भूमिका, पद्य 29
46. वही, भूमिका, पद्य 8

आद्यश्रोणि दरिद्रमध्यसरणि स्रस्तांसमुच्चस्तनं
नीरन्ध्रालकमच्छगण्डफलकं छेकभ्रु मुग्धेक्षणम्।
शालीनस्मितमस्मिताञ्चितपदन्यासं बिभर्ति स्म या
स्वादिष्टोक्तिनिषेकमेकविकसल्लावण्यपुण्यं वपुः।।[47]

इस पद्य में मदिरावती के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है इसके तृतीय चरण में 'स्मितमस्मित' में स्, म्, त् की दो बार आवृत्ति हुई है।

विधिर्बद्धोऽपि बुद्धिमद्भिरतिनिबिडेन प्रज्ञालोहनिगडेन निरवग्रहो विचरति। पृ. 112

इस पंक्ति में भाग्य की महिमा का वर्णन किया गया है। यहाँ 'बद्धोऽपि बुद्धि' में ब्, द्, ध् की दो बार आवृत्ति हुई है।

क्षुण्णोऽपि रोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न विधुरेषु।।[48]

इस श्लोक में बताया गया है कि योग्य व्यक्ति स्वस्थान च्युत होने पर भी पुनः अपनी पूर्व महत्ता को प्राप्त कर लेता है। यहाँ 'सन्तः सन्तप्यन्ते' में स्, न्, त् की दो बार आवृत्ति हुई है।

अवतीर्णश्च तस्मिंस्तापमतापमातपमनातपं तपनमतपनं दिवसमदिवसं ग्रीष्ममग्रीष्मं कालममकालं तुषारपातमतुषारपातं त्रिभुवनमत्रिभुवनं सर्गक्रममममंस्त। पृ. 212

यहाँ आराम नामक उद्यान की रमणीयता का वर्णन किया गया है। यहाँ तापम्, तपनम्, आतपम्, दिवसम्, ग्रीष्मम्, कालम्, तुषारपातम्, त्रिभुवनम् में दो से अधिक वर्णो की उसी क्रम में एक साथ दो-दो बार आवृत्ति हुई है, जो विचित्रता का आधान करती है।

इस प्रकार वर्णविन्यासवक्रता का वैचित्र्य सहृदय को सहज ही आकर्षित करता है। आचार्य कुन्तक ने रीतियों और वृत्तियों का अन्तर्भाव वर्णविन्यासवक्रता में ही कर दिया है।[49] आचार्य कुन्तक यमकालङ्कार को भी वर्णविन्यासवक्रता में

47. ति.म., पृ. 23
48. वही, पृ. 402
49. वर्णच्छायानुसारेण गुणमार्गानुवर्तिनी।
वृत्तिवैचित्र्ययुक्तेति सैव प्रोक्ता चिरन्तनैः।। व. जी., 2/5

समाहित किये हुए है। उनका मत है कि यमक नियतस्थान पर शोभित होने के अतिरिक्त पूर्वोक्त वर्णविन्यासवक्रता से भिन्न किसी अन्य शोभा का जनक नहीं होता।[50]

आचार्य मम्मट ने यमक की परिभाषा की है –अर्थ होने पर भिन्नार्थक वर्णों का उसी क्रम में पुनः श्रवण यमक है।[51] 'निरोद्धं, पार्यते केन .....'[52] तथा 'अवतीर्णश्च तस्मिंस्तापमतापम् ....। इसके अत्युत्तम उदाहरण हैं।

इस प्रकार तिलकमञ्जरी में वर्णविन्यासवक्रता का सहज, श्रुतिपेशल और औचित्यपूर्ण प्रयोग सर्वत्र परिलक्षित होता है। धनपाल इस वैचित्र्य के संयोजन के प्रति प्रयत्नशील नहीं हैं। यह वक्रता वैचित्र्य उनकी सहज कवित्व शक्ति के समक्ष स्वयंमेव ही उपस्थित हो गया है।

पदपूर्वार्धवक्रता

काव्य की लघुतम इकाई वर्ण के पश्चात् दूसरा अवयव 'पद' है। पद अनेक वर्णो से मिलकर बनता है और सार्थक होता है। पद के दो भाग होते हैं - पद पूर्वार्ध (प्रकृति) तथा पद परार्ध (प्रत्यय)। पद पूर्वार्ध पर आधारित वक्रता कुन्तक की वक्रोक्ति का द्वितीय भेद है। संस्कृत में पद दो प्रकार के होते हैं - सुबन्त और तिङन्त (सुप्तिङन्तं पदम्)। सुबन्त का पूर्वार्ध प्रातिपदिक तथा तिङन्त का पूर्वार्ध धातु कहलाता है। इस प्रकार पदपूर्वार्धवक्रता का अभिप्राय प्रातिपदिक और धातु की वक्रता से है।

कुन्तक ने पदपूर्वार्ध वक्रता के दस मुख्य भेद किये हैं -

(क) रूढिवैचित्र्य-वक्रता	(च) प्रत्यय-वक्रता
(ख) पर्याय-वक्रता	(छ) वृत्ति-वक्रता
(ग) उपचार-वक्रता	(ज) भाव-वक्रता
(घ) विशेषण-वक्रता	(झ) लिङ्गवैचित्र्य-वक्रता
(ङ) संवृत्ति-वक्रता	(ञ) क्रियावैचित्र्य-वक्रता

तिलकमञ्जरी में पदपूर्वार्धवक्रता का सुन्दर निदर्शन दृष्टिगोचर होता है।

50. यमकं नाम कोऽप्यस्याः प्रकारः परिदृश्यते।
स तु शोभान्तराभावादिह नाति प्रतन्यते।। वही, 2/7

51. अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुति यमकम्। का. प्र., सू. 116

52. ति.म., भूमिका, पद्य 29

रूढ़िवैचित्र्य वक्रता : रूढ़ शब्द के वैचित्र्य का वक्रभाव रूढ़िवैचित्र्यवक्रता कहलाता है। कुन्तक के अनुसार जहाँ वाच्यार्थ के लोकोत्तर तिरस्कार या प्रशंस्य उत्कर्ष का अभिधान करने की इच्छा से रूढ़ि के द्वारा असंभवनीय धर्मसमर्पक अथवा विद्यमान धर्म के अतिशय समर्पक अभिप्राय की प्रतीति होती है। वह कोई अपूर्व ही सौन्दर्य विधायक रूढ़िवैचित्र्यवक्रता कही जाती है।[53]

इमामेव प्रकृतिसौम्यां सततसंनिहितामुपास्स्व सकलक्षितिपालकुलदेवतां **राजलक्ष्मीम्।** इयं हीक्ष्वाकुकुलभरतमगीथदिभूपालपराक्रमक्रीता, ... अभिमतार्थविषयं च वरमचिरेण।-पृ. 30

प्रकृत उदाहरण में महाकवि धनपाल ने 'राजलक्ष्मी' शब्द का प्रयोग कर रूढ़िवैचित्र्यवक्रता का सुन्दर निदर्शन किया है। 'राजलक्ष्मी' का सामान्य अर्थ राजाओं के धन की देवी है। यहाँ पर राजलक्ष्मी शब्द से उसके प्रशंसनीय उत्कर्ष का बोध होता है। यह राजलक्ष्मी धन की देवी मात्र नहीं है अपितु मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली तथा दु:खों को दूर करने वाली राजाओं की आराध्य देवी भी है। इसी कारणवश विद्याधर मुनि भी सम्राट मेघवाहन को पुत्रवर-प्राप्ति हेतु इसी राजलक्ष्मी की आराधना करने का उपदेश देते हैं।

अस्ति रम्यतानिरस्तसकलसुरलोका ...सर्वाश्चर्यनिधानमुत्तरकौशलेष्व**योध्येति** यथार्थाभिधाना नगरी। - पृ. 11

यहाँ 'अयोध्या', नगरी वाचक संज्ञा पद मात्र नहीं है। धनपाल को 'अयोध्या' शब्द से एक चमत्कारी अर्थ विवक्षित है। इसीलिए उन्होंने 'यथार्थाभिधाना अयोध्या' कहा है। अयोध्या - योद्धुं शक्या योध्या, न योध्या अयोध्या अर्थात् जिससे युद्ध न किया जा सके अथवा जिसे जीता न जा सके। इससे अयोध्या की साधन-सम्पन्नता, वीर जन सम्पन्नता तथा समस्त युद्धोपकरण सुसज्जिता का बोध होता है।

---

53. यत्र रूढ़ेरसम्भाव्यधर्माध्यारोपगर्भता।
सद्धर्मातिशयारोपगर्भत्वं वा प्रतीयते।।
लोकोत्तरतिरस्कारश्लाध्योत्कर्षाभिधित्सया।
वाच्यस्य सोच्यते कापि रूढ़िवैचित्र्यवक्रता।। व. जी., 2/8, 9

अनेन (**तारकेन**) हि सुखेन लंघयिष्यत्यलघुविस्तारमपि भगवनतमवारपारं पारावारं कुमारः। साधयिष्यति च यत्नमन्तरेणापि कृच्छ्रसाध्यानि प्रयोजनानि प्रायेण। – पृ. 130

दुष्ट सामन्तों के दमन हेतु निकले युवराज समरकेतु की समुद्र यात्रा में 'तारक' उनका नाविक है। 'तारक' रूढ़िवैचित्र्यवक्रता का सुन्दर उदाहरण है। यहाँ 'तारक' एक व्यक्तिवाचक संज्ञा मात्र नहीं है। तारक का अर्थ है – आगे ले जाने वाला, पार लगाने वाला। समुद्र यात्रा में मल्लाह अथवा कर्णधार का अत्यधिक महत्त्व होता है। योग्य कर्णधार अपने स्वामी को उसके गन्तव्य तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होता है। तारक युवराज समरकेतु के जलयान का कर्णधार है। तारक पद से इस अर्थ का बोध होता है कि वह जलयान संचालन विद्या में पूर्णतः दक्ष है तथा इसकी सहायता से समरकेतु अत्यन्त दुर्गम व विस्तृत समुद्र को अनायास ही पार करने में सक्षम होंगे।

पयार्यवक्रता : पर्याय पर आश्रित वक्रता पर्यायवक्रता कहलाती है। पर्याय से अभिप्राय है समानार्थक संज्ञा शब्द। उसके कुशल प्रयोग से उत्पन्न चमत्कार का नाम है पर्यायवक्रता।[54] कुन्तक के अनुसार जो (1) अभिधेय (वाच्यार्थ) का अत्यन्त अन्तरङ्ग (चमत्कार को प्रकट करने में सर्वाधिक उपयुक्त) है, (2) जो अभिधेय के अतिशय का षोषक है, (3) स्वयं ही अथवा अपने विशेषण के द्वारा जो रमणीय दूसरी शोभा के स्पर्श से उसको अलंकृत करने में समर्थ है, (4) अपनी कांति (सुकुमारता) के प्रकर्ष से रमणीय है। (5) असम्भाव्य अर्थ का पात्र होने के अभिप्राय वाला कहा जाता है तथा (6) अलङ्कारों के कारण उत्पन्न दूसरी शोभा से अथवा अलङ्कारों की दूसरी शोभा को उत्पन्न करने से मनोहर रचना वाला पर्याय है उसके प्रयोग से जहाँ विचित्रता होती है वह परमोत्कृष्ट पर्यायवक्रता होती है।[55] इस प्रकार यह पर्याय वक्रता छः प्रकार की होती है।

एषः समरकेतुर्गुजै समधिकं समं चात्मबन्धुवर्गे प्रधानपुरुषमपश्यता मया तवैव **सहचरः** परिकल्पितः। – पृ. 102

---

54. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ. 145

55. अभिधेयान्ततमस्तस्यतिशयपोषकः। रम्यच्छायान्तरस्पर्शात्तदलंकर्तुमीश्वरः।।
स्वयं विशेषणेनापि स्वच्छायोत्कर्षपेशलः। असंभाव्यार्थपात्रत्वगर्भं यश्चाभिधीयते।।
अलंकारोपसंस्कारमनोहारिनिबन्धनः। पर्यायस्तेन वैचित्र्य परा पर्यायवक्रता।। व. जी., 2/10, 11,12

सम्राट् मेघवाहन समरकेतु के गुणों में अनुरक्त होकर उसे हरिवाहन का परम विश्वसनीय सहचर बना देते है। यहाँ मित्र के पर्यायवाची 'सहचर' का प्रयोग किया गया है। सहचर का अर्थ है – साथ रहने व साथ चलने वाला। महाकवि धनपाल ने यहाँ सहचर पद का प्रयोग अतिशय अन्तरंगता को प्रदर्शित करवाने के लिए किया है। मनोगत भावों, विशेष कार्यो तथा प्रेमादि जैसे गोपनीय पर चर्चा किसी अत्यन्त अन्तरङ्ग मित्र से ही की जा सकती है। इसी अन्तरङ्गता तथा अपनत्व के व्यञ्जनार्थ ही यहाँ 'सहचर' का प्रयोग किया गया है। मित्र, साथी, सुहृत् आदि पर्यायों के होने पर यह वैचित्र्य उत्पन्न नहीं होता। अतः यह अभिधेय का अन्तरङ्ग पर्याय है।

शरत्समये समन्ततः प्रचलितेषु विषमजलनिधिमध्यवासिनोऽपि **कंसद्विष** इव द्वीपावनीपालनिवहस्य निद्राक्षयमगच्छत। – पृ. 16

यहाँ महाकवि धनपाल ने विष्णु के पर्याय 'कंसद्विष' का चमत्कारी प्रयोग किया है। भगवान विष्णु ने दुष्ट कंस के नाश के लिए कृष्ण रूप में अवतार लिया था। श्री कृष्ण ने कंस का वध कर प्रजा को उसके अत्याचार से मुक्त करवाया था। कंसद्विष से मात्र विष्णु का ही बोध नहीं होता, अपितु, उसमें निहित अपार शक्ति-पुंज का भी ज्ञान होता है।

कदाचि**द्देव्या** सार्धमारब्धस्पर्धः स्वपरिगृहीतानां गृहोद्यानवीरुधाम कालकुसमुमोद्गतिकारिणस्तांस्तान्दोहदयोगानदात् । पृ. 17

प्रकृत उदाहरण में मेघवाहन और मदिरावती की रति क्रीड़ा का वर्णन किया गया है। यहाँ महारानी मदिरावती के लिए प्रयुक्त 'देवी' पर्याय वैचित्र्य को उत्पन्न कर रहा है। देवी शब्द अभिधेय मदिरावती की अन्य रानियों से उत्कृष्टता का बोध करवा रहा है। यहाँ पर साम्राज्ञी कहने से वह तुलना रूप वैचित्र्य उत्पन्न नहीं होता। अतः 'देवी' वाच्यार्थ के अतिशय का पोषक पर्याय है।

यस्य प्रलयकालबिभ्रमेष्वाजिमूर्धसु संजहार विश्वानि शात्रवाणि **महाभैरवः** कृपाणः। पृ. 14

यहाँ मेघवाहन की वीरता का वर्णन किया गया है। मेघवाहन की खड्ग ने युद्धों में उसी प्रकार शत्रुओं को नष्ट किया, जिस प्रकार प्रलय के समय शिवजी विश्व

का नाश करते हैं। यहाँ भगवान् शिव के पर्याय 'महाभैरव' का प्रयोग वाच्यार्थ को अत्यधिक पुष्ट कर रहा है।

अङ्गीकृतश्चायं नायकः। किंतु तिष्ठतु तावद्यावदहमिहस्था। स्वस्थानमुपगता तु **काञ्ची**मध्यमागतं ग्रहीष्याम्येनम्। पृ. 288

यह पर्याय वक्रता का अतिसुन्दर उदाहरण है। समरविकार से पीड़ित मलयसुन्दरी समरकेतु के प्रणय निवेदन को स्वीकार करना चाहती है परन्तु लज्जावश वह कुछ नहीं कह पाती। उसी समय तपनवेग आकर उसे नृत्यावसर पर काञ्ची से गिरे लाल माणिक्य को ग्रहण करने के लिए कहता है। तब अवसर प्राप्त कर मलयसुन्दरी कहती है कि यह नायक स्वीकृत कर लिया गया है। अपने स्थान काञ्ची के मध्य पहुँचने पर इसे ग्रहण करूँगी।

यहाँ 'काञ्ची' पयार्य का काञ्ची नगरी और करघनी के अर्थ में श्लिष्ट प्रयोग वाच्यार्थ को रमणीय चमत्कार से चमत्कृत कर रहा है। यहाँ पर तपनवेग के लिए काञ्ची का अर्थ करघनी है तथा समरकेतु के लिए काञ्ची नगरी है।

शेषे सेवाविशेषं न जानन्ति द्विजिह्वतः।
यान्तो हीनकुलाः किं ते न लज्जन्ते मनीषिणाम्।।[56]

प्रकृत पद्य में महाकवि धनपाल दुर्जनों की निन्दा करते हुए कहते हैं - जो दुर्जन सज्जनों की विशिष्ट सेवा विधि को नहीं जानते, वे नीचकुल वाले क्या विद्वानों के मध्य लज्जित नहीं होते अथवा दो जीभों को धारण करने वाले जो सर्प, शेषनाग की विशिष्ट-सेवाविधि को नहीं जानते, वे मनीषियों के मध्य क्या लज्जित नहीं होते।

उक्त श्लोक में 'द्विजिह्वतः' का अर्थ सर्प और दुर्जन से है। द्विजिह्वता अर्थात् दो जीभ वाले। जो सामने प्रशंसा करे तथा परोक्ष में निन्दा करे वह दो जीभ वाला अर्थात् दुर्जन कहलाता है। यहाँ श्लिष्ट पर्याय अपने वैचित्र्य के स्पर्श से वाच्यार्थ को अलंकृत कर रहा है।

---

56. ति. म., भूमिका पद्य 10

उपचारवक्रता : कुन्तक के अनुसार जहाँ किसी अतिशयपूर्ण व्यापार के भाव को प्रतिपादित करने के लिए अत्यधिक व्यवधानवाली वर्ण्यमान वस्तु में दूसरे पदार्थ से किञ्चिन्मात्र रूप में भी विद्यमान साधारण धर्म का आरोप किया जाता है, वहाँ उपचारवक्रता होती है।[57] **उपचरणमुपचारः** अर्थात् उपचरण ही उपचार है। उप अर्थात् गौण, चरण अर्थात् व्यवहार। यह उपचरण जहाँ प्रधान होता है, वहाँ उपचारवक्रता होती है। इसके मूल में होने के कारण रूपकादि अलङ्कार चमत्कार युक्त हो जाते हैं।[58]

उपचार की परिभाषा करते हुए साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कहते हैं – अत्यन्त भिन्न पदार्थों में, अत्यधिक सादृश्य के कारण उत्पन्न होने वाली अभेद की प्रतीति ही उपचार कहलाती है।[59] कुन्तक ने उपचार वक्रता के लक्षण में दूरान्तर पद का प्रयोग किया है। दूरान्तर से तात्पर्य देशकाल के अन्तर से नहीं, वरन् मूल स्वभाव के अन्तर से है। जैसे मूर्तता व अमूर्तता, द्रवत्व व धनत्व तथा चेतनता व अचेतनता। ये परस्पर विरोधी धर्म वाले पदार्थ हैं। जब इन परस्पर विरोधी स्वभाव वाले पदार्थों में सादृश्य का कथन कर चमत्कार की सृष्टि की जाती है, वहाँ उपचारवक्रता होती है। प्रत्येक साम्य या सादृश्य उपचार वक्रता नहीं कहलाती, जिस सादृश्यता में आह्लाद व चमत्कार उत्पन्न करने की क्षमता हो वही उपचार वक्रता कहलाने के योग्य होती है। तिलकमञ्जरी में उपचार वक्रता के चमत्कार से युक्त अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

गन्धर्वक के वापस न आने पर हरिवाहन की तिलकमञ्जरी से मिलने की आशा दिन-प्रतिदिन क्षीण होने लगती है और वह विरहानल में तपने लगता है। महाकवि धनपाल ने वर्षा ऋतु के वर्णन में हरिवाहन की अमूर्त विरहाग्नि को मूर्त प्रकृति के द्वारा अभिव्यञ्जित किया है। यह उपचार वक्रता का अति सुन्दर उदाहरण है –

---

57. यत्र दूरान्तरेऽन्यस्मात्सामान्यमुपचर्यते।
लेशेनापि भवत्काञ्चिद्वक्तुमुद्रिक्तवृत्तिताम्।। व. जी., 2/13
58. यन्मूला सरसोल्लेखा रूपकादिरङ्कृतिः। वही, 2/14
59. उपचारो हि नामत्यन्तं विशकलितयोः पदार्थयोः सादृश्यातिशयमहिम्ना भेदप्रतीतिस्थगनमात्रम्। सा. द., पृ. 37

प्रथमजलधरासारशिशिरास्तदङ्गतापमिव निर्वापयितुं निर्वातुमारभन्त संततामोदमकरन्दमांसला: कदम्बमरुत:। मानसस्मरणसञ्जातरणरण–कास्तदनुरागमाख्यातुमिव खेचरेन्द्रदुहितुरुत्तरां दिशमभिप्रतस्थिरे राजहंसा:। घनधाराभिवृष्टमूर्तयस्तदार्तिदर्शनदु:खिता। इव दूरविनतै: पल्लवेक्षणैरम्बुकणिका–श्रुविसरमजस्रमसृजन्नुपवद्रुमा:। प्रकृतिकर्कशास्तदङ्गस्पर्शयोग्यानिव कुर्तुमात्मन: करानन्त: सलिलेषु जलमुचां कुक्षिषु निचिक्षेप चण्डभानु:। तस्मिन्नसकृदुत्सृष्ट–वाणविसरं निवारचितुमिव मकरकेतुमाबद्धकुसुमाञ्जलिपुटान्यजायन्त केतकीकाननानि। पृ. 179–80

प्रथम वर्षा के जल से शीतल, चारों और फैली हुई सुगन्ध व पुष्परस से युक्त सुगन्धित पवन हरिवाहन के शरीरताप को शान्त करने के लिए बहने लगी। मानस नामक सरोवर जाने के उत्सुक राजहंस मानो हरिवाहन के अनुराग को तिलकमञ्जरी से कहने के लिए उत्तर दिशा की ओर चले गये। निरन्तर जलधारा से अभिषिक्त शरीर वाले उपवन के वृक्ष हरिवाहन की कामव्यथा से दु:खी हुए से, दूर तक अवनत पल्लव रूपी नेत्रों से अश्रुओं को निरन्तर छोड़ रहे थे। सूर्य ने स्वभाव से कठोर अपनी किरणों को मानो उसके स्पर्श योग्य बनाने के लिए मेघों के जल को अपने उदर में निवेशित कर लिया। केतकी पुष्पवनों ने कामदेव को हरिवाहन पर अपने कामबाणों को छोड़ने से रोकने की प्रार्थना करने के लिए मानो अपने कर पुटों को पुष्पों से पूर्ण अञ्जलि बना लिया।

जब कवि सूक्ष्म भावों की अनुभूति से परिपूर्ण हो जाता है तो वह किसी न किसी प्रकार से, उन्हें मूर्त रूप देकर सहृदय को उन भावों के द्वारा रसास्वादन करवाता है। यहाँ महाकवि धनपाल ने वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए उपचार वक्रता से प्रकृति का मानवीकरण कर हरिवाहन के विरहताप का मनोहारी चित्रण किया है।

प्रस्तुत उदाहरण में महाकवि धनपाल ने अचेतन पृथ्वी का मानवीकरण कर उपचार वक्रता के द्वारा अद्भुत वैचित्र्य की सृष्टि की है –

नाथ ! 'कस्यचित् काचिदस्ति गति:, अहमेव निर्गतिका, कुरु यत् साम्प्रतं मदुचितम्' इति सखेदया सन्तानार्थमभ्यर्थितस्येव भुजलग्नया भुवा। – पृ. 21

हे स्वामि, अन्य सभी का कोई न कोई निर्वहण उपाय है, केवल मैं ही

निर्वहणोपायशून्य हूँ, अब जो उपाय मेरे योग्य हो वह करें। इस प्रकार मेरी बाहु पर आश्रित पृथ्वी खेद सहित सन्तानोत्पत्ति की प्रार्थना करती है (जिससे वह चिरकाल तक उसके वन्दनीय वंश के आश्रय में रह सके।)

यहाँ पर पृथ्वी मेघवाहन से सन्तानोत्पत्ति की प्रार्थना कर रही है। दुःखी होना तथा प्रार्थना करना चेतन व्यक्ति के धर्म होते हैं। यहाँ अचेतन पृथ्वी पर चेतनता का आरोप कर चमत्कार उत्पन्न किया गया है।

धनपाल ने अयोध्या नगरी का नारी रूप में मानवीकरण कर उपचार वक्रता को रमणीयता से चित्रित किया है –

विरचितालकेव मखानलधूमकोटिभिः स्पष्टिताञ्जनतिलकबिन्दुरिव बालोद्यानैः आविष्कृतविलाससहासेकं दन्तवलभीभिः आगृहितदर्पणेव सरोभिः ....। पृ. 11

यज्ञाग्नि से निकली धूमधाराएँ अयोध्या रूपी नारी के कुटिलकेश थे, बालोद्यान उसके मस्तक के तिलक थे, हस्तिदन्तमयवलभियाँ उसके विलासमय हास थे तथा सरोवर उसके दर्पण थे।

भोजराज के शत्रुओं की राजधानियों के वर्णन में उपचार वक्रता से उत्पन्न रूपक अलङ्कार का चमत्कार मनोहारी बन गया है –

प्रासादेषु त्रुटितशिखरश्वभ्रलब्धप्रवेशैः प्रातः
प्रातस्तुहिनसलिलैः शार्वरैः स्नापितानि।

धन्याः शून्ये यदरिनगरे स्थाणुलिङ्गानि शाखा
हस्तस्रस्तैः कुसुमनिकरैः पादपाः पूजयन्ति।।[60]

भोजराज के शत्रुओं की निर्जन राजधानियों में, टूटे हुए शिखरों वाले मन्दिरों के छिद्रों में प्रवेश का अवसर पाकर, रात्रि के द्वारा हिम सलिल से अभिषिक्त शिवलिङ्गों की धन्यवाद के पात्र वृक्ष शाखा रूपी हाथों से गिरे हुए पुष्प गुच्छों से पूजा करते हैं।

---

60. ति. म., भूमिका, पद्य 47

यहाँ अमूर्त रात्रि पर मूर्तता का तथा अचेतन वृक्षों पर चेतनता का आरोप चमत्कार उत्पन्न कर रहा है। शाखा और हाथों में अभेद का वर्णन होने पर यहाँ रूपक अलङ्कार है। यहाँ उपचार वक्रता के मूल में होने से रूपक अलङ्कार रमणीय और चमत्कार युक्त हो गया है।

पदपरार्धवक्रता

पद के उत्तरार्ध के वैचित्र्य पर आश्रित वक्रता पदपरार्धवक्रता कहलाती है। पद के परार्ध से अभिप्राय सुप् तथा तिङ् प्रत्ययों से हैं। इसलिए पदपरार्धवक्रता को प्रत्यय वक्रता भी कहा जाता है। आचार्य कुन्तक ने पदपरार्धवक्रता के आठ भेद किये हैं

1.कालवैचित्र्य-वक्रता 2. कारक वक्रता
3. सङ्ख्या (वचन) वक्रता 4. पुरुष वक्रता
5. उपग्रह वक्रता 6. प्रत्यय वक्रता
7. उपसर्ग वक्रता 8. निपात वक्रता

कालवैचित्र्यवक्रता : जहाँ औचित्य का अत्यन्त अन्तरङ्ग होने के कारण समय रमणीयता को प्राप्त कर लेता है, वहां कालवैचित्र्यवक्रता होती है।[61] जब कवि अपने काव्य-कौशल से काल अथवा समय का चमत्कारी प्रयोग करता है, वहाँ कालवैचित्र्यवक्रता होती है। इसका तात्पर्य यह है कि कवि की वह प्रतिभा जो अतीत और भविष्य को, वर्तमान में हो रहे क्रिया-व्यापारों की भांति स्पष्टतः सम्मुख रख दे, कालवैचित्र्यवक्रता को जन्म देती है। कवि अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा वर्णन में ऐसी रमणीयता उत्पन्न कर सकता है कि हजारों वर्ष पूर्व हुई घटना या भविष्य में होने जा रही घटनाएं आंखों के सम्मुख होती हुई प्रतीत हों।[62]

महाकवि धनपाल ने तिलकमञ्जरी के वर्णनों को चमत्कारी व प्रभावशाली बनाने के लिए कालवैचित्र्यवक्रता का बहुधा प्रयोग किया है

61. औचित्यान्तरतम्येन समयो रमणीयताम्।
याति यत्र भवत्येषा कालवैचित्र्यवक्रता।। व. जी., 2/26

62. वक्रोक्ति सिद्धान्त और हिन्दी कविता, पृ. 213

उत्पतन्त्यजवद्व्योम्नि केचित्प्राप्तपदत्रयाः।
विशन्त्यन्ये प्रबन्धेऽपि लब्धे बलिरिव क्षितिम्॥[63]

प्रस्तुत श्लोक में धनपाल ने क्षुद्र कवियों की उच्छृङ्खलता का उपहास करते हुए, गंभीर कवियों की अतिनम्रता की प्रशंसा की है – कुछ कवि अल्पश्रुत होने पर भी, स्वयं को महाकवि मानकर विष्णु के समान आकाश में उड़ते हैं। अन्य कवि सम्पूर्ण शास्त्र में निपुणता के कारण प्रतिष्ठित होने पर भी बलि के समान अतिनम्र रहते हैं।

यहाँ विष्णु तथा बलि के वर्णन से सहृदय को हजारों वर्ष पूर्व हुई वह घटना, अपने सामने होते हुए प्रतीत होती है, जिसमें वामनावतार में विष्णु ने तीन पदों में पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग को मापकर बलि को पाताल में भेज दिया। इस प्रकार भूत व वर्तमान के सम्बन्ध से वर्ण्य विषय में अपूर्व चमत्कार का समावेश हो गया है।

दृष्ट्वा वैरस्य वैरस्यमुज्झितास्त्रो रिपुव्रजः।
यस्मिन्विश्वस्य विश्वस्य कुलस्य कुशलं व्यधात्॥[64]

इस पद्य में सम्राट मेघवाहन के शौर्य का वर्णन किया गया है - (पूर्ववर्ती शत्रुओं के नाश रूप) शत्रुता के दुष्परिणाम को देखकर और जिसमें (मेघवाहन में) विश्वास करके (अपने व कुल के भविष्य की रक्षा के लिए मेघवाहन के) शत्रुसमुह ने अपने समग्र कुल के कल्याण को निश्चित कर लिया।

यहाँ कवि ने अपने वर्णन-कौशल से भूत और भविष्य का वर्तमान से सम्बन्ध स्थापित कर अद्भुत वैचित्र्य को उत्पन्न कर दिया है, जिससे सम्राट् मेघवाहन की वीरता पूर्णतः व्यञ्जित हो रही है।

अनेनैव निखिलजनमानसावासदुर्ललितस्य मकरकेतोरिवास्य त्वत्प्रसादवगतेन पुनरुज्जीवनेन रतिरिव कृतार्थाहमुपजाता। पृ. 347

आपसे समरकेतु की कुशलता के विषय में जानकर मुझमें उसी प्रकार से नव जीवन का संचार हो गया है, जिस प्रकार रतिकृत प्रार्थना से द्रवित होकर शिवजी

63. ति. म., पद्य 13

64. वही, पृ. 16

के द्वारा कामदेव को पुनर्जीवन मिलने से रति पुनः जीवनोत्साह से युक्त हो गई थी।

हरिवाहन मलयसुन्दरी को समरकेतु की कुशलता के विषय में आश्वस्त करता है, तो मलयसुन्दरी अत्यधिक प्रसन्न होकर उपर्युक्त वाक्य कहती है। यहां शिवजी को नेत्राग्नि से भस्म कामदेव को, रति की प्रार्थना से पुनर्जीवन देने का वर्णन किया गया है। हजारों वर्ष पूर्व घटित इस घटना ने औचित्य का अत्यन्त अन्तरङ्ग होने के कारण रमणीयता को प्राप्त कर लिया है अतः कालवैचित्र्यवक्रता है।

कारकवक्रता : जहाँ प्रधान की गौणता का प्रतिपादन करने से एवं गौण में मुख्यता का आरोप करने से किसी (अपूर्व) भङ्गिमा के द्वारा कथन की रमणीयता को पुष्ट करने के लिए कारक सामान्य का प्रधान रूप से प्रयोग किया जाता है, इस प्रकार के कारकों के परिवर्तन से युक्त उसे कारकवक्रता कहते हैं।[65] कारकों के इस परिवर्तन से काव्य में अपूर्व रमणीयता की सृष्टि होती है। इस प्रकार चेतन में संभव होने वाली स्वतन्त्रता को अचेतन में भी प्रतिपादित करने से अथवा गौण करणादि से कर्तृता का आरोप करने से जहां कारकों को परिवर्तन चमत्कार को उत्पन्न करने वाला होता है, वहां कारक-वक्रता होती है।[66]

तिलकमञ्जरी में कारक-वक्रता के अनेक रमणीय उदाहरण प्राप्त होते हैं -

केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।[67]

धनुषारोपित चेष्टायुक्त बाण भी (अवलोकन मात्र से) जल के पक्षियों को हर्षादि से रहित कर देता है। मृग्या व्याध का कार्य है बाण स्वयं कुछ कुछ नहीं कर सकता। बाण व्याध की मृग्या साधन है। यहां कारण कारक के कर्त्ता रूप में विपर्यास से रमणीयता आ गई है।

65. यत्र कारकसामान्यं प्राधान्येन निबध्यते।
तत्त्वाध्यारोपणान्मुख्यगुणभावाभिधानतः।।
परिपोषयितुं काञ्चिद्भङ्गीभणिरम्यताम्।
कारकाणां विपर्यासः सोक्ता कारकवक्रता। व. जी., 2/27, 28

66. तदेवमचेतनस्यापि चेतनसंभविस्वातन्त्र्यसमर्पणादमुख्यस्य करणादेर्वा कर्तृत्वाध्यारोपणाद्यत्र कारकविपर्यासश्चमत्कारकारी संपद्यते। वही, पृ. 258

67. ति. म., पद्य 26

काव्यं तदपि किं वाच्यवाञ्चि न करोति यत्।
श्रुतमात्रममित्राणां वक्त्राणि च शिरांसि च।।[68]

जो काव्य श्रवणमात्र से ही प्रतिस्पर्धियों के मुखों व सिरों को नहीं झुका देता, वह भी क्या काव्य है? कवि अपने रचना कौशल से ऐसे उत्तम काव्य की रचना करता है, जिससे उसके आलोचक वाक्रहित हो जाते है और उनके मस्तक झुक जाते हैं। काव्य कवि का कर्म है। यहां साधन अर्थात् कारण रूप काव्य का कर्त्ता रूप में प्रयोग विचित्रता का आधान कर रहा है।

यस्य फेनवत्स्फुटप्रसृतयशोट्टहासभरितकुक्षिरङ्गीकृत गजेन्द्रकृतिभीषणः प्रकटितानेकनरकपालः प्रलयकालविभ्रमेष्वाजिमूर्धसु संजाह विश्वानि शास्त्रवाणि महाभैरवः कृपाणः। पृ. 14

जिस राजा मेघवाहन की अत्यधिक भयङ्कर खड्ग–प्रलयकाल के समान युद्धारम्भ में सभी शत्रुओं का विनाश करती थी। यहां करण कारक खड्ग का कर्त्ता रूप में वर्णन किया गया है। इससे अपूर्व चमत्कार की निष्पत्ति हो रही है तथा भयानक रस की सुष्ठु अभिव्यञ्जना हो रही है।

सङ्ख्या (वचन) - वक्रता : जिस वक्रता में कविजन काव्य में वैचित्र्य उत्पन्न करने के लिए परतन्त्र होकर वचन का विपर्यास करते हैं, वह संख्या (वचन) वक्रता कहलाती है।[69] तात्पर्य यह है कि जहाँ विचित्रता के प्रतिपादन के लिए एकवचन या द्विवचन के स्थान पर बहुवचन अथवा बहुवचनादि के स्थान पर एकवचनादि का प्रयोग हो,अथवा जहाँ भिन्न-भिन्न वचनों का समान अधिकरण से युक्त प्रयोग किया जाता है वहाँ सङ्ख्या वक्रता होती है।[70]

प्रबोधिता **वयम्**। अप्रतिविधेया वैधेयतेयम्, **यदस्माभिः** सर्वसेव्यगुणसंपदुपेतं भवन्तमदहाय ... देवता सेवितुमुपक्रान्ता। जन्मनः प्रभृत्यकृतपरसेवानामत्र लवमात्रोऽपि **नास्माकं** दोषः। पृ. 50

---

68. ति.म., पद्य 12
69. कुर्वन्ति काव्यवैचित्र्यविवक्षापरतन्त्रिताः।
 यत्र संख्याविपर्यासं तां संख्यावक्रतां विदुः।। व. जी., 2/29
70. यदेकवचने द्विवचने प्रयोक्तव्ये वैचित्र्यार्थं वचनान्तरं यत्र प्रयुज्यते, भिन्नवचनयोर्वा यत्र समानाधिकरण्यं विधीयते। वही 2/29 की वृत्ति, पृ. 260

वेताल रूपधारी यक्ष मेघवाहन को कहता है कि देवी के सर्वदा समीप रहने वाले मुझको प्रसन्न करने पर ही, मेरे माध्यम से देवी प्रसन्न होकर आप पर कृपा करेंगी। इस पर मेघवाहन कुछ उपहासपूर्वक कहते हैं - आपने हमें सावधान कर दिया। यह हमारा अविवेक ही है, जो हम सर्वगुणसम्पदा से युक्त आपको छोड़कर देवी की उपासना कर रहे हैं। परन्तु इसमें हमारा लेशमात्र भी दोष नहीं है क्योंकि हमने जन्म से ही किसी अन्य की आराधना नहीं की है।

यहाँ 'अहम्' के स्थान पर 'वयम्', 'मया' के स्थान पर 'अस्माभिः', तथा 'मम' के स्थान पर 'अस्माकम्' का प्रयोग किया गया है, जिससे वर्णन में विचित्रता आ गई है। एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग होने से यहाँ संख्यावक्रता है।

नरेन्द्र, न **वयं** पक्षिणः, न पशवः, न मनुष्याः। कथं फलानि मूलान्यन्नं चाहरामः। क्षपाचराः खलु **वयम्**। पृ. 50-51

सम्राट् मेघवाहन वेताल को फल, मोदकादि ग्रहण करने के लिए आमंत्रित करते हैं। इस वेताल कहता है - हे राजन्! न हम पक्षी है, न पशु और न ही मनुष्य। फल, मूल और अन्न को कैसे खायेंगे। हम तो राक्षस हैं।

धनपान ने यहाँ यक्ष के लिए एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग किया है, जिससे सामाजिक को किञ्चिद् भय की प्रतीति होती है। अतः यहाँ संख्या-वक्रता का चारुत्व स्पष्ट है।

पुरुष-वक्रता : जहाँ वैचित्र्य की सृष्टि करने के लिए अपने स्वरूप और दूसरे के स्वरूप को परिवर्तन के साथ निबद्ध किया जाता है। वहाँ पुरुषवक्रता होती है।[71] इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ अन्य, मध्यम अथवा उत्तम पुरुष के स्थान पर विचित्रता की निष्पत्ति के लिए अन्य पुरुष अर्थात् प्रथम पुरुष का प्रयोग किया जाता है और इसलिए किसी पुरुष के ले आने व सुरक्षित रखने के कारण अस्मदादि तथा केवल प्रातिपदिक का विरोध समाप्त हो जाता है।[72]

---

71. प्रत्यक्तापरभावश्च विपर्यासेन योज्यते।
यत्र विच्छित्तये सैषा ज्ञेया पुरुषवक्रता।। व. जी., 2/30

72. यदन्यस्मिन्नुत्तमे मध्यमे वा पुरुषे प्रयोक्तव्ये वैचित्र्यायान्यः कदाचित् प्रथमः प्रयुज्यते। तस्माच्च पुरुषैकयोगक्षेमत्वादस्मदादेः प्रातिपदिकमात्रस्य च विपर्यासः पर्यवस्यति। - वही, 2/30 की वृत्ति

नरेन्द्र! सर्वदा शरीरसंनिहितैः प्रधानपुरुषैरिव प्रस्तावावेदिभिरपृष्टैरपि निवेदितोऽसि चक्रवर्तिलक्षणैः, स खलु **भवान्** मध्यमलोकपालो राजा मेघवाहन। - पृ. 39

मेघवाहन को देखकर दिव्य वैमानिक कहता है - "हे राजन्! चक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त वह मध्यमलोकपाल राजा मेघवाहन आप ही लगते हो।" यहाँ मेघवाहन के लिए 'त्वम्' अर्थात् मध्यम पुरुष के स्थान पर अन्य पुरुष वाचक 'स', 'भवान्' का प्रयोग किया गया है, जिससे मेघवाहन में विशिष्टता का बोध होता है तथा वाक्यार्थ में चारुत्व का आधान होता है। अतः यहाँ पुरुषवक्रता है।

स्नपनवस्त्रमाल्यानुलेपनालङ्कारादिभिः सततमेनां देवतामुपचरसि। यस्तु प्रणयपात्रमस्याः सर्वदा सविधवर्ती कार्यकर्ता **जनोऽयं** सर्वपरिजनप्रागहस्तमहा रमात्रदानमात्रयापि नामन्त्रसे। पृ. 49

वेताल राजा से कह रहा है - तुम स्नान, वस्त्र, माला, लेपन, अलङ्कारों आदि से इस देवी की पूजा कर रहे हो, परन्तु इस देवी के सदा पास रहने वाले तथा समस्त परिजनों में मुख्य इस जन को आहारादि ग्रहण करने के लिए भी आमंत्रित नहीं करते।

यहाँ 'अस्मद्' के स्थान प्रथम पुरुष वाचक के प्रयोग से वेताल के कथन में अर्थ वैचित्र्य का समावेश हो गया है। 'जनोऽयम्' कहने से यह व्यंग्य निकलता है कि राजा मेघवाहन ऐसे व्यक्ति (वेताल) के प्रति उपेक्षा का भाव रखता है, जो उसके कार्य-सिद्धि में सर्वथा सहायक सिद्ध हो सकता है।

न मे प्रयोजनं दिव्यजनोचितैरुपभोगैः। अथ येनकेनचित्प्रकारेणानुग्राह्योऽ**यं जनो** ग्राहयितव्यश्च कमप्ययिप्रेतमर्थम्। पृ. 58

देवी लक्ष्मी के वर मांगने के लिए कहने पर राजा मेघवाहन कहता है - दिव्यजनों के योग्य सुखोपभोगों से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। अब यदि किसी भी प्रकार से यह जन आपके अनुग्रह के योग्य है, तो मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान कीजिये।

'अयं जनः' कहने से मेघवाहन का स्वयं के प्रति तुच्छता का भाव प्रकट होता हैं। परन्तु जो व्यक्ति देवी लक्ष्मी के अनुग्रह का पात्र है, वह तुच्छ कैसे हो सकता है। अतः 'अयं जनः' यहाँ पर राजा मेघवाहन की विशिष्टता को व्यञ्जित

कर रहा है। यहाँ उत्तम पुरुष वाचक अस्मद् के स्थान पर 'अयं जनः' का प्रयोग हुआ है अतः पुरुष-वक्रता है।

वस्तुवक्रता

आचार्य कुन्तक वस्तुवक्रता का निरूपण करते हुए कहते हैं - "केवल अपने सर्वोत्कृष्ट स्वभाव की रमणीयता से युक्त रूप में, वस्तु का वक्र शब्द के द्वारा ही प्रतिपाद्य रूप में वर्णन उस वस्तु की वक्रता होती है।"[73]

कुन्तक वस्तु-वक्रता के भेदों का वर्णन करते हुए कहते है कि कवि की स्वाभाविक एवं व्युत्पत्तिजन्य निपुणता से सुशोभित होने वाली एवं अपूर्व वर्णन के कारण लोकोत्तर विषय का निरूपण करने वाली कवि की सृष्टि वर्ण्यमान वस्तु की दूसरी वक्रता होती है।[74] इस प्रकार कुन्तक ने वस्तु वक्रता के दो प्रमुख भेद किये हैं - सहजा और आहार्य।[75]

सहजा वस्तु वक्रता : सहज का अर्थ है - स्वाभाविक। सहजावक्रता कवि की सहज प्रतिभा जन्य होती है। कवि अपनी कवित्व शक्ति से जब वस्तु के सहज सौन्दर्य का वर्णन कर सहृदय को आह्लादित करता है, वहाँ सहजा वस्तु-वक्रता होती है। कुन्तक के अनुसार जो वस्तुएँ प्रकृत्या रमणीय होती हैं उनका सजीव चित्रण सहृदय को अत्यधिक आनन्द प्रदान करता है।[76] काव्य में अनेक ऐसे विषय अथवा वस्तुएं होती हैं, जो अपने सहज रूप में ही आनन्द का संचार करती हैं। नारी अङ्गों का सौन्दर्य, ऋतु संधि और प्रकृति की मनोरम छटा सहसा ही सहृदय को मुग्ध कर देती हैं।

धनपाल ने तिलकमञ्जरी में यथावसर नारी, ऋतु, प्रकृति आदि के सहज सौन्दर्य का सफलतापूर्वक उद्भावन किया है। वे नारी, प्रकृति आदि के सहज सौन्दर्य का अतिसुन्दर वर्णन करते है जिससे सहृदय उस सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण कर लेता है -

---

73. उदारस्वपरिस्पन्दसुन्दरत्वेन वर्णनम्।
वस्तुनो वक्रशब्दैकगोचरत्वेन वक्रता।। व. जी., 3/1
74. अपरा सहजाहार्यकविकौशलशालिनी।
निर्मितिर्नुतनोल्लेखलोकातिक्रान्तगोचरा।। व.जी, 3/2
75. सैषा सहजाहार्यभेदभिन्ना वर्णनीयस्य वस्तुनो द्विप्रकारा वक्रता। वही, 3/2 की वृत्ति
76. वही, 3/1 की वृत्ति

अनुपरतकौतुकश्च मुहुः केशपाशे, मुहुर्मुखशशिनि, मुहुरधरपत्रे, मुहुरक्षिपात्रयोः मुहुः, कण्ठकन्दले, मुहुः स्तनमण्डले, मुहुर्मध्यभागे, मुहुर्नाभिचक्राभोगे, मुहुर्जघनभारे, मुहुरूरुस्तम्भयोः, मुहुश्चरणवारिरुहयोः, कृतारोहावरोहया दृष्ट्या तां व्यभावयत्। पृ. 162

यहाँ तिलकमञ्जरी के अङ्गो के सहज सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। हरिवाहन पुनः पुनः तिलकमञ्जरी के केशपाशों को, पुनः उसके चन्द्रमुख को, पुनः अधर पल्लव को, पुनः सुन्दर नेत्रों को, पुनः कण्ठनाल को, पुनः कटिप्रदेश को, पुनः नाभिमण्डल के विस्तार को, पुनः उरुस्तम्भों को, पुनः चरणकमलों को देखता है। तिलकमञ्जरी का अङ्गसौष्ठव ऐसा है कि हरिवाहन के नेत्र उसके किसी भी अङ्ग पर स्थिर नहीं हो रहे। वे तत्क्षण ही अन्य अङ्ग सौन्दर्य के दर्शनार्थ नीचे की ओर फिसल जाते है मानो यह निर्णय न कर पा रहे हों, कि यह अङ्ग अधिक सुन्दर है अथवा वह।

यहाँ धनपाल ने तिलकमञ्जरी के सहज सुन्दर अङ्गों का रमणीय वर्णन किया है जो सहृदय हृदयावर्जक है। प्रतिभासम्पन्न कवि ही अपने पात्रों के सहज सौन्दर्य का ऐसा सजीव वर्णन कर सकता है जिससे सहृदय के नेत्रों के समक्ष उस पात्र का रेखाचित्र बन जाए। धनपाल ऐसे वर्णनों में पूर्णतः सफल कवि है। मदिरावती का अङ्गसौन्दर्य भी द्रष्टव्य है –

आढ्यश्रोणि दरिद्रमध्यसरणि स्रस्तांसमुच्चस्तनं
नीरान्ध्रालकमच्छगण्डफलकं छेकभ्रु मुग्धेक्षणम्।
शालीनस्मितमस्मिताञ्चितपदन्यासं विभर्ति स्म या
स्वादिष्टोक्तिनिषेकमेकविकसल्लावण्यपुण्यं वपुः॥[77]

मदिरावती का नितम्ब प्रदेश विस्तृत व कटिप्रदेश कृश था। उसके स्तन उन्नत व कन्धे झुके हुए थे। (मानो उन्नत स्तनों का भार वहन न कर पा रहे हों) उसके केश अविरल, निर्मल चौड़े गाल, भौंहे कुटिल व श्यामल तथा नेत्र रमणीय थे। उसका मन्द हास सलज्ज व पाद विक्षेप अभिमान से युक्त था। वह अतिमधुर उक्तियों से अभिषिक्त, अद्वितीय व उज्जवल सौन्दर्य से युक्त पुण्य शरीर को धारण करती थी।

77. ति. म., पृ. 23

धनपाल ने मदिरावती के सहज सौन्दर्य का ऐसा रमणीय और सजीव वर्णन किया है, जिससे सहृदय को उसके स्वाभाविक सौन्दर्य का बोध सहजता से हो जाता है।

धनपाल ने अनेक स्थलों पर प्राकृतिक सौन्दर्य का भी रमणीय वर्णन किया है। राजकुमार हरिवाहन अपने मित्रों के साथ भ्रमण करते हुए सरयू नदी के तट पर जाते हैं। वहाँ की प्राकृतिक शोभा को देखिए –

अविरलफलितजलजम्बूनिकुरुम्बमुद्गतस्तोककुसुमस्तबककेतकीस्तम्ब मुच्चोच्चरच्चीत्कारमुखराणां प्रेङ्खतामनवरतमुद्घाटकानां घूर्णमानैर्नभसि नभस्वदा-घट्टनजर्जरैर्जलतुषारजालकैर्जडीकृतनिदाघकर्कशार्ककरवितानमापानक-मृदङ्गरवजनित शृङ्गारैर्नगरीजनैर्विन शखण्डिभिश्च युगपदारबधताण्डवैर्मण्डित-लतामण्डपमदूरवहदगाधनीरं सरय्वास्तीरपरिसरमुपासरत्। पृ. 105–106

सरयू नदी तट जल सम्पर्क से फलने वाले अत्यन्त घने जामुनों से युक्त वृक्ष समूहों, खिलते हुए छोटे-छोटे पुष्पगुच्छों से युक्त केतकी लता समुहों से सुशोभित था, वहाँ पर फव्वार चल रहे थे, जो ग्रीष्मकालीन वायु को शीतल कर रहे थे। लतामण्डपों में सुरापान गोष्ठियां चल रही थी, जिनमें मृदङ्गजनित स्वरों से आनन्दित जनपदवासी व वन मयूरों का युगपत् आरम्भ किया गया नृत्य नदी तट के वातावरण को और अधिक मनोरम बना रहा था।

यहाँ सरयू नदी के किनारे के प्राकृतिक दृश्यों का रमणीय वर्णन किया गया है। नदी तट पर लगे हुए पेड़-पौधे तथा पुष्प युक्त लताओं से रमणीय उद्यानों में सामान्य जन ही नहीं, विशिष्टजन भी भ्रमण व मनोरंजन के लिए जाते हैं। आज भी लोग जीवन के नित्य क्लेशों व सामान्य दिनचर्या से ऊबकर सप्ताहान्त में मनोरंजन के लिए नदी किनारे पर विकसित उद्यानों आदि में जाते हैं।

धनपाल ने अदृष्टपार सरोवर का भी अतिसुन्दर चित्रण किया है –

महाभोगपरिसरमविरतास्फालिततरङ्गततिना तरलितबालपुष्करेण प्रबलसीकरासारसिक्तककुभा वनद्विरदयूथेनेव सद्यः जलादुत्तीर्णेन मरुता दरत एव सूच्यमानं निरन्तराभिस्तरुणकुन्तलीकुन्तलकलापकान्तिभिर्ध्वान्तमालाभिरिव रसातलोल्लासिताभिरुल्लसन्मयूरकेकारवमुखराभिः शिखरदेशविश्रान्तमन्तः सारसाभिरिभकलभकरावकृष्टिविघटमानविटपाभिश्चटुलवानरवाह्यमानलता–

रदोलाभिरम्भः पानानन्दनिद्रायमाणश्वापदसंकुलाभिरम्बुगर्भनिर्भरनिभृताभ्र-मण्डलीविभ्रमाभिर्वनराजिभिरन्वकारितया पाल्या परितः परिक्षिप्तम्... अदृष्टपाराभिधानं सरो दृष्टवान्। पृ. 202–203

अदृष्टपार सरोवर अत्यधिक विस्तृत प्रान्तभूमि वाला है। हवा के झोंको से इसमें निरन्तर तरङ्गे उठती रहती हैं, बालकमल लहलहाते रहते हैं, स्थूल जलकणों के निरन्तर फुहारों से दिशाओं का सिञ्चन होता रहता है। अदृष्टपार सरोवर चारों ओर से घने वृक्षों वाले वनों से घिरा हुआ है। यह नाचते हुए मोरों के केकारव से मुखरित है। वृक्षो के उर्ध्व भाग पर थके हुए सारस पक्षी बैठे हुए हैं। हस्तीशावकों ने अपनी सूण्डों से अनेक वृक्षों की शाखाओं को तोड़ दिया है, चंचल वानर लतारूपी झूलों को हिला रहे हैं। यह सरोवर जलपान से तृप्त होकर निंद्रा का अनुभव करने वाले, हिंसक पशुओं से व्याप्त है।

यहाँ अदृष्टपारसरोवर का अत्यन्त रमणीय वर्णन किया गया है। ऐसे प्राकृतिक सौन्दर्य और मनोहारी वातावरण में पशु और पक्षी भी आनन्दित व मस्त हैं, सामान्य जन का मनमयूर तो निश्चित ही नाच उठेगा।

आहार्य वस्तु-वक्रता : आहार्य का अर्थ है – शिक्षा एवं अभ्यास के द्वारा अर्जित काव्य कौशल। आहार्य कवि के काव्य कौशल से उत्पन्न वस्तु-वक्रता होती है। मम्मट भी लोक, शास्त्र काव्य आदि के पर्यालोचन से उत्पन्न निपुणता तथा काव्यज्ञ गुरु की शिक्षा के अनुसार अभ्यास को कवि के लिए अत्यावश्यक मानते हैं।[78] कुन्तक के अनुसार – ''कविजन जिन पदार्थो के स्वरूप का वर्णन प्रस्तुत करते हैं वे उनके द्वारा अविद्यमान रहते हुए उत्पन्न नहीं किये जाते, अपितु केवल सत्तामात्र से परिस्फुरण करने वाले इन पदार्थों में वे उस प्रकार के किसी अपूर्व उत्कर्ष की सृष्टि करते हैं, जिससे कि पदार्थ सहृदयों के हृदय को आकर्षित करने वाली, किसी रमणीयता से युक्त हो जाते हैं।''[79] तात्पर्य यह है कि जब कवि आकर्षण रहित अथवा किसी सामान्य पदार्थ को अपने काव्य कौशल से उस

78. शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्। काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।। का. प्र., 1/3

79. वर्ण्यमानस्वरूपाः पदार्थाः कविभिरभूताः सन्तः क्रियन्ते, केवलं सत्तामात्रेणपरिस्फुरतां चैषा तथा विधः कोऽप्यतिशयः पुनराधीयते, येन कामपि सहृदयहृदयहारिणीं रमणीयतामधिरोप्यते। व.जी., 3/2 की वृत्ति।

पदार्थ को लोकोत्तर शोभातिशयता से युक्त कर वर्णन करता है, जिससे वह सामान्य वस्तु की अपेक्षा अत्यधिक रमणीयता व अलौकिकता को प्राप्त कर लेती है, वहां आहार्य वस्तु वक्रता होती है।

धनपाल वस्तुओं के सहज सौन्दर्य का सजीव चित्रण करने में तो कुशल हैं ही, वे अपने काव्य कौशल से किसी भी पदार्थ को विशिष्ट व रमणीय बनाने में भी सिद्धहस्त हैं। तिलमञ्जरी के लिए धनपाल की काल्पनिक उपमाएँ द्रष्टव्य हैं

ग्रहकवलनाद्भ्रष्टा लक्ष्मीः किमृक्षपतेरियं,
मदनचकितापक्रान्ताऽब्धेरुतामृतदेवता।
गिरिशनयनोदर्चिर्दग्धान्मनोभवपादपाद्,
विदितमथवा जाता सुभ्रूरियं नवकन्दली।[80]

यह तिलकमञ्जरी राहुग्रह के ग्रसने से नीचे गिरी हुई चन्द्रमा की शोभा है, अथवा कामदेव से चकित होकर समुद्र से निकली अमृत की देवी है, अथवा यह सुभ्रू शिव के नेत्रों से उत्पन्न ज्वाला से भस्म कामदेवरूपी वृक्ष से उत्पन्न हुई नवकन्दली (नवाङ्कुर) है।

यह धनपाल का काव्य-कौशल ही है, जिससे उसने तिलकमञ्जरी के लिए ऐसे उपमानों का प्रयोग किया है जिससे उसके सौन्दर्य की रमणीय अभिव्यञ्जना हो रही है।

उद्यज्जाड्य इव प्रगेतनमरुत्संसर्गतश्चन्द्रमाः
पादानेष दिगनततल्पनलतः शङ्कोच्चयत्यायतान्।
अन्तर्विस्फुरितोरुतारकतिमिस्तोमं नभः पल्वला -
द्ध्वान्तानायमयं च धीवर इवानूरुः करैः कर्षति॥[81]

यहाँ प्रातः कालिक सूर्य व चन्द्रमा की सुषमा का वर्णन किया गया है। चन्द्रमा प्रातः कालिक पवन के संसर्ग से उत्पन्न शैत्य के कारण दिशाओं के अग्रभाग रूपी शय्यातल में विस्तृत अपने किरण रूपी चरणों को सिकोड़ रहा है और यह प्रत्यक्षवर्ती सूर्य का सारथी धीवर के समान आकाश रूपी सरोवर के

---

80. ति. म., पृ. 248
81. वही, पृ. 238

मध्य विचरण करने वाले तारा समूह रूपी मछलियों को अन्धकार रूपी जाल से अपने किरण रूपी हाथों से खींच रहा है।

यहाँ धनपाल ने प्रात:काल का अतिसुन्दर चित्रण किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा व रूपक अलङ्कारों के प्रयोग से प्रात: कालिक सूर्य व चन्द्रमा का वर्णन अत्यन्त रमणीय बन गया है।

वर्णनीय वस्तु का विषय-विभाजन

कुन्तक ने विषय की दृष्टि से भी वर्णनीय वस्तु का विभाजन किया है।

इनके अनुसार सरस स्वभाव के औचित्य से रमणीय चेतन एवं अचेतन पदार्थों का दो प्रकार का स्वरूप विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया है।[82] इनमें चेतन पदार्थ देवादि तथा सिंहादि के प्राधान्य एवं अप्राधान्य के कारण पुन: दो प्रकार के हो जाते हैं।[83] इनका रेखाचित्र निम्नवत् है -

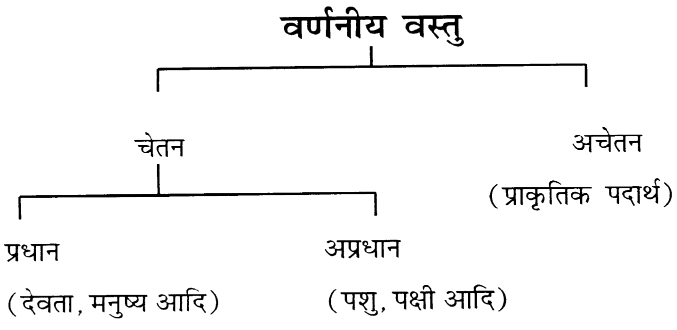

कुन्तक ने चेतन देव, राक्षस, गन्धर्व, विद्याधर आदि को काव्य का मुख्य विषय अर्थात् प्रधान कहा है। सिंह आदि पशु-पक्षी गौण विषय होने के कारण अप्रधान कहे गए हैं। कुन्तक के अनुसार सुकुमार रति आदि के परिपोष से हृदयावर्जक प्रधान चेतन पदार्थों का स्वरूप तथा अपनी जाति के अनुरूप स्वभाव के सम्यक् निरूपण से सुशोभित होने वाला गौण अचेतन पदार्थों का स्वरूप

---

82. भावानामपरिम्लानस्वभावौचित्यसुन्दरम्।
चेतनानां जडानां च स्वरूपं द्विविधं स्मृतम्।। व. जी. 3/5

83. तत्र पूर्वं प्रकाराभ्यां द्वाभ्यामेव विभिद्यते ।
सुरादिसिंहप्रभृतिप्राधान्येतरयोगत: ।। वहीं 3/6

कवियों के वर्णन का विषय होता है।[84] अचेतन पदार्थों में प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन आता है। ये प्राकृतिक जड़ पदार्थ शृङ्गार आदि रसों के उद्दीपक होते है।[85]

धनपाल ने प्रधानभूत चेतन प्राणियों का हृदयाह्लादक वर्णन किया है। धनपाल रससिद्ध कवि है। इन्होंने शृङ्गार के विप्रलम्भ पक्ष का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है -

गते च विरलतां विलीनतापे तपनतेजसि तरलितस्तिलकमञ्जरीसंगमाभिलाषेण तत्कालसमुपस्थितावधेर्गन्धर्वकस्यागमनमार्गमवलोकयितुमभ्यग्रवर्तिनः शिखाग्रचुम्बिताम्बरक्रोडमाक्रीडशैलस्य शिखरमारुरोह। तत्र निक्षिप्तचक्षुरीक्षमाणो दक्षिणाशां तावदास्त यावदस्तशिखरमगादशिशिरगभस्ति। ....अपरेद्युरपि तेनैव क्रमेणोद्यानमगमत्, तेनैव विधिना तत्र सर्वाः क्रियाश्चकार, तथैव तस्यागमनमीक्षमाणो दिवसमनयत्। अकृतगतौ च तत्र क्रमादतिक्रामत्सु दिवसेषु शिथिलीभूततिलकमञ्जरीसभागमाशाबन्धस्य...जनितनिर्भरव्यथस्तस्य दवथुरविरतं सस्मार सस्मरेण चेतसा चित्रपट पुत्रिकानुसारपरिकल्पितस्य चक्रसेनतनयातनुलतालावण्यस्य। सततमन्वचिन्तयच्चारुतामनुदिनोपचीयमानस्य तस्याः प्रथमयौवनस्य यौवनोपचयपरिमण्डलस्तनमनङ्गवेदनोच्छेदनायेव सर्वदा हृदयगतमधत्त तद्रूपम्। पृ. 178-79

गन्धर्वक हरिवाहन को तिलकमञ्जरी का चित्र दिखाकर, उसके मन में प्रेमदीप को प्रज्जवलित कर, पुनः आने को कहकर चला जाता है। गन्धर्वक ही तिलकमञ्चरी और हरिवाहन का मिलन करवा सकता है। हरिवाहन प्रतिदिन उद्यान के पर्वत पर जाकर उसके आने की प्रतीक्षा करता है, परन्तु वह नहीं आता। दिनों के बीतने के साथ-साथ तिलकमञ्जरी से मिलन की उसकी आशा क्षीण होती जाती है तथा प्रेमज्वर बढ़ता जाता है। वह सदैव उसका ही चिन्तन करता है तथा उसके प्रतिबिम्ब का दर्शन करता है।

यहाँ धनपाल ने हरिवाहन के विरहताप का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है। इसमें सहृदय को हरिवाहन की हृदयावस्था तथा तिलकमञ्जरी के प्रति उसके उत्कट प्रेम का सहज ही बोध हो जाता है।

---

84. मुख्यमक्लिष्टरत्यादिपरिपोषमनोहरम्।
स्वजात्युचितहेवाकसमुल्लेखोज्ज्वलं परम्।। व. जी., 3/7

85. वही, 3/8 की वृत्ति

धनपाल ने अनेक स्थलों पर सिंहादि अप्रधान चेतन प्राणियों का सुन्दर चित्रण किया है। उन्होंने अदृष्टपार सरोवर के वर्णन में गज, वानर, मोर, सारस आदि प्राणियों के स्वभाव का रमणीय निरुपण किया है -

उल्लसन्मयूरकेकारवमुखराभिः शिखरदेशविश्रान्तमन्तः सारसाभिरिभकल- भकरावकृष्टिविघटमानविटपाभिश्चटुलवानर वाह्यमानलतादोलाभिम्भः पानान्दनिद्रायमाणश्वापदसंकुलाभि.......। पृ. 202

अदृष्टपार सरोवर का मनोरम वातावरण आनन्दित व नृत्य करते हुए मोरों की केकाध्वनि से गुंजायमान था, सारस नामक पक्षी थकान को दूर करने के लिए वृक्षों के शिखरों पर विश्राम कर रहे थे, क्रीड़ा में रत गजशावक अपने सूण्डों से वृक्षों की शाखाओं को तोड़ रहे थे, वानर प्रकृति से ही चंचल होते हैं, वे लतारूपी झूलों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे, हिंसक पशु आहारादि के पश्चात् जल पीकर तृप्त हो गए थे अतः उन्हें निन्द्रा का अनुभव हो रहा था।

धनपाल का प्रकृति चित्रण अत्यधिक रमणीय है। वन, उद्यान, पर्वत, सरोवर, प्रभात, संध्या, वसन्त आदि के वर्णन में उन्होंने अपने काव्यकौशल के चमत्कार को प्रदर्शित किया है। आराम नामक उपवन की ताप को हरने वाली शीतल वायु के लिए धनपाल सहज एवं सुन्दर उत्प्रेक्षा करते हैं -

मन्येदक्षिणमारुतेन विदितं सेव्यत्वमस्येदृशं,
तेनोत्सृज्य च नाभिचन्दनगिरेरुद्दामशैत्यान्यपि।
याम्याशाविरहोल्लसद्दवथुना नाथेन धाम्नां समं,
संजाते शिशिरात्यये धनपतेराशामुखं सर्पति।।[86]

लगता है कि दक्षिणवायु को भी इस आरामवन की ऐसी सेवा का ज्ञान है। इस सेवा से मलयपर्वत की उत्कृष्ट शीतलता भी चन्दनवनों को छोड़कर, दक्षिण दिशा के विरह से उत्पन्न ताप वाले रश्मि के नाथ सूर्य के साथ, शिशिर ऋतु के समाप्त हो जाने पर कुबेर के दिशामुख (उत्तरदिशा) को जा रही है।

इस प्रकार धनपाल ने वस्तु के सहज सौन्दर्य को सजीवता से अभिव्यक्त किया है, तो वस्तुओं के विशिष्ट धर्मों को अतिरंजना से अलङ्कृत करके अपनी काव्य कुशलता का सुन्दर निदर्शन किया है।

---

86. ति. म., पृ. 212

प्रकरण-वक्रता

वक्रोक्ति का पञ्चम प्रमुख भेद प्रकरण-वक्रता है। प्रकरण-वक्रता से तात्पर्य प्रकरण के सौन्दर्य अथवा अपूर्व उत्कर्ष से है। काव्य में अनेक प्रकरणों का समावेश होता है। इन प्रकरणों की समष्टि ही काव्य संज्ञा को प्राप्त करती है। काव्य का एकांश प्रकरण कहलाता है। जहां कवि इन प्रकरणों को अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से सरस, सुन्दर व रमणीय बना देता है, वहाँ प्रकरण-वक्रता होती है। कुन्तक ने प्रकरण-वक्रता के नौ भेद[87] किये हैं -

1. भावपूर्ण स्थिति की उद्भावना
2. उत्पाद्य लावण्य
3. उपकार्योपकारक भाव-वक्रता
4. विशिष्ट प्रकरण की अतिरंजना
5. रोचक प्रकरणों की अवतारणा
6. अङ्गिरस निष्यन्द निकष
7. अवान्तर वस्तु-योजना
8. गर्भाङ्क-योजना
9. सन्धि विनिवेश

भावपूर्ण स्थिति की उद्भावना : जहाँ अपने अभिप्राय को अभिव्यक्त करने वाली और अपने अपरिमित उत्साह के व्यापार से शोभायमान कवियों की प्रवृत्ति होती है, वहाँ प्रारम्भ से ही निःशङ्क रूप से उठने की इच्छा होने पर प्रकरण में वह कुछ अपूर्व वक्रता असीम रूप से प्रकाशित हो उठती है।[88] तात्पर्य यह है कि जहाँ कवि भावपूर्ण स्थिति की उद्भावना के द्वारा प्रकरण में विशेष चमत्कार की योजना करे, वहाँ प्रथम प्रकार की प्रकरण-वक्रता होती है। धनपाल ने तिलकमञ्चरी में सर्वत्र ऐसी भावपूर्ण स्थिति की उद्भावना युक्त प्रकरणों की योजना की है।

विजयवेग समरभूमि से लौटकर मेघवाहन के समक्ष वज्रायुध और समरकेतु के युद्ध का वर्णन करते हुए समरकेतु की वीरता के विषय में बताता है। समरकेतु

87. वक्रोक्ति सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कृष्ण-काव्य का अनुशीलन, पृ. 264

88. यत्र निर्यन्त्रणोत्साहपरिस्पन्दोपशोभिनी।
व्यावृत्तिर्व्यवहर्तृणां स्वाशयोल्लेखशालिनी।।
अव्यामूलादनाशंक्यसमुत्थाने मनोरथे।
काव्युन्मीलति निःसीमा सा प्रकरणे वक्रता।। हि. व. जी., 4/1, 2

की वीरता के विषय में जानकर मेघवाहन ही नहीं, उसके सभी सभासद भी आश्चर्यचकित हो जाते है तथा उनके मन में समरकेतु के लिए सम्मान के भाव आ जाते हैं। मेघवाहन उसे देखने के लिए उत्सुक हो जाते हैं –

अव्याजशौर्यावर्जितश्च न तथा लब्धविजयेषु सुहृदिव वज्रायुधे यथा समरकैतो बबन्ध पक्षपातम्। तथाह्यस्य चिन्तयन्नचिन्तितात्मपरसैन्यगुरुलाघवां मनस्विताम्, विभावयन्नेकरथेन कृतमहारथसमूहेषु मध्यप्रवेशां साहसिकताम्। अनुरागतरलिश्च तत्रैव गत्वा तं द्रष्टुमिव परिष्वक्तुमिवं संभाषयितुमिवाभ्यर्चितुमिव स्वपदेऽभिषेकतुमिव चेतसाभिलषितवान्। पृ. 99–100

वह प्रकरण भी अत्यधिक भावपूर्ण व चमत्कारपूर्ण बन गया है जब देवी लक्ष्मी मेघवाहन को दर्शन देकर उसे, वर मांगने के लिए कहती है। तब मेघवाहन कहता है कि आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया हूँ। आप मुझे केवल इतनी शक्ति दीजिये, जिससे मैं आधे कटे हुए अपने शीश को काटकर, इस वेताल को देकर निर्वाण प्राप्त कर सकूँ –

पार्थिवः शनैरलपत् – देवि, मेऽभिमतममुष्य महात्मनस्त्वत्परिग्रहाग्रेसरस्य नक्तंचरपतेः प्रयोजनवशादुपदर्शितार्थिभावस्य दातुमुत्तमाङ्गं मया परिकल्पितम्। अर्धकल्पिते चास्मिन्नकस्मादपगतपरिस्पन्दौ संदानिताविव केनाप्यकिंचित्करौ करौ संवृत्तौ। तदनयोर्यथा स्वसामर्थ्यलाभो भवति भूयस्तथा प्रसीद, येनाहमनृणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छामि। पृ. 55–56

उपकार्योपकारकभाव वक्रता : आचार्य कुन्तक के अनुसार ''प्रतिभासम्पन्न कवि की लोकोत्तर वर्णन करने वाली शक्ति से देदीप्यमान प्रबन्ध के प्रकरणों के मुख्य कार्य का अनुकरण करने वाला उपकार्य एवं उपकारक भाव का माहात्म्य समुल्लसित होता हुआ अभिनव वक्रता के रहस्य को उत्पन्न करता है।[89] इसका अर्थ यह है कि जहाँ कवि अपनी अलौकिक प्रतिभा से फलबन्ध अर्थात् मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक प्रकरणों के उपकार्योपकारक भाव को प्रस्तुत करता

89. प्रबन्धस्यैकदेशानां फलबन्धानुबन्धवान्।
उपकार्योपकर्तृत्वपरिस्पन्दः परिस्फुरन्।।
असामान्य समुल्लेख प्रतिभाप्रतिभासिनः।
सते नूतनवक्रत्व रहस्यं कस्यचित्कवेः।। व. जी., 4/5, 6

है वहाँ उपकार्योपकारकभाव प्रकरण वक्रता होती है। धनपाल ने तिलकमञ्जरी में कथा के मुख्य फल की प्राप्ति में सहायक प्रकरणों की सुन्दर योजना की है।

ज्वलनप्रभ नामक वैमानिक मेघवाहन को अपनी प्रिय पत्नी प्रियङ्गुसुन्दरी का दिव्यहार प्रदान करता है, जो कथा के मुख्य फल अर्थात हरिवाहन व तिलकमञ्जरी (पूर्वजन्म के ज्वलनप्रभ और प्रियङ्गुसुन्दरी) के सुखद मिलन में उपकारक सिद्ध होता है-

अनुगृहाणेमां मनःपरितोषाय मे नृपचन्द्र, चन्द्रातपाभिधानं हारम्। गृहीतस्तु कदाचिन्मनुष्यलोके लब्धजन्मनः पुनरानन्दयति दृष्टिमिष्टतमदर्शनं चैनम्। अमरलोकाच्च्युता कालक्रमेण देव्यपि मे प्रियङ्गुसुन्दरी कदाचिदा लोकयति। संभवन्ति च भवार्वणे विविधकर्मवशवर्तिनां जन्तूनामनेकशो जन्मान्तरजातसम्बन्धैर्बन्धुभिः सुहृद्भिरर्थैश्च नानाविधैः सार्धयबाधिताः पुनस्ते संबन्धाः। पृ. 43-44

इलाइची लता मण्डप में जब तिलकमञ्जरी प्रथम बार हरिवाहन के दर्शन करती है तब जन्म से ही पुरुषों के प्रति विद्वेष भावना रखने वाली तिलकमञ्जरी मे मन में उसके प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाता है। मलयसुन्दरी के आश्रम में हरिवाहन के पुनः दर्शनों से यह अनुराग गाढ़ हो जाता है। वह बड़े ही स्नेहपूर्ण नेत्रों से उसे देखती है तथा अपने हाथों से ही उसे ताम्बूल देती है। धनपाल ने इन दोनों के पुनः मिलन का रमणीय संयोजन किया है -

सलीलपरिवर्तितमुखी तत्क्षणमेव सा तीक्ष्णतरलायतां बाणावलीमिव कुसुमबाणस्य, ... मुकुलितां मदेन, विस्तारितां विस्मयेन, प्रेरितामभिलाषेण, विषमितां व्रीडया, वृष्टिमिवामृतस्य, सृष्टिमिवासौख्यस्य, प्रकृष्टान्तः प्रीतिशंसिनीं वपुषि मे दृष्टिमसृजत्। ....तिलकमञ्जरी तु किंचिदुपजातवैलक्ष्या क्षणमधोमुखीभूय ....ताम्बूलदायिकाकरतलादन्तः स्फुरद्भिः स्फटिकधवलैर्नखमयूखनिर्गमः द्विगुणीकृतान्तर्गतस्थूलकर्पूरशकलं स्वहस्तेन ताम्बूलमदात्। पृ. 362-63

चित्रमाय गज का रूप धारण कर हरिवाहन का अपहरण कर उसे अदृष्टपार सरोवर में लाकर छोड़ देता है। यह प्रकरण भी हरिवाहन को मुख्य फल की प्राप्ति में बहुत सहायक सिद्ध होता है। यहीं अदृष्टपार सरोवर के वन में हरिवाहन प्रथम बार तिलकमञ्जरी के साक्षात् दर्शन करता है।[90] जिससे तिलकमञ्जरी को प्राप्त

करने की उसकी क्षीण इच्छा पुनः बलवती हो जाती है।

विशिष्ट प्रकरण की अतिरञ्जना : प्रत्येक प्रकरण में कवि की परिपक्व प्रतिभा की परिपूर्णता से सम्पादित, पूर्णतया नवीन प्रकार से उल्लिखित रसों एवं अलङ्कारों से सुशोभित एक ही पदार्थ का स्वरूप बार-बार उपनिबद्ध होकर आश्चर्य को उत्पन्न करने वाले वक्रता की सृष्टि से उत्पन्न सौन्दर्य को पुष्ट करता है।[91] सामान्यतः एक ही पदार्थ का पुनः पुनः वर्णन होने पर पुनरुक्ति दोष होता है। इस विषय में कुन्तक का मत है कि जहाँ एक पदार्थ के बार बार वर्णन में, हर बार नवीन व चमत्कार की सृष्टि से काव्य में वैचित्र्य का सन्निवेश हो, वहाँ प्रकरण वक्रता होती है।

मेघवाहन के पुत्राभाव रूप दु:ख के बार-बार वर्णन से करुण रस पुनः पुनः दीप्त होता है। करुण रस के पुनः पुनः दीपन से सहृदय मेघवाहन के दु:ख से स्वयं को भी दु:खी पाता है। धनपाल ने अपने काव्य-कौशल से करुण रस की प्रत्येक बार नवीन प्रकार से ऐसी अभिव्यञ्जना करवाई है कि सहृदय को मेघवाहन का दु:ख पुनः पुनः नवीनता धारण करता प्रतीत होता है -

नूतनेऽपि वयसि महत्यप्यन्तःपुरे बहुनापि कालेन नैकोऽप्युदपादि तनयः। ... 'नाथ, कस्यचित्काचिदस्ति गतिः अहमेव निर्गतिका कुरु सत्साम्प्रतं मदुचितम्' इति सखेदया संतानार्थमभ्यर्थितस्येव भुजलग्नया भुवा, 'देव, त्वद्वश्येन गोप्त्रा विना कालान्तरे बलवदरातिहठविलुप्यमानाभिः शरणाय कः समाश्रयणीयोऽस्माभिः इति विज्ञापितस्येव चित्तस्थिताभिः प्रजाभिः, ... 'विद्वन्, किमपरैस्त्रातैः। आत्मानं त्रायस्व पुंनाम्नो नरकात्' इव प्रादुरभवदस्य चेतसि चिन्तासंज्वरः। पृ. 20-21

हरिवाहन को तिलकमञ्जरी की विरह वेदना बार-बार प्रताड़ित करती है। धनपाल ने कामार्त हरिवाहन की इस दशा का कुशलतापूर्वक वर्णन किया है। प्रत्येक बार नवीन उद्भावन से वर्णन में नवीनता व रमणीयता का सन्निवेश हो

---

90. ति. म., पृ. 242-250
91. प्रतिप्रकरणं प्रौढ़प्रतिभाभोगयोजितः।
एक एवाभिधेयात्मा बध्यमानः पुनः पुनः।।
अन्यूननूतनोल्लेखरसालङ्कारणोज्जवलः।
बध्नाति वक्रतोद्भेदभङ्गीमुत्पादिताद्भुताम्।। व. जी., 4/7, 8

गया है, जो सहृदय को विप्रलम्भ शृङ्गार रसास्वादन में निमग्न कर देता है –

प्रवर्तितप्रबलधारापङ्क्तयो भङ्क्तुमिव तस्य धारानगृहस्पदां क्षिप्रमेवान्तरिक्षमाच्छादयांचक्रु। अङ्किनीपलासप्रकरनीला: पयोमुच: सततयामिनीजागरणजड़तारकां प्रसादयितुमिव तद्दृष्टिमविरलोद्भिन्नमरकतश्यामशाद्वला बभूव भूतधात्री। प्रथमजलधारासारशिशिरास्तदङ्गतापमिव निर्वापयितुं निर्वातुमारभन्तसंततामोदमकरन्दमांसला: कदम्बमरुत:। मानसस्मरणसंजातरणरणकास्तदनुरागमाख्यातुमिव खेचरेन्द्रदुहितुरुत्तरां दिशमभिप्रतस्थिरे राजहंसा।...वनोदयितुमिव तस्यारतिमनारतोदीरित–मधुरकेकागीतिभि: समारम्भि ताण्डवमुद्दण्डबर्हमण्डलैर्गृहशिखण्डिभि:। एवं च विकसिताकुण्ठकलकण्ठचातककलकले...समन्ताद्विजृम्भितेम्बुधरदुर्दिने विधुरीभूतमनस:। पृ. 179–80

अवान्तर वस्तु–योजना : प्रधान वस्तु की सिद्धि के लिए जहाँ अन्य अर्थात् प्रासङ्गिक वस्तु की उल्लेखपूर्ण विचित्रता उन्मीलित होती है, वह प्रकरण वक्रता का अन्य उदाहरण है।[92] तात्पर्य यह है कि जहाँ प्रधान फल की प्राप्ति के लिए, नवीन उन्मेष की भङ्गिमा से रमणीय प्रासङ्गिक वस्तु की योजना की जाती है वहाँ अवान्तर वस्तु–योजना प्रकरण वक्रता होती है।

तिलकमञ्जरी में अनङ्गरति प्रकरण इसका अतिसुन्दर उदाहरण है। विद्याधर सम्राट् विक्रमबाहु के अकस्मात् वैरागी हो जाने पर शाक्यबुद्धि आदि मन्त्रिगण हरिवाहन को सम्राट् पद के सर्वथा योग्य पाते है। उधर हरिवाहन तिलकमञ्जरी के वियोग में जीवित नहीं रहना चाहता। इससे शाक्यबुद्धि आदि योजना बनाकर अनङ्गरति के माध्यम से हरिवाहन को मंत्र साधना में प्रवृत्त करते हैं, जिससे वह सिद्धि प्राप्त कर विधाधरों का चक्रवर्ती सम्राट् बन सके। हरिवाहन मंत्र सिद्ध कर विद्याधर सम्राट् बना जाता है तथा उसे मुख्य फल अर्थात् विद्याधर राजकुमारी तिलकमञ्जरी भी प्राप्त हो जाती है।

अस्ति मे गुरुपरम्परागत: सकलजगदाधिपत्यदायी प्रधानदेवतापरिगृहित:

92. प्रधानवस्तु निष्पत्यै वस्त्वन्तरविचित्रता।
यत्रोल्लसति सोल्लेखा सापराप्यस्य वक्रता।। व. जी., 4/11

समस्तमन्त्रग्रामणीरसाधारणगुणाधारपुरुषसाध्यो मन्त्रनिवहः। तदाराधनेन लब्धाधिकपराक्रमः क्रमार्जितं सत्त्वमिवात्मपोतस्य मृगपतिर्वितर मे राज्यम्। पृ. 398

प्रबन्ध-वक्रता

प्रबन्ध वक्रता वक्रोति का अन्तिम भेद है। कथा के प्रबन्धन व उपनिबन्धन में वक्रता ही प्रबन्ध वक्रता है। प्रबन्ध-वक्रता से अभिप्राय सम्पूर्ण काव्य के सौन्दर्य व वैचित्र्य से है। प्रबन्ध-वक्रता का आश्रय काव्य का एकांश या एकदेश न होकर सम्पूर्ण काव्य होता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार - ''प्रबन्ध-वक्रोक्ति काव्य की सबसे अधिक व्यापक वक्रोक्ति है। इसका आश्रय न अक्षर है, न पद, न वाक्य और न वाक्यार्थ प्रत्युत् आदि से अन्त तक संवलित समग्र काव्य तथा नाटक ही इस वक्रोक्ति की आधार स्थल है।'' कुन्तक ने वक्रोक्ति के छः भेद किये हैं -

1. प्रबन्ध रस परिवर्तन-वक्रता
2. कथा समापन-वक्रता
3. कथा विच्छेद-वक्रता
4. आनुषङ्गिक फल प्राप्ति-वक्रता
5. प्रधान कथा का द्योतक नाम
6. कथा साम्य-वक्रता

प्रबन्ध रस परिवर्तन वक्रता : कुन्तक काव्य में रस के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं - कवियों की वाणी केवल कथा पर आश्रित होकर नहीं, अपितु निरन्तर रस का आस्वादन कराने वाले प्रसङ्गों के अतिशय से युक्त होकर जीवित रहती है।[93] कवि अपनी प्रतिभा से प्रसिद्ध कथा के रस में परिवर्तन कर उसे रमणीय बना देता है। इसे ही रस परिवर्तन वक्रता कहते हैं। आचार्य कुन्तक के अनुसार - ''विनेयों के लिये आनन्द की सृष्टि हेतु जहाँ इतिहास में अन्य प्रकार से किए गये निर्वाह वाली रस सम्पत्ति का तिरस्कार, प्रारम्भ से ही उन्मीलित किए गये सौन्दर्य वाले काव्य शरीर का दूसरे मनोहर रस के द्वारा निर्वाह किया गया है।

---

93. निरन्तररसोद्गारगर्भसन्दर्भनिर्भरा।
गिरः कवीनां जीवन्ति न कथामात्रमाश्रिता।। व. जी., पृ. 417

वहां प्रबन्ध रस परिवर्तन वक्रता होती है।[94] कवि अपनी काव्य रचना के लिए इतिहास, पुराण अथवा किसी पुरातन काव्य रचना से कथानक का ग्रहण करता है। जब कवि अपनी रचना में नवीनता व मौलिकता के आग्रह से उस कथा के रस को तथावत् ग्रहण न करके रस परिवर्तन द्वारा रमणीयता का आधान करता है तो वहाँ प्रबन्ध रस परिवर्तन वक्रता होती है।

धनपाल की तिलकमञ्जरी के कथानक का आधार जैनागम ग्रन्थ है।[95] इन्होंने पुराणसारसंग्रह के अन्तर्गत आदिनाथ चरित के वर्णन में दी गई वज्रजंध और श्रीमती की कथा को तिलकमञ्जरी कथा का आधार बनाया है। यह कथा भक्ति रस युक्त है। वज्रजंध और श्रीमती पूर्वजन्म में ऐशान नामक स्वर्ग में ललिताङ्ग तथा स्वयंप्रभा नामक देव-दम्पत्ति थे। पुण्य क्षीण होने पर ललिताङ्ग ने जिनेन्द्रों की पूजा कर अपने अगले जन्म को सुधार लिया। तिलकमञ्जरी में भी ज्वलनप्रभ व प्रियङ्गसुन्दरी देवदम्पत्ति है। ज्वलनप्रभ अपना अगला जन्म सुधारने के लिये बोधि लाभ हेतु स्वर्ग से निकल पड़ता है। धनपाल ने भक्ति रस युक्त इस कथा के रस में परिवर्तन कर इसे शृङ्गार रस युक्त कर दिया है, जिससे यह कथा अत्यधिक मनोहारी बन गयी है।

आनुषङ्गिक फल प्राप्ति-वक्रता :

आचार्य कुन्तक के अनुसार "जहाँ प्रभूत यश समृद्धि का पात्र नायक अपने माहात्म्य के चमत्कार से एक ही फल की प्राप्ति में लगा हुआ होने पर भी उसी के सदृश सिद्धियों वाले दूसरे असंख्य फलों के प्रति निमित्त बन जाता है वह प्रबन्ध की अन्य प्रकार की वक्रता होती है।"[96] इसका अभिप्राय यह है कि प्रधान फल

---

94. इतिवृत्तान्यथावृत्त- रससम्पदुपेक्षया। रसान्तरेण रम्येण यत्र निर्वहणं भवेत्।
तस्या एव कथामूर्तेरामूलोन्मीलितश्रियः।विनेयानन्दनिष्पत्त्यै सा प्रबन्धस्य वक्रता।। वही, 4/16,17

95. निःशेषवाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ताः श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य।
तस्यावदात्त चरितस्य विनोदहेतो राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम्।। ति.म., भूमिका, पद्य 50

96. यत्रैकफलसम्पत्ति-समुद्युक्तोऽपि नायकः।
फलान्तरेष्वनन्तेषु तत्तुल्यप्रतिपत्तिषु।।
धत्ते निमित्ततां स्फारयशः सम्भारभाजनम्।
स्वमाहात्म्यचमत्कारात् सापरा चास्य वक्रता।। व. जी., 4/22, 23

की प्राप्ति में संलग्न नायक को जब उसके समान सिद्धियों वाले अनेक अन्य फलों की प्राप्ति होती है जो नायक के चरित्र को भी दीप्ति प्रदान करने में समर्थ होती हैं वहाँ आनुषङ्गिक फल प्राप्ति-वक्रता होती है।

तिलकमञ्जरी कथा के नायक हरिवाहन का मुख्य उद्देश्य तिलकमञ्जरी को प्राप्त करना है। इसके लिए धनपाल ने अनेक रोचक परिस्थितियों की कल्पना की है जिससे हरिवाहन का न केवल तिलकमञ्जरी के साथ समागम हुआ है अपितु उसे विद्याधरों का चक्रवर्ती सम्राट् बनने का अवसर भी प्राप्त हुआ है। इस प्रकार को आनुषङ्गिक फल प्राप्ति एक ओर नायक हरिवाहन के उत्कर्ष में वृद्धि करती है तो दूसरी ओर सहृदय को आनन्द प्रदान करती है।

इसी प्रकार कथा का सहनायक समरकेतु, जो अपने पिता की आज्ञा से अपने राज्य के दुष्ट सामन्तों के दमन हेतु निकला है, वह शत्रुओं का दमन भी करता है साथ ही उसका मिलन मलयसुन्दरी से होता है और कथा के अन्त में उसे मलयसुन्दरी की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार तिलकमञ्जरी में कुन्तक की वक्रोक्ति का चमत्कार तथा वर्णन वक्रता का वैचित्र्य सर्वत्र परिलक्षित होता है।

अष्टम अध्याय

तिलकमञ्जरी की भाषा शैली

भाषा शैली

भावों की सम्यक् अभिव्यक्ति का सुन्दरतम व सशक्त साधन भाषा होती है। जो कवि भाषा और भावों के मध्य सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर सकता, वह सुकवि नहीं हो सकता। वर्णनानुकूल भाषा विषय-वस्तु के भावों को रमणीय ढंग से सम्प्रेषित करती है। सुकवि अपने काव्य को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए वर्णनानुकूल वर्ण संयोजन व भाषा शैली का आश्रय लेता है।

प्रतिभा सम्पन्न कवि काव्य रचना में प्रवृत्त होने से पहले अपने पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं का अध्ययन करता है जिससे वह अपने काव्य में नवीनता का समावेश कर सके। धनपाल के समक्ष भी दण्डी, सुबन्धु व बाण की गद्य रचनाएँ व उनकी गद्य शैली के आदर्श उपस्थित थे। धनपाल बाण से अत्यधिक प्रभावित थे –

केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोतिविमदान्कवीन् ।
किं पुनः क्लृप्तसंधानपुलिन्ध्रकृतसन्निधिः ॥[1]

बाण ने काव्य में पाँच गुणों के सन्निवेश पर बल दिया है – नवीन अर्थ, सुन्दर स्वाभावोक्ति, सरल श्लेष, स्पष्ट प्रतीत होने वाला रस तथा विकटाक्षरबन्ध।[2] धनपाल ने बाण से प्रभावित होते हुए भी तिलकमञ्जरी में विकटाक्षरबन्ध अर्थात् दीर्घ समास रचना का त्याग किया है। धनपाल का मत है कि अतिदीर्घ समास से युक्त तथा प्रचुर वर्णनों वाले गद्य से भयभीत होकर लोग उसी प्रकार से निवृत्त होते हैं, जैसे खण्डरहित दण्डकारण्य में रहने वाले पीतादि वर्णों वाले व्याघ्र आदि से।[3]

धनपाल ने श्लेष-बहुलता[4] को भी काव्य रसास्वादन में बाधक मानते हुए कहा है –"सरस, मनोहर वर्ण-योजना को धारण करती हुई भी श्लेष बहुल काव्य रचना लिपि के समान प्रशंसा को प्राप्त नहीं करती।"[5]

---

1. ति. म., भूमिका, पद्य 26
2. नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टो स्फुटो रसः ।
   विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नेमेकत्र दुर्लभम् ॥ हर्ष., 1/18
3. अखण्डदण्डकारण्यभाजः प्रचुरवर्णकात् ।
   व्याघ्रादिवभयाघ्रातो गद्याद्व्यावर्तते जनः ॥ ति. म., भूमिका पद्य 15
4. प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धनम् । वासवदत्ता, पद्य 13
5. वर्णयुक्तिं दधानापि स्निग्धाञ्जनमनोहराम् ।
   नातिश्लेषघना श्लाघां कृतिर्लिपिरिवाश्नुते ॥ ति. म., भूमिका, पद्य 16

धनपाल ने बाण की गद्य रचना विशेषता 'दीर्घ समास-प्रचुरता' तथा सुबन्धु की गद्य शैली 'प्रत्यक्षरश्लेषमयता' का परित्याग करते हुए तिलकमञ्जरी को सरस, सुबोध व प्रवाहमयी भाषा शैली से अलङ्कृत किया है।

बाण ने अपने समय में प्रचलित चार शैलियों का वर्णन किया है। उनके अनुसार उत्तर भारत के कवि श्लेष को, पश्चिमी भारत के कवि अर्थ को, दक्षिण के कवि उत्प्रेक्षा को तथा गौड़ अर्थात् पूर्वी भारत के कवि शब्दाडम्बर को प्रधानता देते हैं। इस शैली में समास बाहुल्य होता है इसलिए इस शैली को गौड़ी कहा जाता है।[6] आचार्य वामन ने काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति में तीन रीतियों का वर्णन किया है - वैदर्भी, पाञ्चाली और गौड़ी। गुण तथा गुणों की संख्या इन रीतियों के भेदक तत्त्व हैं। रीति, वृत्ति तथा शैली समानार्थक शब्द हैं।

प्रतिभाशाली कवि रूढ़िवादी नहीं होता और न ही वह किसी विशेष शैली के बन्धनों को स्वीकार करता है। वह अर्थानुरूप व भावानुरूप शैली का अवलम्बन करता है। धनपाल ने वैदर्भी शैली को श्रेष्ठ कहा है।[7] तिलकमञ्जरी में विषयानुकूल तीनों शैलियों का प्रयोग किया गया है। धनपाल जिस कुशलता से वैदर्भी शैली में विषय की भावाभिव्यञ्जना करते हैं, उसी निपुणता से पाञ्चाली व गौड़ी शैली में अर्थाभिव्यक्ति करते हैं।

आचार्य विश्वनाथ वैदर्भी रीति का लक्षण करते हुए कहते है - "माधुर्य व्यञ्जक वर्णों से युक्त समास रहित अथवा अल्पसमास युक्त मनोहर रचना वैदर्भी रीति कहलाती है।[8] धनपाल ने **वैदर्भी** रीति का रमणीय प्रयोग किया है। तिलकमञ्जरी से वैदर्भी रीति के कुछ सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है -

विश्वकर्मसहस्रैरिव निर्मितप्रासादा, लक्ष्मीसहस्रैरिव परिगृहीतगृहा, देवतासहस्रैरिवाधिष्ठितप्रदेशा, राजनीतिरिव सत्त्रिप्रतिपाद्यमाना वार्ताधिगतार्था, अर्हद्दर्शनस्थितिरिव नैगमव्यवहाराक्षिप्तलोका, रसातलविवक्षुरविरथचक्रभ्रान्तिरिव चीत्कारमुखरितमहाकूपारघट्टा, सर्वाश्चर्यनिधानमुत्तरकौशलेष्वयोध्येति

6. श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीचेष्वर्थमात्रकम् ।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम् ।। हर्ष., 1/7

7. वैदर्भीमिव रीतीनाम् । ति. म., पृ. 159

8. माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका ।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ।। सा. द., 9/2

यथार्थाभिधाना नगरी । पृ. 11

यहाँ अयोध्या नगरी के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। अयोध्या नगरी इतनी सुन्दर है मानों उसके महलों को स्वर्गलोक के हजारों शिल्पियों ने बनाया है, मानों हजारों ब्रह्माओं ने उसके निवासियों की सृष्टि की है, मानों हजारों लक्ष्मियों द्वारा व्याप्त गृहोंवाली है, मानों हजारों देवताओं द्वारा अधिष्ठित प्रदेशों वाली है, मानों जैन शासन व्यवस्था के वणिकों के वस्तुदानादि व्यवहार से आकृष्ट लोगों वाली है, पाताल (अस्ताचल) को जाने के इच्छुक सूर्य के रथ चक्र के भ्रमण के समान, गहरे कूपों के रहटों की ध्वनि से मुखरित, सभी आश्चर्यजनक वस्तुओं की निधिभूत, कौशलदेश के उत्तर खण्ड के मध्य अयोध्या नाम की यथार्थ नाम वाली नगरी है।

यस्य च प्रताप एव वसुधामसाधयत्परिकर एव सैन्यनायका:, महिमैव राजकमनामयन्नीति: प्रतिहारा:, सौभाग्यमेव अन्त:पुरमरक्षत्स्थिति: स्थापत्या:, आकार एव प्रभुतां शशंस परिच्छदश्छत्रचामरग्राहा:, तेज एव दुष्टप्रसरं रुरोध राज्याङ्गमङ्गरक्षा, आज्ञैवान्यायं न्यषेधयद्धर्मो धर्मस्थेया: । पृ. 14-15

धनपाल मेघवाहन के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं - मेघवाहन का तेज ही पृथ्वी को वश में रखता था, सेनापति उसके परिवार मात्र थे। उसकी महिमा ही राजसमूह को झुकाती थी, द्वारपाल तो शासन पद्धति के कारण थे। उसका असाधारण सौन्दर्य ही अन्त:पुर की स्त्रियों को अन्य पुरुषों के सम्पर्क से रोकता था, अन्त:पुर के बाह्य रक्षक तो अन्त:पुर की मर्यादा मात्र के लिए थे। उसका आकार ही पृथ्वी पर उसके आधिपत्य को सूचित करता था, छत्रचामरधारी उसके परिवार मात्र थे। उसका तेज ही दुष्टों के प्रसार को अवरुद्ध करता था, अङ्गरक्षक तो राज्य के अङ्ग मात्र थे। उसका शुसासन ही नीति विरुद्ध प्रवृत्ति को रोकता था, धर्माधिकारी राजधर्म पालन के लिए ही थे।

यथा न धर्म: सीदति यथा नार्थ: क्षयं व्रजति यथा न राजलक्ष्मीरुन्मनायते यथा न कीर्तिर्मन्दायते यथा न प्रतापो निर्वाति यथा न गुणा: श्यामायन्ते यथा न श्रुतमुपहस्यते यथा न परिजनो विरज्यते यथा न मित्रवर्गो म्लायति यथा न शत्रवस्तरलायन्ते तथा सर्वमन्वतिष्ठत्। पृ. 19

मेघवाहन यशस्वी, वीर तथा प्रजापालक राजा था। वह सभी कर्मों को इस

प्रकार करता था जिस प्रकार से न धर्म का क्षय हो, न धन व्यर्थ में व्यय हो, जिस प्रकार राजलक्ष्मी पराङ्मुखी न हो, जिस प्रकार राजतेज का क्षय न हो, जिस प्रकार गुण मलीन न हो, जिस प्रकार शास्त्र उपहास न करें, जिस प्रकार मित्रवर्ग हर्षित हो तथा जिस प्रकार शत्रु स्पर्धा के लिए त्वरित न हों। इस प्रकार माधुर्य गुण व्यञ्जक वर्णों से राजा के उचित कर्मों में नियोजन का वर्णन किया गया है।

अनुपरतकौतुकश्च मुहुः केशपाशे, मुहुर्मुखशशिनी, मुहुरधरपत्रे, मुहुरक्षिपात्रयोः, मुहुःकण्डकन्दले, मुहुःस्तनमण्डले, मुहुर्मध्यभागे, मुहुर्नाभिचक्राभोगे, महुर्जघनभारे, मुहुरूरुस्तम्भ्योः, मुहुश्चरणावारिरुहयोः कृतारोहावरोहया दृष्ट्या तां व्यभावयत्। पृ. 162

यहाँ हरिवाहन के द्वारा तिलकमञ्जरी के चित्रदर्शन का रमणीय वर्णन किया गया है। हरिवाहन बार-बार कभी उसके केशपाशों को देखता है, कभी सुन्दर मुख को, कभी अधर पत्रों को, कभी सुन्दर नेत्रों को, कभी सुन्दर ग्रीवा को, कभी उन्नत स्तनों को, कभी उसके मध्यभाग को, कभी उसके सुन्दर अरुस्तम्भों को, तो कभी चरणकमलों को देखता है। हरिवाहन उसके सौन्दर्य से प्रभावित होकर बार-बार उसे देखता है। यही चित्रदर्शन हरिवाहन के हृदय में तिलकमञ्जरी के प्रति प्रेमाङ्कुर को जन्म देता है।

तिलकमञ्जरी से वैदर्भी के कुछ अन्य उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

(i) यत्र मन्दिरोपवनान्यावासनगराणि, तमालतरुनिकुञ्जाः सदनानि लवङ्गपल्लवस्रस्तराः पर्यङ्काः, प्रणयकलहाः कलयः, नखदशनविन्यासाः शरीराभरणमणयः, प्रियावदनशतपत्राणि पानपात्राणि, कामसूत्रमध्यात्मशास्त्रम्, वाजीकरणयोगोपयोगो व्याधिभेषजम्, अनङ्गपूजा देवतार्चनम्, सुरतदूतिकागुरवो भुजङ्गवर्गस्य ... । पृ. 260

(ii) मुकुलितां मदेन, विस्तारितां विस्मयेन, प्रेरितामभिलाषेण, विषमितां व्रीडया वृष्टिमिवामृतस्य, सृष्टिमिवासौख्यस्य, प्रकृष्टान्तः प्रीतिशंसिनी वपुषि मे दृष्टिमसृजत् । पृ. 362

(iii) तासां च मध्ये शब्दविद्यामिव विद्यानाम्, कौशिकीमिव रसवृत्तिनाम्, उपजातिमिव छन्दोजातिनाम्, जातिमिवालङ्कृतीनाम्, वैदर्भीमिव रीतीनाम्,

प्रसत्तिमिव काव्यगुणसंपदाम्, पञ्चमश्रुतिमिव गीतीनाम्, रसोक्तिमिव भणितीनाम्, अधिकमुद्भासमानाम् ... । पृ. 159

धनपाल जिस प्रकार वैदर्भी शैली के प्रयोग में निपुण हैं, उसी प्रकार **पाञ्चाली** शैली के प्रयोग में भी सिद्धहस्त हैं। विविध वर्णनों के भावों की अभिव्यञ्जना वे पाञ्चाली शैली में करते है। वामन के अनुसार पाञ्चाली शैली में माधुर्य व सुकुमार गुणों का समावेश होता है।[9]

भोज के मतानुसार पाञ्चाली शैली पाँच छः पदों वाले समास तथा मधुर व सुकुमार पदावली से युक्त होती है।[10] शब्द और अर्थ का समान गुम्फन पाञ्चाली शैली की विशेषता है।[11] शब्दार्थ के समान गुम्फन से तात्पर्य शब्द और अर्थ के परस्पर सन्तुलन से है। यदि वर्ण्य विषय कोमल है तो भाषा भी उदात्त होगी और यदि वर्ण्य विषय ओजस्वी है तो भाषा भी ओजपूर्ण होगी। धनपाल के वर्णन शब्द और अर्थ के समान गुम्फन से शुशोभित है। धनपाल वर्ण्य विषय के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग करते है-

पादशोभयापि न्यक्कृतपद्माभिरूरुश्रियापि इन्दुनापि प्रतिदिनं प्रतिपन्नकलान्तरेण प्रार्थ्यमानमुखकमलकान्तिभिर्मकरध्वजेनापि दर्शिताधिना लब्धहृदयप्रवेश-महोत्सवाभिरप्रयुक्तयोगाभिरेकावयवप्रकटाननमरुतामपि गतिं स्तम्भयन्तीभि-रव्यापारितमन्त्राभिः सकृदाह्वानेन नरेन्द्रणामपि सर्वस्वमाकर्षयन्तीभिरसदोषधी-परिग्रहाभिरीषत्कटाक्ष पातेनाचलानपि द्रावयन्तीभिः सुरतशिल्पप्रगल्भतावष्टम्भेन रूपमपि निरुपयोगमवगच्छन्तीभिः । पृ. 9-10

यहाँ अयोध्या की वार-वधुओं की अत्यधिक सुन्दरता का वर्णन किया गया है। अयोध्या नगरी ऐसी सुन्दर वार वनिताओं से सुशोभित थी, जिनके पैरों की शोभा कमलों की शोभा को तिरस्कृत करती थी। प्रतिदिन उन्नति को प्राप्त करने वाला चन्द्रमा भी उनके मुख-तुल्य शोभा की प्रार्थना करता था। दृष्ट मानसिक व्यथा से व्यथित कामदेव भी उनके सरस हृदय प्रवेश रूपी महोत्सव में प्रवेश पा

9. माधुर्यसौकुमार्योपन्ना पाञ्चाली - का. सू. वृ., 1/ 2/ 13
10. समस्तपंचषपदामोजः कान्तिविवर्जितम् ।
मधुरासुकुमारांच पांचाली कवयो विदुः ।। स. क., 2/30
11. शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते । स. क., 2/31

गया था। वे एक अङ्ग, मुख मात्र को प्रकट कर देवताओं का गति को भी निरुद्ध कर देती थी, मन्त्र प्रयोग के बिना ही राजाओं का सर्वस्व अपने अधीन कर लेती थी, कटाक्ष मात्र से ही स्थिर हृदयवालों को भी अस्थिर कर देती थी।

यहाँ धनपाल ने अयोध्या की वाराङ्गनाओं के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए कोमल पदावली का प्रयोग किया है। सम्राट् मेघवाहन के वीर्य वर्णन में विषयानुकूल पूरुष पदावली का सुन्दर प्रयोग किया गया है –

यस्य फेनवत्स्फुटप्रसृतयशोट्टहासभरितभुवनकुक्षिरङ्गिकृतगजेन्द्रकृतिभीषणः प्रकटितानेकनरकपाल प्रलयकालविभ्रमेष्वाजिमूर्धसु संहजार विश्वानि शात्रवाणि महाभैरवः कृपाणः । यस्य चाकाण्डदर्शिसकलदिग्दाहो वज्र इव बिडौजसो निर्दाह महीभृत्कुलानि समन्ततः प्रज्वलत्प्रतापः। पृ. 14

मेघवाहन की समुद्र के फेन के समान विस्तृत यशरूपी अट्टहास से पृथ्वी के मध्यभाग को भरने वाली, अनेक यमदूतों को प्रकट करने वाली, महाकालरूपी खड्ग संग्राम के आरम्भ में सभी शत्रुओं को नष्ट करती थी। जिसका अनवसर अनुभूत सभी दिशाओं के शत्रुओं के अन्तः ताप के समान, सब और देदीप्यमान तेज इन्द्र के वज्र के समान शत्रुओं का नाश करता था।

यहाँ पठन मात्र से ही अर्थ सहृदय के हृदय में प्रकाशित हो जाता है विद्याधर मुनि के वर्णन में भी धनपाल ने मनोहारी विषयानुकूल वर्ण योजना की है। विद्याधर मुनि के तपोतेज के वर्णन में कोमल पदावली व चारित्रिक दृढ़ता को प्रकट करने के लिए कठोर पदावली का समन्वय अद्भुत है।

उद्योतितसमस्तान्तरिक्षमार्गम्, आपीतसप्तार्णवजलस्य रत्नोद्गारमिव तीव्रोदानवेगनिरस्तमगस्त्यस्य, केरलीरक्षितशरणागतानङ्गवैलक्ष्य प्रतिनिवृत्तमीक्षणानलमिव विशालाक्षस्य, तपोजन्मना जनितबहुमानं जगति महत्त्वेन, ग्रीष्मकूपमिव प्रकटतनुशिरोजालम्, दक्षिणार्णवपारमिव त्रिकूटकरकोरस्थलं कमलसमकरम् निष्परिग्रहमपि सकलत्रम्, परपुरुषदर्शनसावधान सौविदल्लमिन्द्रियवृत्तिरेव वनितानाम्, भूतापद्रुहकम्बुधरागमं साधुमयूराणाम् .... विद्याधर मुनिमपश्यत् । पृ. 23-24

इसी प्रकार धनपाल ने वर्ण्य विषय के अनुरूप पाञ्चाली शैली का

अवलम्बन कर उन विषयों को प्रभावोत्पादक बना दिया है। तिलकमञ्जरी से पाञ्चाली शैली के कुछ और सुन्दर उदाहरण निम्नलिखित हैं –

(i) देव्यापि कमलया कामकेलिक्लान्तिहारी हरेरिति धृतो धृतिमत्या महान्तं कालम्। तयापि परिरम्भविभ्रमेषु निबिडपीडिताखण्डलोरसः सुरगज कुम्भपीठपृथुनो निजस्तनमण्डनस्य कृत्वातिदीर्घकालं मण्डनमर्पितः सखीप्रेमहृतहृदयया मत्प्रियायाः प्रियङ्गुसुन्दर्याः कण्ठदेशे । तयाप्यतिशयित शीतरश्मिरोचिषमस्य शुचितागुणं शचीप्रसादं च बहुमन्यमानयामुक्त्वान्यानि कंधराभरणानि धारितः सुचिरम् । पृ. 43

(ii) यत्र मधुकरध्वनिपटुहुंकाराणि समुल्लसत्सरससहकारमञ्जरीतर्जनिकानि कृततर्जनानीव प्रियकरोत्क्षिप्तासु मुक्ताशुक्तिषु विलोकयन्ति तालफलरसमधूनि ध्वस्तमानावलेपा विलासिन्य । यत्र सुलभनागवल्लीदलार्द्रपूगीफलानि क्वणत्कुररकुलकलध्वनिवर्धितानङ्गोत्साहानिसंनिहितचन्दनशिशिरदीर्धिकातरङ्गपव नानि वनानि निधुवनानि च निषेवन्ते समं वनितासखाः सुखिनः । पृ. 261

धनपाल वैदर्भी और पाञ्चाली के साथ-साथ **गौड़ी** शैली के प्रयोग में भी निपुण हैं। गौड़ी शैली दीर्घ समास प्रधान होती है।[12] वामन के अनुसार गौड़ी रीति ओज और कान्ति गुण युक्त होती है।[13] धनपाल प्रसङ्गानुसार विकट वर्णनों में गौड़ी शैली का भी आश्रय लेते हैं। धनपाल का मत है कि अति दीर्घ समास युक्त रचना से रसास्वादन में व्यवधान उत्पन्न होता है।[14] धनपाल ने तिलकमञ्जरी में वर्णनानुकूल दीर्घ समासों का प्रयोग किया है। परन्तु समास बहुलता का परित्याग किया है गौड़ी शैली के उदाहरण प्रस्तुत है –

अथाधुनैवाधिगतविद्याधरेन्द्रभावःसंकल्पानन्तरोपनतमनल्पवातायनसहस्रा-लंकृतममलचीनांशुकवितानलम्बमानमुग्धमौक्तिकप्रालम्बमनिलदोलायमानद्वारवन्द नमालाप्रवालमुपहारकुसुमसौरभाध्वमधुकरझङ्कारमुखरमणिकुट्टिमं विमानमधिरुह्य विदग्धवल्लभाप्तसुहृत्कदम्बकानुयातो विलोकयन्विविधान्याश्चर्याणि सशैलद्वीपकाननामुदधिमर्यादां मेदिनीं पर्यटसि । पृ. 57

यहाँ मेघवाहन को वर प्रदान करने के लिए आई हुई लक्ष्मी का वर्णन किया

12. शब्दाः समासवन्तो भवति यथाशक्ति गौड़ीया । का. ल., 2/5
13. ओजः कान्तिमती गौडीया। का. सू. वृ., 1/2/12
14. अखण्डदण्डकारण्यभाजः प्रचुरवर्णकात् ।
व्याघ्रादिवभयाघ्रातो गद्याद्व्यावर्तते जनः ।। ति. म., भूमिका, पद्य 15

गया है। लक्ष्मी की विशेषताओं का गौड़ी शैली में ओजस्वी वर्णन प्रभावोत्पादक बन गया है।

गलितगर्वगन्धर्वशिथिलितगीतगोष्ठीस्वरविचारा विषण्णसाध्यपरिषदा विखिन्नसिद्धनिषध्यमानगानोन्मुखमुखरकिन्नरकुला पानेकेलि निरपेक्षयक्षशून्यी–कृतोपवनतरुखण्डलतामण्डपारणरणकगृहीतगृहदेवता वनदेवतासदु:ख–दृश्यमानतत्क्षणम्लानकल्पपादपा, स्थान स्थान पूज्यमानस्विन्ना सिद्धायतनदेवताप्रतिमा प्रतिमन्दिरमाकर्ण्यमानश्रवणदुष्टहाकष्टशब्दा दृष्टा । पृ. 41

प्रकृत उदाहरण में रति विशाला नामक नगरी में हो रहे अनिष्टों को सम्यग्तया प्रकट करने के लिए दीर्घ समासों का प्रयोग किया गया है ।

आविष्कृताटोपदु:प्रसहैश्च तैः सह प्राकारशिखरवर्तिनः कुसुमशेखरराज्य लोकस्यान्योन्यकृतनिर्भर्त्सनानि समत्सरसुभटसिंहनादबधिरीकृताभ्यर्णवासिजनकर्णघोरणिनीरन्ध्र पाषाणक्षेपक्षाणमात्रस्थलीकृताम्बरलतानि निर्दयप्रहततूर्यरवपर्यासितकातरकरशस्त्राणि यन्त्रविक्षिप्ताग्नितप्ततैलच्छटाविघटमानविकटपदातिगुम्फानि कुठारताडित प्रतोलीकपाटनिः स्वनानुसारनिपतत्प्रबल–पाषाणवर्षाणि कृतकलकल ग्रामीणावलोक्य मानप्रहारविलकलविद्रवद्विपघटानि भयानकानि च .... प्रतिदिनमायोधनान्यवन् । पृ. 83

यहाँ काञ्चीनरेश कुसुमशेखर व वज्रायुध के मध्य युद्ध का वर्णन किया गया है। दीर्घ समासों से वर्णन प्रभावशाली बन गया है।

साहसरहितजनदु:प्रवेशया शिथिलमूलदुर्बलजटाजालकैः परस्परावकाशमिव दातुमप्रसारितशाखामण्डलैस्तारकानिकुरुम्बमिव दुखतारतुङ्गतटाभिरुत्कोटि पाषाणपटलस्खलनबहुमुखप्रवृत्तमुखरश्रोतोजलाभिरनतिनिबिडनिर्गुण्डीलतागुल्मगुपिलीकृतोपलवालुकाबहुलविच्छिन्नान्तरालपुलिनाभिरुच्छलत्क्षलमलवननिलीन–नाहलनिवहकाहलकोलाहलाभिः शैलनिम्नगाभिर्निम्नीकृतान्तरालया ..... । पृ. 199

यहाँ अटवी की भयावहता का वर्णन किया गया है इसी प्रकार समुद्र वर्णन, वैताढ्य वर्णन, लक्ष्मी वर्णन, वेताल वर्णन, युद्ध वर्णन आदि में गौड़ी शैली के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार धनपाल ने तिलकमञ्जरी में किसी विशेष शैली का आश्रय न

लेकर प्रसंगानुरूप व भावानुरूप शैली का अवलम्बन किया है। धनपाल की शैली श्लेष बहुलता व अतिदीर्घ समास परम्परा से रहित है। धनपाल ने प्रसङ्ग की आवश्यकतानुसार दीर्घ समासों का भी प्रयोग किया है। परन्तु उनके बीच में छोटे-छोटे समासों की योजनाकर अपनी शैली को सरल व सुबोध बनाया है। इस प्रकार धनपाल ने गद्य शैली के लिए अपने आदर्शों को प्रस्तुत किया है।

उपसंहार

उपसंहार

धनपाल की तिलकमञ्जरी गद्य साहित्य की अमूल्य निधि है। इसकी भाषा, भाव एवं शैली अतुलनीय है, जो धनपाल की कीर्ति को सर्वत्र प्रसारित करती है। अपनी भाषा, भाव, रमणीयता व तत्कालीन समाज का दर्पण होने के कारण ही तिलकमञ्जरी विद्वानों के मध्य प्रशंसित रही है। सोमेश्वर कवि ने कीर्तिकौमुदी में धनपाल की प्रशंसा करते हुए कहा है-

वचनं धनपालस्य चन्दनं मलयस्य च ।
सरसं हृदि विन्यस्य कोऽभून्नाम निवृत्तः ॥

कीर्तिकौमुदी 1/16

इस शोध-प्रबन्ध में काव्य सौन्दर्यात्मक तत्त्वों की दृष्टि से तिलकमञ्जरी की समीक्षा की गई है। यहाँ पूर्व विवेचित अध्यायों के सार को निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रथम अध्याय में काव्य सौन्दर्य की विवेचना की गई है। कवि का कर्म ही काव्य है। सरस काव्य सहृदय को रसानन्द प्रदान करने के साथ-साथ मधुरता से यह उपदेश भी देता है कि राम के समान आचरण करना चाहिए, न कि रावण के समान। सौन्दर्य के विषय में अनेक पाश्चात्य व भारतीय विद्वानों ने चिन्तन किया है। पाश्चात्य विद्वानों में महान् ग्रीक दार्शनिक प्लेटो से लेकर आधुनिक काल के सौन्दर्य शास्त्री क्रोचे ने सौन्दर्य पर अपने-अपने मतों व अवधारणाओं को प्रकट किया है। इनके विद्वानों से कुछ की सौन्दर्य दृष्टि व्यक्तिपरक, कुछ की वस्तुपरक तथा कुछ की आत्मपरक है। इसी कारण वे सौन्दर्य के किसी सर्वमान्य सिद्धान्त को निर्धारित नहीं कर पाए हैं। पाश्चात्य विद्वान् यह मानकर अभिभूत होते रहते हैं कि उनका सौन्दर्य विषयक चिन्तन सर्वाधिक प्राचीन है तथा कुछ भारतीय विद्वानों का भी यही मानना है। किन्तु यदि पूर्वाग्रह त्याग कर चिन्तन किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि भारत में वैदिक काल से ही सौन्दर्य परक चिन्तन होता रहा है। वैदिक ऋषि सौन्दर्य के विषय में अत्यन्त सूक्ष्म चिन्तन किया करते थे।

सौन्दर्य का क्षेत्र अधिक विस्तृत है। पाश्चात्य दार्शनिक हीगल ने सौन्दर्य को कलाओं का दर्शन कहा है। ये कलाएँ पाँच हैं-वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत और काव्य। ये सभी कलाएँ सौन्दर्य की विभिन्न माध्यमों से की गई अभिव्यक्ति होती

हैं, दूसरे शब्दों में वे सौन्दर्य का मूर्त रूप है। वात्स्यायन ने सौन्दर्य के मूल को पहचान कर कलाओं का अति सूक्ष्म विभाजन किया है। उन्होंने कामसूत्र में कलाओं की संख्या 64 बताई है। भारतीय परम्परा में सौन्दर्यतत्त्व, कलाओं से विच्छिन्न कोई भिन्न तत्त्व नहीं है। वह सभी कलाओं में अनुस्यूत उनका प्राण तत्त्व है। जो सुन्दर नहीं है, वह कला ही नहीं है।

काव्य सौन्दर्य का अध्ययन क्षेत्र काव्य तथा उसके तत्त्वों के अध्ययन तक सीमित है। काव्यकला को सभी कलाओं में सर्वोत्तम माना गया है। कवि को जैसा रुचिकर प्रतीत होता है काव्य जगत् उसी रूप में परिवर्तित हो जाता है। मम्मट ने भी कवि की सृष्टि को ब्रह्मा की सृष्टि से उत्कृष्ट कहा है।

द्वितीय अध्याय में महाकवि धनपाल के व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बन्धित है। धनपाल का जन्म मध्यप्रदेश के काश्यपगोत्रिय ब्राह्मण के कुल में हुआ था। इनके पिता तथा पितामह समस्त शास्त्रों के अध्येता तथा वैदिक कर्मकाण्ड में निपुण थे। पारिवारिक वातावरण अध्ययनात्मक होने के कारण धनपाल की शास्त्राध्ययन में रुचि स्वतः ही हो गयी थी। आरम्भ में ये एक कट्टर ब्राह्मण थे। परन्तु बाद में जैन धर्म के सिद्धान्तों का ज्ञान होने पर ये जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे। इनके समय के विषय में विद्वानों में अधिक मतभेद दृष्टिगोचर नहीं होता। उपलब्ध अन्तः व बाह्य प्रमाणों के आधार पर धनपाल का स्थितिकाल दशम शती के उत्तरार्द्ध तथा ग्यारहवी शती के पूर्वार्द्ध के मध्य निश्चित होता है।

धनपाल नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। इन्होंने वेद-वेदाङ्गों का गहन अध्ययन किया था। ये आयुर्वेद, समुद्रकला, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, *साहित्यशास्त्र, चित्रकला, संगीत कला* आदि के पूर्ण ज्ञाता थे। इस प्रकार धनपाल मम्मट सम्मत लोकव्यवहार, शास्त्र, दर्शन, ग्रन्थों व महाकाव्यों के पर्यालोचन से उत्पन्न व्युत्पत्ति से युक्त थे। इनकी प्रतिभा को देखकर राजा मुञ्ज ने इन्हें 'सरस्वती' उपाधि से सम्मानित किया था। धनपाल ने अपने पाण्डित्य के बल पर ही राजा भोज की राजसभा में भी अत्युच्च स्थान प्राप्त किया था।

धनपाल न केवल संस्कृत अपितु प्राकृत व अपभ्रंश के भी अन्यतम विद्वान् थे। धनपाल की रचनाओं में से तीन संस्कृत में, चार प्राकृत में, एक अपभ्रंश में तथा एक संस्कृत-प्राकृत में है। तिलकमञ्जरी इनकी उत्कृष्ट विद्वत्ता तथा सहज प्रतिभा का अनुपम निदर्शन है।

तृतीय अध्याय में तिलकमञ्जरी रमणीय कथा का सार तथा तिलकमञ्जरी के टीकाकारों का वर्णन किया गया है। तिलकमञ्जरी नायक हरिवाहन तथा नायिका तिलकमञ्जरी की पवित्र प्रेम कथा है। हरिवाहन और तिलकमञ्जरी पूर्वजन्म में ज्वलनप्रभ और प्रियङ्गुसुन्दरी नामक देव दम्पत्ति थे। दिव्य लोक वास का अवधि समाप्त हो जाने पर दोनों वियुक्त हो जाते हैं। दिव्य आभरण इन दोनों के पुनः मिलन में मुख्य भूमिका निभाते हैं। पुनर्जन्माधारित इस कथा को धनपाल ने दिव्य, अदिव्य, दिव्यादिव्य पात्रों के वर्णन तथा वर, शाप, अपहरण, आत्महत्या सदृश अनेक कथा मोड़ों से रोचक व सरस बनाया है।

तिलकमञ्जरी ने अपने समय में ही प्रसिद्धि को प्राप्त कर लिया था। इसका कथानक इतना सरस व रमणीय है कि तीन परवर्ती कवियों ने इसे कथानक को आधार बनाकर काव्य की रचना की। तिलकमञ्जरी पर चार टीकाएँ प्राप्त होती है- शान्तिसूरि का टिप्पणक, विजयलावण्यसूरि की पराग टीका, पण्यास पद्मसागर की वृत्ति तथा ताड़पत्रीय टिप्पणी।

चतुर्थ अध्याय पात्रों के चारित्रिक सौन्दर्य से सम्बन्धित है। गद्य काव्य में पात्रों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। धनपाल ने अपने कुछ पात्रों को दिव्य गुणों से युक्त किया है। कुछ पात्रों का सम्बन्ध दिव्यलोकों से भी है। इस प्रकार तिलकमञ्जरी के कुछ पात्र दिव्य, कुछ अदिव्य तथा कुछ दिव्यादिव्य है। विद्याधरादि दिव्य पात्र हैं ये अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न है। मेघवाहन, वज्रायुध आदि मानवोचित गुणों व शक्तियों से युक्त अदिव्य पात्र हैं। हरिवाहन, समरकेतु आदि दिव्य तथा मानवोचित दोनों गुणों से सम्पन्न हैं अतः ये दिव्यादिव्य पात्र हैं। धनपाल ने हरिवाहन को सभी स्पृहणीय गुणों से युक्त कर उसे एक आदर्श नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। नायिका तिलकमञ्जरी भी सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति तथा स्त्रीसुलभ गुणों की निधिभूत है।

पञ्चम अध्याय रस विवेचना से सम्बन्धित है। तिलकमञ्जरी का अङ्गी रस शृङ्गार है। धनपाल ने संयोग शृङ्गार की चारु अभिव्यक्ति हेतु विप्रलम्भ शृङ्गार की सुन्दर योजना की है। सहृदय विप्रलम्भ शृङ्गार की अभिव्यञ्जना से पुनः पुनः चमत्कृत होता रहता है। धनपाल ने हरिवाहन और तिलकमञ्जरी तथा समरकेतु और मलयसुन्दरी के विप्रलम्भ शृङ्गार की मनोहारी अभिव्यञ्जना की है। तिलकमञ्जरी के वियोग में हरिवाहन की विरहवेदना इतनी अधिक बढ़ जाती है

कि उसका दु:ख प्रकृति में भी प्रकट होने लगता है।

धनपाल ने यत्र तत्र आश्चर्यजनक पदार्थों यथा-शुक का बोलना, अंगुलियक के प्रभाव से समरकेतु की सेना को निद्रा आ जाना, हाथी का हरिवाहन को लेकर आकाश में उड़ जाना, निशीथ नामक दिव्य वस्त्र का चमत्कार, विद्याधरों का उड़ना आदि का वर्णन कर सहृदय को अद्‌भुत रस सागर में निमग्न होने के पर्याप्त अवसर प्रदान किये हैं। धनपाल ने स्वयं भी इस कथा को अद्‌भुतरसस्फुटा कहा है। तिलकमञ्जरी में अन्य अङ्ग रसों करुण, वीर, रौद्र, भयानक व शान्त रसों ने भी यथावसर उपस्थित होकर सर्वत्र अङ्गी रस शृङ्गार का ही उत्कर्ष किया है। इस प्रकार धनपाल रससिद्ध कवि है।

षष्ठ अध्याय में तिलकमञ्जरी की औचित्य की दृष्टि से समीक्षा की गई है। उचित का भाव औचित्य कहलाता है। सभी काव्याचार्यों ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से औचित्य की महत्ता को स्वीकार किया है। उचित आश्रय के सम्पर्क से दोष भी गुणरूपता को धारण कर लेता है। आनन्दवर्धन ने रस विवेचन में औचित्य के पालन को अत्यावश्यक बताया है उनके अनुसार रसभङ्ग का एकमात्र कारण अनौचित्य ही है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने काव्य में औचित्य की सत्ता को पहचान कर उसे काव्य के प्राण तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित किया है। औचित्य के 27 भेद हैं। धनपाल ने तिलकमञ्जरी में सर्वत्र औचित्य का निर्वाह किया है जिससे तिलकमञ्जरी के कथारस की चारुचर्वणा हुई है।

सप्तम अध्याय में वक्रोक्ति को निकष बनाकर तिलकमञ्जरी की परीक्षा की गई है। वक्रोक्ति का अर्थ है- वक्रतापूर्ण उक्ति अर्थात् रमणीयता से युक्त उक्ति। सामान्य उक्ति और कवि की उक्ति में मुख्य भेद यही है कि सामान्य उक्ति में किसी चमत्कार की निष्पत्ति नहीं होती, परन्तु कवि अपनी प्रतिभा से सामान्य उक्ति में भी वैचित्र्य का समावेश कर उसे रमणीय बना देता है। आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति के उन्नायक आचार्य हैं। इन्होंने वक्रोक्ति का सूक्ष्मता से मनन कर उसके छः मुख्य भेद किये है। आचार्य कुन्तक ने काव्य की लघुतम इकाई वर्ण से लेकर उसके महत्तम रूप प्रबन्ध को वक्रोक्ति में समाहित कर लिया है।

धनपाल रससिद्ध कवि है। तिलकमञ्जरी में आचार्य कुन्तक सम्मत वक्रोक्ति का चमत्कार सर्वत्र परिलक्षित होता है। धनपाल के वर्णनों में वक्रोक्ति की सहज, सुगम्य व रमणीय वक्रता के दर्शन होते हैं।

अष्टम अध्याय में तिलकमञ्जरी की भाषा शैली की विवेचना की गई है। वर्णनानुकूल भाषा कवि के मनोगत भावों को रमणीय ढंग से सहृदय तक सम्प्रेषित करती है। सुकवि वर्णनानुकूल वर्ण संयोजन व भाषा शैली से अपनी रचना को प्रभावोत्पादक बनाता है।

धनपाल को अपने समय में प्रचलित शैलियों का पूर्ण ज्ञान था। दण्डी, सुबन्धु तथा बाण प्रभृति कवियों की गद्य रचनाएँ तथा उनके गद्य आदर्श भी उसके समक्ष थे। धनपाल ने उनकी गद्य शैलियों की समीक्षा कर तिलकमञ्जरी में गद्य काव्य के लिए अपने आदर्शों को प्रस्तुत किया है। धनपाल ने श्लेष बहुलता को काव्यरसास्वाद में बाधक माना है। उनके अनुसार अतिदीर्घ समास रचना भी सहृदय के मन में भय का सञ्चार करती है। इसलिए धनपाल ने तिलकमञ्जरी में अतिदीर्घ समासों तथा श्लेष बहुलता का परित्याग किया है। धनपाल ने कोमल वर्णनों में कोमल तथा ओजस्वी वर्णनों में ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। तिलकमञ्जरी की भाषा सुबोध, प्राञ्जल तथा प्रवाहमयी है।

साररूप में यह कहा जा सकता है कि तिलकमञ्जरी में प्रतिभासम्पन्न धनपाल के उत्कट पण्डित्य का सुष्ठु निदर्शन होता है। काव्य सौन्दर्यात्मक तत्त्वों रूपी निकष पर परीक्षा करने पर तिलकमञ्जरी सर्वत्र अपने सौन्दर्य की स्वर्णिम आभा को प्रकट करती है। इससे यह स्पष्ट है कि तिलकमञ्जरी गद्य साहित्य का अमूल्य रत्न है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

मूल ग्रन्थ

तिलकमञ्जरी – **(सं.) भवदत्तशास्त्रि एवं पाण्डुरङ्ग परब, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी,** 1988 – (सं.) एन. एम. कन्सारा लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, 1991 विजय लावण्यसूरी श्वरज्ञानमन्दिर, बोटाद, सौराष्ट्र, भाग1- वि. स. 2008, भाग 2- वि.स. 2010, भाग 3–वि.स. 2014

सहायक ग्रन्थ

संस्कृत

1. अग्निपुराण – (सं.)आ. बलदेव उपाध्याय चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1998
2. अभिज्ञानशाकुन्तल – **कालिदास**, ज्ञान प्रकाशन, मेरठ, 1987
3. अभिधानचिन्तामणि – **हेमचन्द्र**, (सं.) नेमिचन्द्र शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1964
4. ऋग्वेद संहिता – आचार्य साहित्य मण्डल, अजमेर, कपूरलाल ट्रस्ट प्रकाशन, अमृतसर, वि. स., 2031

5. ऋषभपंचाशिका: – **धनपाल**, (सं.) हीरालाल रसिक दास वीरस्तुतिद्वयरूप कृतिक्लापः कापड़िया, श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था,सूरत,1933

6. औचित्यविचारचर्चा – **क्षेमेन्द्र** (व्या.) श्रीनारायणमिश्र, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 1982

7. कादम्बरी – **बाणभट्ट**, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1991-1992

8. काव्यप्रकाश – **मम्मट**,(व्या.) आ. विश्वेश्वर,ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1998

9. काव्यादर्श – **दण्डी**, (व्या.) धर्मेन्द्रकुमार गुप्त, मेहरचन्द लछमनदास, दिल्ली,1973

10. काव्यानुशासन – **हेमचन्द्र**, श्रीमहावीर जैन विद्यालय, बम्बई, 1938

11. काव्यालङ्कार – **भामह** (व्या.) रमण कुमार शर्मा, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1994

12. काव्यालङ्कार – **रुद्रट**, (व्या.), डॉ. सत्यदेव चौधरी, वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, 1965

13. काव्यालङ्कारसारसंग्रह – **उद्भट**, भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1952

14. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति – **वामन**, (व्या.) आ. विश्वेश्वर, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1954

15. कुमारसम्भव – **कालिदास**, चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली, 1983

16. गीतासौरभम् – अनु. विनोद कुमार शर्मा, निर्माण प्रकाशन, दिल्ली,1989

17. चन्द्रालोक – **जयदेव**, (सं.) गंगाराय सागर, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1985

18. चित्रमीमांसा – **अप्यय दीक्षित**, (सं.) कालिकाप्रसाद शुक्ल, वाणी विहार, वाराणसी, 1965

9. तिलकमञ्जरीसार – **पल्लीपल धनपाल**, भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, 1969

20. दशरूपक – **धनञ्जय**, (व्या.) श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1999

21. ध्वन्यालोक – **आनन्दवर्धन**, (व्या.) आ. जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विधाभवन, वाराणसी, 2000

22. नाट्यशास्त्र – **भरत**, (सं.) जी भट्टाचार्य, ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1934

23. निरुक्त – **यास्क**, (सं.) मुकुन्द झा बक्शी, पाणिनी, नई दिल्ली, 1982

24. नीतिशतक - **भर्तृहरि** (व्या) राकेश शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1996

25. पञ्चतन्त्र - **विष्णुशर्मा**, (व्या.) श्रीश्यामाचरण पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1980

26. पाइयलच्छीनाममाला - **धनपाल** (सं.) बेचरदास जीवराज दोशी, बम्बई,1960

27. पुराणसारसंग्रह - **दामनन्दी**, (सं.) गुलाब चन्द्र जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1954

28. प्रबन्धचिन्तामणि - **मेरूतुंग**, (सं.) जिनविजयमुनि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला-1, शान्तिनिकेतन, बंगाल, 1933

29. प्रभावकचरित - **प्रभाचन्द्र**, (स.) जिनविजयमुनि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला-13, अहमदाबाद, 1940

30. मेघदूत - **कालिदास**, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1983

31. रसगङ्गाधर - **पण्डितराज जगन्नाथ**, चौखाम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1964

32. वक्रोक्तिजीवित - **कुन्तक**, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1998

33. वैदिक-संग्रह - डॉ. कृष्ण लाल, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2001

34. व्यक्तिविवेक – **महिमभट्ट**, (अनु.) पं. रेखा प्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा, संस्कृत संस्थान वाराणसी, 1982

35. संस्कृतसाहित्येतिहासः– **बलिराम शास्त्री भारद्वाज**, चौखम्बा ओरियन्टल, वाराणसी, 1987

36. सरस्वतीकण्ठाभरण – **भोजराज**, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 1987

37. साहित्यदर्पण – **विश्वनाथ**, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977

38. स्तुतिचतुर्विंशतिका – **शोभन**,(सं.) हीरालाल रसिकदास कापड़िया, आगमोदय समिति, बम्बई, 1927

39. हर्षचरित – **बाणभट्ट** (व्या.) पं. जगन्नाथ पाठक, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, 1982

हिन्दी

1. अलङ्कार सर्वस्व की टीकाओं का अध्ययन – डॉ. देवेन्द्र मिश्र, वेंकटेश प्रकाशन, दिल्ली,1997

2. औचित्य की दृष्टि से भवभूति के नाटको का समीक्षात्मक अध्ययन – डॉ. अजय झा, परममित्र प्रकाशन, दिल्ली, 2002

3. औचित्य सम्प्रदाय का हिन्दी काव्यशास्त्र पर प्रभाव – डॉ. चन्द्रहंस पाठक, चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी, 1967

4. काव्यस्वरूप सौन्दर्य एवं चमत्कार – (सं.) महेश चन्द्र भारतीय, शरद बुक एजेन्सी, गाजियाबाद, 1987
5. जैन धर्म की प्रमुख साध्वियाँ एवं महिलाएँ – हीराबाई बोरदिया, पार्श्वनाथ विद्याश्रमशोध संस्थान, वाराणसी, 1991
6. जैन साहित्य और इतिहास – नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकार बम्बई, 1965
7. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास – गुलाबचन्द्र चौधरी, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1973
8. तिलकमञ्जरी (एक सांस्कृतिक अध्ययन) – डॉ. पुष्पा गुप्ता, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1988
9. तिलकमञ्जरी : एक समीक्षात्मक अध्ययन – डॉ. हरिनारायण दीक्षित भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1982
10. पाश्चात्य काव्यशास्त्र – देवेन्द्र नाथ शर्मा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, छठा संस्करण, 2000
11. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत – डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1979
12. भारतीय आलोचना शास्त्र – डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा', बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1976
13. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका – डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंगहाऊस, दिल्ली, 1963

14. भारतीय साहित्यशास्त्र खण्ड–I और II – आ. बलदेव उपाध्याय, नन्दकिशोर एण्ड सन्स, वाराणसी, खण्ड–I 1963, खण्ड–II, 1967
15. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका – फतह सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967
16. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका – डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1974
17. रस सिद्धांत और सौन्दर्यशास्त्र – डॉ. निर्मला जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1977
18. रस सूत्र की व्याख्याएँ – डॉ. राजेन्द्र कुमार, अनिल कुमार, दिल्ली, 2000
19. वक्रोक्ति सिद्धांत और हिन्दी कविता – डॉ. सुधा गुप्ता, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1990
20. वक्रोक्ति सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कृष्ण–काव्य का अनुशीलन – डॉ.रघुनन्दन कुमार 'विमलेश' ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1991
21. शृङ्गार प्रकाश का समीक्षात्मक अध्ययन – डॉ. वी. राघवन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1981
22. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास – सुशील कुमार डे, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1988
23. संस्कृत साहित्य का इतिहास – प्रीतिप्रभा गोयल, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1987

24. संस्कृत साहित्य का इतिहास - आ. बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी, 1978

25. समीक्षालोक - डॉ. भागीरथ दीक्षित, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1976

26. सौन्दर्य - डॉ. राजेन्द्र बाजपेयी, सुमित पब्लिकेशन्स, कानपुर, 1974

27. सौन्दर्य तत्त्व - डॉ. सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त भारती-भंडार, इलाहाबाद, वि. स. 2017

28. सौन्दर्य तत्त्व निरूपण - डॉ. एस. टी. नरसिम्हाचारी वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1977

29. स्वतन्त्रकलाशास्त्र - डॉ. कान्तिचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, वि. स. 2024

30. हिन्दी वक्रोक्तिजीवित - (व्या.) आ. विश्वेश्वर, (सं.)डॉ. नगेन्द्र आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1955

आङ्ग्ल ग्रन्थ

1. A History of Sanskrit literature - A. B. Keith, Oxford University Press, London, 1966

2. A History of Sanskrit literature - S. N. Dasgupta and S. K. De. University of Calcutta, 1962

3. Alamkara in the work of Banabhatta - Raj Kumari Trikha, Parimal Publication, Delhi,1982

4. Dhanpal and his time - Ganga Prasad Yadav, Concept Publishing Company New Delhi, 1982

5. History of Classical Sanskrit literature - M. Krishnamachariar, Motilal Banarsidas, Delhi, 1970

6. History of Sanskrit Poetics - P. V. Kane, Motilal Banarasidas Delhi, 1971

7. New Catalogus Catalogorum - Ed. K. Kunjanni Raja, University of Madras, 1974

8. Tilakmanjari of Dhanpal - Dr. Sudarshan Kumar Sharma, Parimal Publication, Delhi, 2002

कोश

1. अमरकोश – अमरसिंह, चन्द्रिका प्रेस, लहरिया सराय, दरभंगा, 1957

2. भारतीय साहित्य शास्त्र कोश – राजवंश सहाय 'हीरा', बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1973

3. वाचस्पत्यम् – श्री तारानाथ तर्क वाचस्पति भट्टाचार्य, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1990

4. वृहद्सूक्तिकोश – (सं.) डॉ. श्याम बहादुर शर्मा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1985

5. शब्दकल्पद्रुम – राधाकान्तदेव बहादुर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1961

6. साहित्यदर्पण कोश – डॉ. रमण कुमार शर्मा, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1996

7. संस्कृत हिन्दी कोश – वामन शिवराम आप्टे, नाग प्रकाशक, छठा संस्करण, दिल्ली, 1999

शोध-ग्रन्थ

1. औचित्य सम्प्रदाय का अध्ययन – छिद्दु सिंह राठौर,दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,1978

2. कालिदास की कृतियों की औचित्य-सिद्धान्त परक समीक्षा शशिकान्त राय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1988

3. काव्य लक्षण मीमांसा – झा, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, 1998

4. तिलकमञ्जरी में अलङ्कार – विजय गर्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1998

5. धनिक-धनञ्जय का रस सिद्धान्त को योगदान – रीता, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1987

6. मेघदूत में अलङ्कार निरूपण – गोयनका, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1980

7. वक्रोक्ति सिद्धान्त-दृशा-लघुत्रय्या समीक्षात्मकम् अध्ययनम् – ओम प्रकाश डिमरी, लालबहादुरशास्त्रि विद्यापीठ, मानित विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1993

ग्रन्थकार

डॉ. विजय गर्ग

जन्म : हरियाणा राज्य के कैथल जिले के मध्यमवर्गीय परिवार में।

पिता : श्री राम निवास गर्ग (सेवानिवृत्त, रामजस महाविद्यालय)

माता : श्रीमती चन्द्रकान्ता गर्ग (सेवानिवृत्त शिक्षिका)

शिक्षा :

- प्रारम्भिक शिक्षा कैथल में ही हुई।
- उच्च शिक्षा दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
  - कला स्नातक, प्रथम श्रेणी, 1993
  - कला निष्णात, प्रथम श्रेणी, 1996
  - दर्शन निष्णात (एम.फिल्.), प्रथम श्रेणी, 1998
  - विद्या वाचस्पति, 2003

वर्तमान पद :

- 2004 से अद्यावधि हिन्दू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय में सहायक आचार्य पद पर कार्यरत।

छात्रवृत्ति :

- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग–जे.आर.एफ.।

विशेष ज्ञान का क्षेत्र :

- काव्य शास्त्र (संस्कृत)

सम्मान व पुरस्कार

- संस्कृत प्रतिभा पुरस्कार, दिल्ली संस्कृत अकादमी, 1996
- सर्टिफिकेट ऑफ मेरिट–रामजस महाविद्यालय, 1992, 1993, 1996

ISBN 81-217-0288-7
9 788121 702881

भारतीय विद्या प्रकाशन
1 यू.बी., जवाहर नगर, बंग्लो रोड, पो. बॉक्स नं. 2144, दिल्ली-110007
फोन : 011-23851570, 23850944 मो. : 09810910450, 09968334546
e-mail : bvpbooks@gmail.com

शाखा कार्यालय
1. 5824, न्यू चन्द्रावल (नजदीक शिव मन्दिर), जवाहर नगर, दिल्ली-110007
2. पोस्ट बॉक्स 1108, सी.के. 32/30, नेपाली खपड़ा, कचौड़ी गली, वाराणसी-221001 (उत्तर प्रदेश)
फोन : 0542-2392376, मो. : 09415202477, 78